जातिनिर्णय की विषय सूची।

15/3

* इति *

* भूमिका *

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्। (यजुर्वेद)
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते। (अथर्ववेद)

विवेकि पुरुषो! परमात्मा ने हम लोगों को इस दुर्लभ मानव देह देके परम अनुग्रह प्रकाशित किया है क्योंकि इस में कैसा उत्तम, कैसा प्रशंसनीय, कैसा अनर्घ, कैसा अद्भुत, कैसा उज्ज्वल, कैसा प्रकाशक, कैसा शुद्ध विशुद्ध, विवेक-रूप एक महादीपक दिया है। इस विवेकरूप दीपक से हम क्या नहीं देख सकते? क्या नहीं जान सकते? क्या नहीं कर सकते? परन्तु दीपक जलाने को सुचतुर सयान एक गुरु चाहिए। वह गुरु वेद है। बहुत दिनों से लोग वेद गुरु को त्याग कुग्रन्थों को अपना धर्म्म गुरु बना "अन्धा अन्धे का रहनुमा, दोनों गए कुए में समा" इस कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं। परन्तु "सुबह का भूला शाम घर आवे तो उसे भूला न कहिए" अब भी अगर हम सब चेत जांय तो आशा प्रत्याशा है। वेद गुरु पुनरपि हम को मिल जायँगे। ये कहीं दूर नहीं चले गए हैं। परन्तु अविद्या-रूप कोयल की बड़ी विशाल खानों से अज्ञान रूप धुंआं निकल कर इस दीपक को चारों तरफ से दबा रहा है। यदि इस में वेद-गुरु सूर्य्य की उपदेशरूप तीक्ष्ण गरमी पहुंच जाय तो वे कोयले झट जल के भस्म हो जायं और दीपक चारों ओर प्रकाश देने लगे। इस हेतु वेद गुरु के समीप आप लोग आवें और सब को लावें। चाहे आप शास्त्रों पुराणों और भाषा के ग्रन्थों से पूछ देखें सब ही वेद वेद पुकारते हैं। तब क्यों नहीं सब छोड़ वेद गुरु के निकट जायं। "सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः" परन्तु अविवेक के मारे "आंख के अन्धे गांठ के पूरे" ऐसे मनुष्य ही "सांच कहे सो मारा जाय, झूठ कहे सो लड्डू खाय" इस कहावत को सत्य बना रहे हैं। अन्यथा वेद गुरु को

छोड़ कौन अज्ञानी कुग्रन्थ गुरु के निकट पहुंच "अन्धे के आगे रोवे, अपने दीदे खोवे" की भांति इधर उधर भटकता फिरता है। थोड़ी देर तक सब पक्षपात त्याग विवेक पर भार दे आप सोचें तो। इस समय आपका देश पृथिवी पर के प्रसिद्ध २ सब देशों के पुरुषों से भरा हुआ है। बम्बई आदि बड़े २ शहरों में निवास करते हुए अग्नि देवोपासक पारसी लोग आप के साक्षात् एक भुजा हैं। मुहम्मद महोदय के उपदेश पर चलने वाले मुसलमान तो छोटे से छोटा भी ग्राम नहीं जहां वे आप के पड़ौसी न हों। उन के साथ कौनसा व्यवहार बाकी है। वे आप के उपनयन विवाह आदि शुभ कर्म्म में और आप उन के शुभ कर्म्म में मिलते जुलते रहते ही हैं। एक-ग्राम-निवासी हिन्दू, मुसलमान आपस में बाबू भाई, काका, बाबा, मा, बहिन, मामी, मौसी आदि शब्द से परस्पर पुकारते हैं। इन मुसलमानों से कैसा हमारा घनिष्ठ और अटूट सम्बन्ध है आप लोग सब कोई जानते ही हैं। यह भी आपको स्मरण रहे कि ये एक दिन आपके समान ही द्विज थे। बादशाही आने पर ये किसी कारणवश मुसलमान हुए इस कारण इन को द्विज बनने का सब से पहला हक़ है। योरोप-निवासी ईसा-मसीह के शिष्य आप के शासक ही हैं। इन के अतिरिक्त चीनी, जापानी, मिस्री आदि अनेक द्वीप द्वीपान्तर के मनुष्य आज व्यापार के लिए आप के देश को शोभित कर रहे हैं। आप इन सबों पर एक दृष्टि दौड़ावें और यह भी ध्यान में रक्खें कि ये अपने २ देश में कोटियों नर नारियें बसते हैं। अब मैं पूछता हूं कि भगवान् ने इन में चारों वर्णों को उत्पन्न किया है वा नहीं। इन के देशों में आप के समान ही पशु पक्षी आदि पदार्थ देरहे हैं तो क्या चारों वर्ण नहीं देंगे? पुनः इन में से क्या कोई महात्मा पुरुष नहीं निकलते? आप किन्हीं २ महात्मा मुसलमानी फकीरों को देख क्या उन्हें आदर नहीं करते? उन्हें ईश्वर-भक्त नहीं मानते? इस में सन्देह नहीं कि आपका आत्मा तो उन से सम्बन्ध जोड़ लेता है परन्तु आप स्वयम् लोक से डर के उन से विमुख रहते हैं। मैं कहता हूं कि आप ईश्वर से डरें मनुष्य से नहीं। आज योरोप निवासिनी श्रीमती अनुवसन्ती (एनीबेसेण्ट) देवी की पूजा सहस्रों विद्वान् द्विज नहीं कर रहे हैं। पारसी होने पर भी श्रीमान् दादा भाई नारोजी को क्या आज लक्षों द्विज शिर पर नहीं धरते हैं। इन की

देदीप्यमान जीती जागती मूर्त्ति को देख भक्ति उत्पन्न नहीं होती? क्या अङ्गरेज़ होने पर श्रीमान् महोदय काटन साहब को आप लोगों ने जातीय सभा में सिर ताज नहीं बनाया? क्यों! ऐसा क्यों!! निःसन्देह गुण की पूजा होती है। गुण ही मनुष्य को बड़ा करता है। हीरा भी पत्थर ही है परन्तु वह मुकुट में खचित होता है। क्या आप मनुष्य सन्तान को पशु पक्षी से भी नीच निकृष्ट मानेंगे? गाय, भैंस, बकरे, हरिण, शुक, पिक से घृणा नहीं रखते। फिर मनुष्य तो शिक्षा पा उच्च शुद्ध पवित्र आत्मदर्शी तक हो सकता है। यदि विदेशी वा स्वदेशी मुसलमान, अङ्गरेज़, जापानी, चीनी, आदियों में कोई त्रुटि देखते हैं तो उस को दूर कीजिए। वह त्रुटि कैसे जा सकती है? निःसन्देह घृणा से नहीं, वैर भाव से नहीं, पृथक् रहने से नहीं; किन्तु अपने में मिलाने से। यही एक उपाय है। संग से सब सुधरता है। आप अपने सङ्ग से उन्हें सुधारिए, यदि शुद्धि की आवश्यकता हो तो "गायत्री" मन्त्र दे शुद्ध कीजिए। आप गङ्गा से पञ्चगव्य से सूर्य्य चन्द्रादि देवता से सब से बड़े हैं। देखिये आप किन के सन्तान हैं। सब देवी देव जिन के निकट हाथ जोड़ खड़े रहते हैं। इस हेतु आप सब से बड़े हैं परन्तु आप अपने को भूले हुए हैं। किसी ने कहा है कि "देवाधीनं जगत्सर्वं, मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद्ब्राह्मण देवताः। (तस्माद्विप्रास्तु देवताः)" ठीक है कि पृथिवी, अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत सूर्य्य, चन्द्र इत्यादि देवों के अधीन जगत है। पृथिवी अन्नों से, अग्नि गरमी से, वायु प्राण से, सूर्य्य प्रकाश से, इस प्रकार सब ही देव इस पृथिवी पर के स्थावर जङ्गम जीवों की सेवा कर रहे हैं। परन्तु वे पृथिवी सूर्य्यादि देव किस के अधीन हैं? निःसन्देह वे मन्त्र अर्थात् वेद के अधीन हैं। क्योंकि वेदों के अध्ययन अध्यापन से इन सूर्य्यादि देवों के तत्त्व ज्ञान किस से किस प्रकार और कौन काम लेना चाहिए यह सब भेद वेदवित् पुरुषों को मालूम होने लगता है। तब उस २ देव से वह २ कार्य्य लेना आरम्भ करते हैं। आज योरोप निवासी अग्नि से वायु से बिजुली से सूर्य्य से समुद्रादि-देवों से कामकाज ले रहे हैं। गमार से गमार भी पृथिवी देवी से कुछ न कुछ काम ले ही लेता है। परन्तु जितना ही वेद के द्वारा इन का तत्त्व जानेगा उतना ही अधिक काम ले सकता है। इस कारण कहा है कि ये सब

देव मन्त्र अर्थात् वेदों के अधीन हैं और वे वेद ब्राह्मणों के अधीन हैं । इस कारण ब्राह्मण देवता हैं । इसी कारण ब्राह्मण को भूदेव भूसुर कहते हैं। अब आप आंख खोल देखें यदि आप देव हैं तो देवता के समान कार्य्य भी आप को करना चाहिए । क्या सूर्य्य अपने प्रकाश को चाण्डाल पर से हटा लेता है? क्या गङ्गा यवन म्लेच्छ को अपने में नहाने नहीं देती ? क्या पृथिवी माता म्लेच्छ के खेतों में अन्न नहीं उपजाती ? इसी प्रकार ब्राह्मण को तो किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए । जिस ने घृणा की वह ब्राह्मण देवता नहीं । अग्नि सूर्य्यादिवत् ब्राह्मण को उचित है कि सब को बराबर समझें । सब से पूजा लें सब का प्रसाद ग्रहण करें। अपने आगमन और सत् उपदेश से सब को शुद्ध पवित्र करते रहें। यदि आप अपने को सामान्य मनुष्य ही मानते हैं तो मनुष्य २ सब समान हैं। यदि अपने को ब्राह्मण समझते हैं तो आप देवता हैं फिर देवता के समान ही कार्य्य भी कीजिये, यदि पण्डित समझते हैं तो "विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः" । "आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः" । आप कैसे ही समझें आप को सब से समान बर्ताव करना पड़ेगा । तब ही आप का बड़प्पन है तब ही श्रेष्ठता है ।

पुनरपि आप देखें आप किस से घृणा करते हैं क्या इस शरीर से ? यह तो जड़ है । नहाने धोने से इस की शुद्धि हो जाती है, फिर सब का देह पञ्चभूतों से बना हुआ है । आधि, व्याधि, मरना, जीना, बाल्य, यौवन, बार्धक्य सबका तुल्य है । तब क्या जीवात्मा से घृणा करते हैं ? यह तो अनेक देहों में घूमता ही रहता है आप का भी आत्मा किसी अन्य देह को छोड़ यहां आया है । आत्मा सदा शुद्ध बुद्ध है । तब क्या कुत्सित कर्म्म से घृणा करते हैं ? यह आप के हाथ में है। शिक्षा उपदेश से कुत्सित कर्म्मों को शुद्ध कर सकते हैं। विवेकि पुरुषो ! मैंने बहुत कुछ आप लोगों से कह सुनाया । अब केवल विवेक को जागृत और शुद्ध करें । उसी दीपक की सहायता से आप को सब कुछ सूझने लगेगा इसी हेतु पांच प्रकरणों से सुभूषित 'जाति निर्णय' नामक ग्रन्थ लिख, सुना आप विद्वानों को ही समर्पित किया है अब मैंने आप लोगों को क्या सुनाया यदि

इस को अति संक्षेप से सुना जांय तो मुझे विश्वास होगा कि आप लोगों ने दत्त चित्त हो मेरे कथन को श्रवण किया । यह सुन उन सब विद्वानों की सम्मति से तर्कपञ्चानन शास्त्री कहकर सुनाने लगे—आप ने हम लोगों पर कृपा कर इस में ३३६ ऋचाएं और मन्त्र कह इन के पृथक् २ पद, पदार्थ, व्याख्यान, भाष्य और गूढ़ाशय सुनाए हैं और महाभारत, रामायण, मनुस्मृति, भागवतादि पुराण और बृहद्देवता प्रभृति अनेक ग्रन्थों के ४०८ श्लोकों के प्रमाण दिए हैं इस के अतिरिक्त शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों के लाट्यायन आदि श्रौतसूत्रों के, आपस्तम्बादि गृह्यसूत्रों के, छान्दोग्यादि उपनिषदों के, वेदान्त प्रभृति षट्शास्त्रों के, पाणिनि व्याकरणादि अङ्गों के इत्यादि २ अनेकानेक मान्यग्रन्थों के प्रमाणों से भूषित कर अमृतपान करवाया है। वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में जितने गूढ़ से गूढ़ प्रश्न हो सकते हैं इस में किए गए हैं और उन के समाधान भी सप्रमाण सयुक्ति सुनाए हैं।

प्रथम प्रकरण पृष्ठ १ से ८३ तक यह आर्य्य, दस्यु, दासादि निर्णय प्रकरण है। १ प्रथम पृष्ठ से ८ वें पृष्ठ तक ७ प्रश्न कर सामान्य प्रार्थना सुना आर्य्यादि शब्दों का व्याख्यान आरम्भ किया है। १—वेदों के पढ़ने वालों को सब से प्रथम आर्य्य दस्यु और दास इन तीन शब्दों पर बड़ी शङ्का होती है इस कारण प्रथम सामान्य रीति से ऋग्वेद की २७ ऋचाओं के व्याख्यान कर उत्तर कह पुनः इन तीनों शब्दों पर बहुत से वेद शास्त्रों के प्रमाण दे सिद्ध किया है कि व्रती आस्तिक सज्जन आदि श्रेष्ठ गुणधारी पुरुष को आर्य्य और इस के विपरीत पुरुष को दस्यु वा दास कहते हैं। इसी प्रसंग से राक्षस आदि शब्दों पर भी विचार किया गया है। २—इस अवस्था में इस समाधान के अभ्यन्तर एक दूसरी ही शङ्का उपस्थित होती है कि तब आज कल शूद्र को 'दास' क्यों कहते हैं क्योंकि 'शूद्र' तो नास्तिक नहीं होता और यह समाज का एक मुख्य अङ्ग है। इस पर 'दास' शब्द के अर्थ की क्रमोन्नति और 'शूद्र' शब्द के अर्थ की धीरे २ अवनति पृष्ठ ४५ से आरम्भ कर कही है। ३—पुनः जैसे पशुओं, पक्षियों, जलचरों, वृक्षों में इत्यादि २ सब वस्तुओं में भिन्न २ जातिएं पाई जाती हैं वैसे ही मनुष्य में भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चार जातिएं भिन्न २ हो सकती हैं ऐसी शङ्का जगत् के देखने से उपस्थित होती है। इस पर सांख्य शास्त्र, रामा-

यण, महाभारत, भागवत आदि के अनेक प्रमाणों और बड़ी २ युक्तियों से मनुष्य में "एक ही जाति पाई जाती है" यह ६१ पृष्ठ से आरम्भकर सिद्ध किया गया है। ४-पुनः इसी के अन्तर्गत वैदिकों को यह सन्देह उपस्थित हो सक्ता है कि "पञ्च जन" "पञ्चमानव" आदि शब्दों से तब आशय क्या लिया जायगा इस का उत्तर दूर चल के २२२ पृष्ठ से दिया है। ५-पुनः इसी के अभ्यन्तर "यदि मनुष्य में एक ही जाति है तब पाणिनि मन्वादि महर्षियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिये पृथक् २ जाति शब्द के प्रयोग क्यों किए हैं ऐसी शङ्का होती। इस का समाधान ६१ पृष्ठ से आरम्भ कर कहा है। इसी के प्रसंग से 'जाति' 'वर्ण' शब्दों के प्रयोग और इतिहास कहते हुए भिन्न २ व्यवसायियों (*Professional*) के १७२ नाम गिना के प्रथम प्रकरण को समाप्त किया है।

द्वितीय प्रकरण।८३ से १४५ तक। यह व्यवसाय (*Profession*) सम्बन्धी है। इस में ९४ ऋचाओं के प्रमाण अर्थ सहित कहे गये है। ६-प्रथम प्रकरणस्थ व्यवसायियों (*Professional men*) के नाम सुन स्वभावतः यह सन्देह उत्पन्न होता है कि वेदों में किन २ व्यापार, वाणिज्य, व्यवसाय, कला कौशल आदिकों की ओर किन किन पोष्य पशुओं की चर्चा है। वे व्यवसायी आजकल के समान ही क्या नीच, निकृष्ट, सभ्यसमाज से पृथक् माने जाते हैं या इन का कुछ विशेष सत्कार कहा है। इस सन्देह के निवारणार्थ बढ़ई, लोहार, सुनार, चमार, नाई, धोबी, जुलाहे इत्यादि व्यवसायियों की ओर गौ से लेकर गदहे तक पशुओं की चर्चा वेदों से दिखलाई गई है और नदियों से लेकर समुद्र तक की यात्रा, कृषिकर्म, प्रस्तर और लोहनिर्मित नगर, राजकीय प्रासाद (*Palace*) सभा भवन आदि अनेक कला कौशल की वार्ताओं को कहते हुए सिद्ध किया गया है कि व्यवसाय के कारण किसी को ऊंच वा नीच वेद नहीं मानता। प्रत्युत वेद कहता है कि इन सब व्यवसायों को विद्वान, मनीषी, ज्ञानीजन करें ऋषि और राजा को भी खेत करने, कपड़े बुनने आदि व्यवसाय के लिये आज्ञा है एवं बड़े २ कुलीन गृह की देवियों को भी सूत कातने, कपड़ा बुनने बेल बूंटा लगाने याने जुलाहे और दर्जी के काम करने

के लिये आज्ञा है। इस प्रकार एक २ गृह में अनेक २ व्यवसायियों के होने के प्रमाण देते हुए आवश्यकता के अनुसार धीरे २ व्यवसाय और व्यवसायियों की समुन्नति दिखलाते हुए। अन्त में मानवाऽऽर्य्य सभा की चर्चा करते हुए इस प्रकरण को समाप्त किया है।

तृतीय प्रकरण पृष्ठ १४६ से २४६ तक। यह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् व्याख्या प्रकरण है"। ७–अब यदि मनुष्य में एक ही जाति है तो इन के व्यवसाय और कर्म्म भिन्न २ कैसे हुए और "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" का क्या अर्थ होगा? धर्म्मशास्त्र और पुराणादि के सब ही ग्रन्थ कहते हैं कि मुख से ब्राह्मण की, बाहु से क्षत्रिय की, ऊरु से वैश्य की और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई है इस की क्या गति होगी। इस महती आशङ्का की निवृत्ति के हेतु १०० से अधिक पृष्ठ लिखे गए हैं प्रथम अनेक प्रमाणों और युक्तियों से वेद का यथार्थ अर्थ करके मन्वादि धर्म्मशास्त्रों की संगति लगाते हुए सिद्ध किया गया है कि मनुस्मृति, महाभारत, रामायण, भागवत विष्णुपुराण आदिक कोई भी ग्रन्थ ब्रह्मा के मुखादिक अङ्ग से ब्राह्मणादिक की उत्पत्ति नहीं मानता इस की सिद्धि के हेतु उपर्युक्त सब ग्रन्थों से सृष्टिप्रकरण दिखलाया गया है। और उस की समीक्षा की गई है। ८–मनु और प्रजापति—इसी सृष्टिप्रसङ्ग से मनु और प्रजापतियों के विषय में भिन्न २ रोचक मत प्रदर्शित हुए हैं। मनुस्मृति पृ० १५५ के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र विराट् और विराट् के पुत्र मनु हैं और प्रजापतियों की संख्या १० है। पृ० १६३ से महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप कश्यप के पुत्र आदित्य, और आदित्य के पुत्र मनु हैं और प्रजापतियों की संख्या कहीं ६ कहीं ७ और कहीं २७ है। पृ० १६९ रामायण के अनुसार एक स्थल में मनुजी महाभारत के समान हैं; परन्तु दूसरी जगह बड़ा विचित्र वर्णन है। रामायण कहता है कि मनु एक स्त्री का नाम है वह कश्यप की धर्म्म-पत्नी थी इस से सकल मनुष्य हुए। पृ० १७३ से भागवत के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र मनु हैं। प्रजापतियों की संख्या कुछ निश्चित नहीं। कहीं कहीं प्रथम चार पुत्रों का कहीं कहीं १० का कहीं इससे अधिक का वर्णन है। ऐसा ही विष्णुपुराण को जानिये। ९–इस प्रकार समीक्षा करने से सब को विदित होगा कि मनुजी

को लोगों ने क्या २ बनाया है। मनुस्मृति पृ० १९७ में कहती है कि मरीचि के पिता मनु हैं; परन्तु इस के विपरीत महाभारत कहता है कि मनुजी के प्रपितामह मरीचि हैं। रामायण मनु को स्त्री बनाता है। पुनः भागवत, विष्णुपुराण आदि मनु और मरीचि दोनों को सहोदर भ्राता मानता है। इत्यादि अनेक विषयों के वर्णन इस सृष्टि प्रकरण में विद्यमान हैं। बडे ध्यान से इन्हें विचारना चाहिये। १०–परन्तु यथार्थ में मनु कौन है? वेदों में इस की वार्ता कुछ है या नहीं इस पर पृ० १९४ से २०५ तक वेद की २५ ऋचाएं कही गई हैं और सिद्ध किया गया है 'मनु' यह नाम मनुष्यमात्र का और श्रेष्ठ पदवी का है। ११–पुनः शतपथादिक ग्रन्थों के अनुसार २०५ से २२२ तक मनु के विषय में बहुत कुछ निरूपण किया गया है। और पृ० १९० से १९४ तक मनु और शतरूपा क्या वस्तु है? यह अच्छे प्रकार कहा है। पुनः "पञ्चजन" शब्द पर २२० से २३६ तक बृहद् व्याख्यान कहा है। इस के अतिरिक्त अन्यान्य अनेक शंका समाधानों को वर्णन करते हुए और द्वितीय प्रश्न के उत्तर के साथ यह प्रकरण समाप्त किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण पृ०२४६से३०० तक। यह एक तरह से संकीर्ण है। इसमें अनेक विषय प्रतिपादित हैं। १२–सन्देह होता है कि ब्राह्मण शूद्रादिकों को जब वेद समान मानता है तो मन्वादि धर्म्मशास्त्रोंमें शूद्रों को यज्ञोपवीत निषेध क्यों? पुनः जब वेद के अनुसार एक २ गृह में चारोंवर्णों के मनुष्य थे तो पीछे विभाग कैसे हुए? इत्यादि सन्देह उत्थित होते हैं। इस के लिये मन्वादि धर्म्मशास्त्रों की वर्णव्यवस्था की रीति विस्तार पूर्वक दर्शाई गई है और उन की संगति लगाई गई है। जब वंशानुगत वर्णव्यवस्था चली है तब भी वर्ण-परिवर्तन और उन के अनेक उदाहरण ऐतरेय, कवष, सत्य काम, पृषध्र, करूष, नाभाग, धृष्ट, अग्निवेश्य, रथीतर, हारीत, शौनक, गृत्समद, वीतहव्य आदि के दिये गए हैं। १४–एवं वेदों में जिस को दास वा दस्यु कहा है उन्हीं को मन्वादि ग्रन्थों में व्रात्य वा शूद्र कहा है यह घटना कैसे घटी। इस का क्या इतिहास है। इत्यादि सन्देह निवारणार्थ व्रात्य और शूद्र, शूद्र वाचक अन्यान्य शब्दों पर बहुत कुछ निर्णय किया गया है। वास्तव में इस तत्त्व को विना जाने हुए वर्ण व्यवस्था की क्रमोन्नति अवनति

को कोई जान ही नहीं सकता है। १४-इस पतितावस्था में भी शूद्रों को कौन२ अधिकार थे इस विषय का वर्णन रामायण पुराणादिकों से विस्तार पूर्वक कहा गया है। पुनः वेदों से लेकर आधुनिक ग्रन्थ पर्य्यन्त शूद्रों के विषय में क्या २ कहते हैं। वेदों में शूद्र शब्द के पाठ कितने बार और कहां २ हैं। वेदों में शूद्र शब्द के यथार्थ अर्थ क्या हैं? इत्यादि भूरि २ अर्थों का प्रतिपादन आपने हम लोगों को सुनाया है। व्रात्य संस्कार, व्रात्य पुत्रोपनयन, सत्यकाम जाबाल, पौत्रायण जानश्रुति इत्यादि विषय सुनाये हैं। १५-पुनः जब यह शरीर ही चारों वर्णों से बना हुआ है तब प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण है और प्रत्येक को चारों वर्ण होना चाहिये भी इस को दिखलाते हुए ब्राह्मण और शूद्र के यथार्थ लक्षण सुनाए हैं। १६-प्रजाओं से वृत (चुना हुआ) ही राजा हो सकता अन्य नहीं, एवं क्षत्रिय, राजा, सम्राट् आदि शब्दों के अर्थ कहते हुए क्षत्रिय का वर्णन किया है। पुनः वैश्यों का वाणिज्य, गण (Company) के साथ होता था इस के प्रमाण सुनाए गए हैं। इस के पश्चात् अनुलोम, प्रतिलोम विवाह विस्तार से उदाहरण इतिहास प्रमाणों सहित वर्णन करते हुए परस्पर स्पर्शास्पर्श (छूआ छूत) और सहभोजिता का वर्णन कह सुनाया है। इस में सन्देह नहीं कि इस निर्णय के ऊपर हम लोगों को बहुत ध्यान देना चाहिए। यह भूरि भूरि प्रमाणों और युक्तियों से अलंकृत है सप्तम प्रश्न के समाधान के साथ यह समाप्त होता है।

पंचम परिशिष्ट प्रकरण पृष्ठ ३१५ से ३३२ तक है। यह कैसा रोचक है सो हम सब स्वयं अनुभव करते हैं। इस के श्रवण से निखिल सन्देह दूर हो गए। आपने बृहदारण्यक वज्रसूची आदि अनेक ग्रन्थों के प्रमाण दे हम लोगों को गुण-कर्म्मानुसार वर्णव्यवस्था के मानने में सुदृढ़ और पूर्ण विश्वासी कर दिया है। अब से हम सब इसी के अनुसार वर्ण मानेंगे और इस के प्रचार के लिए भी पूर्ण प्रयत्न करेंगे। मैंने संक्षेप सुनाने में बहुत से विषयों का वर्णन नहीं किया। हम लोगों ने दत्तचित्त से श्रवण किया और प्रत्येक अर्थ जिह्वा के अग्र पर विद्यमान है इस के प्रमाण के लिये आपकी आज्ञा पा किञ्चिन् मात्र निवेदन किया है। एवमस्तु। अन्त में एक यह शङ्का होती है उसे भी कृपा कर दूर कीजिए। पृष्ठ ८८ में "क्षेत्रस्य पतिना वयम्" इस मन्त्र पर आपने कहा है कि वामदेव ऋषि

कहते हैं सो कैसे ? क्योंकि यह वेदमन्त्र है। वामदेव कैसे कहेंगे ?। समाधान सुनिए "अग्निमीडे पुरोहितम्" मैं अग्नि (ईश्वर) की स्तुति करता हूं। यह इस का अर्थ है। मैं कौन ? यह प्रश्न होता है। जो प्रार्थना करे वही यहां " मैं " है। अब यदि यह कहा जाय कि मैं शिवशङ्कर ईश्वर की स्तुति करता हूं तो क्या कोई क्षति होगी ? नहीं। पुनः "संगच्छध्वं सम्वदध्वम्" सब कोई साथ मिल सब परस्पर सम्वाद करो, यह इस का अर्थ है। इस का कहने वाला ईश्वर है। इस में सन्देह नहीं, परन्तु इस मन्त्र के तत्त्व जानने वाले ऋषि अब मनुष्यों को उपदेश देते हैं कि मनुष्यो ! साथ मिलो साथ २ सम्वाद करो। यहां पर यदि यह कहा जाय कि वामदेव ऋषि उपदेश देते हैं कि ऐ मनुष्यो ! मिलो सम्वाद करो तो क्या कोई क्षति होगी ? नहीं। जैसे विवाह आदि में कोई मन्त्र कन्या और कोई वर पढ़ता है इसी प्रकार सर्वत्र जानें। वेद ईश्वर प्रदत्त है। समय २ के मानवीय प्रयोजनों का वर्णन है इसी हेतु प्रथम मध्यम उत्तम तीनों पुरुषों के साथ वर्णन आता है। इति। इस के अन्त में आप लोग यह स्मरण रक्खें।

सहृदयं सामनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्य मभि हर्यत जातं वत्स मिवाघ्न्या। अथर्व०।

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्म्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः॥ महाभारत॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इति जाति-निर्णयस्य भूमिका समाप्ता।

जालन्धर नगर
ता० ११-१०-१९०७ ई०

जगन्मङ्गलाभिलाषी—
कश्चित् शिवशङ्करः।

ओ३म्

* तृतीय समुल्लास *

जाति-निर्णय ।

१ शङ्का—वेदों के अध्ययन से हम लोगों को प्रतीत हुआ है कि पशु, पक्षी, जलचर, वनस्पति प्रभृतिवत् मनुष्यों में भी अनेकविध जातियां हैं । वेदों में आर्य्य और दस्यु जाति की चर्चा बहुत आई है । वे दोनों भिन्न २ प्रतीत होती हैं । अनेक स्थलों में प्रार्थना आती है कि दस्यु वा दास को विनष्ट करो । इन का धन छीन कर हम आर्य्यों को दो । वे बड़े धनाढ्य हैं। उन्हें मारो इत्यादि यथा:—

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुप शाकेभिरिन्द्र (१) ॥ ऋ० १ । ३३ । ४ ॥

हे इन्द्र ! अकेलाही आप वज्र से धनी दस्यु का हनन करें । पुनः—

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥ ऋ० ४ । ३० । २० ॥

---

(१) इन ऋचाओं के प्रत्येक पद का अर्थ आगे किया जायगा ।

अश्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः। दासानामिन्द्रो मायया॥ ऋ० ४। ३०। २१॥

इन्द्र देव ने दिवोदास महाराज के ऊपर प्रसन्न हो शम्बर नामक दस्यु के पाषाण निर्म्मित सैकड़ों नगरों का विध्वंस कर दिया। दभीति राजा से प्रसन्न हो इन्द्र देव ने कपट से ३०००० तीस सहस्र दस्यु विविध हननास्त्र से मार गिराये। इस से यह भी प्रतीत होता है कि दुर्ग, किला, सेना आदि सब राज्य सामग्री इन दासों वा दस्युओं के निकट थी। इस हेतु वे भी शिष्ट और सभ्य थे। परन्तु इन के ऊपर आर्य्यों का इतना क्रोध था कि एक स्थल में प्रार्थना करते हैं कि इन की स्त्री को भी मारो। यथाः—

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियम्। मायया शाशदानाम्॥ ऋ० ७। १०४। २४॥

इन्द्र! पुरुष या स्त्री दोनों मायावी का संघात करो। पुनः एक स्थल में कहते हैं कि इन की गायें छीन लोः—

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति घर्मम्। आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्नन्धया नः॥ निरुक्त नैगमकांड ३२॥

हे इन्द्र मघवन्! कीकट अर्थात् अनार्य्य देशों में तेरी गायें क्या करती हैं न आप के लिये दूध देतीं न यज्ञोपयोगी होतीं और उस देश के राजा प्रमगन्द के नीच शाखा सम्बन्धी पुत्र पौत्रादिकों के धन भी हमारे लिये लेदीजिये इस से सिद्ध होता है कि दस्यु और आर्य्य दो जातियां बड़ी प्रबल और परस्पर युद्ध करने वाली थीं।

२ शङ्का—पुनः आगे चल कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण देखते हैं इन में ब्राह्मण की श्रेष्ठता और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की नीचता पाई जाती है।

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते

जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममसुष्य पुत्रमसुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा । यजु० ९।४०॥

अर्थः-हे इन्द्रादि देव ! इस राजा को शत्रु रहित करके कर्म्म में प्रेरणा कीजिये । महती क्षेत्र-पदवी के हेतु, महाती श्रेष्ठता के हेतु, महान् मनुष्य राज्य के हेतु, अमुक राजा के पुत्र, अमुक राज्ञी के पुत्र इस की (जो सिंहासन पर बैठने वाला है) रक्षा आप लोग करें, ऐ प्रजाओ ! ये आप लोगों के राजा हैं। इन की आज्ञा को मानो । परन्तु हम ब्राह्मणों का राजा सोम अर्थात् चन्द्रमा है ये नहीं । इस मंत्र से विस्पष्ट सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों का राजा क्षत्रिय नहीं हो सकता । इस से ब्राह्मण की श्रेष्ठता सूचित होती है। और भी जहां चारों वर्णों के नाम आते हैं वहां प्रथम ब्राह्मण शब्द आता है इस से भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता और भिन्न जाति प्रतीत होती है पुनः एक स्थल में उपदिष्ट है कि:-

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ यजु० २०। २५॥

मैं उस लोक को पुण्य पवित्र जानता हूं जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों जातिएं मिलकर कार्य्य करती हैं । यहां वैश्य शूद्र के नाम नहीं आये । क्योंकि राज्याधिकारी क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय ही होते थे । पुनः ब्राह्मण की श्रेष्ठता अ-थर्ववेद में बहुत गाई गई है यथाः-

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः । अ० ५।१८।६॥

ब्राह्मण अहन्तव्य हैं क्योंकि अग्नि के समान हैं इन के दायाद चन्द्रमा हैं और इन की कीर्ति के रक्षक इन्द्रदेव हैं । पुनः-

तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥ अ० ५ । १९ । ९ ॥

हे नारद ! उस मनुष्य को वृक्ष भी छाया नहीं देते हैं जो ब्राह्मण का अ-

पमान करते हैं इत्यादि। हम क्या कहें आप स्वयं जानते हैं कि अथर्ववेद में ब्राह्मण की कहां तक प्रशंसा है इस से विस्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्राह्मण एक भिन्न सर्वोच्च श्रेष्ठ जाति है। पुनः—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ यजु० ३१।११॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ अथर्व० १९।६।६॥

इत्यादि मंत्र भी जाति-भिन्नता के प्रतिपादक हैं।

३ शङ्का—अब वेद को छोड़ नीचे आइए। शतपथ, गोपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदानुकूल ही हैं यथा:—

ब्रह्मैव वसन्तः। क्षत्रं ग्रीष्मः। विडेव वर्षाः। तस्माद्ब्राह्मणो वसन्त आदधीत। ब्रह्म हि वसन्तः। तस्माद् क्षत्रियो ग्रीष्म आदधीत। क्षत्रं हि ग्रीष्मः। तस्माद्वैश्यो वर्षास्वादधीत। विड्ढिवर्षाः॥ शतपथ कां० २। ८॥

ब्राह्मणो वैव राजन्यो वा वैश्यो वा ते हि यज्ञियाः। शतपथ ब्रा० कां० ३। १॥

इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। जिन से सिद्ध होता है कि शूद्र यज्ञ का भी अधिकारी नहीं। उपनयनसंस्कार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों का ही उक्त है। इस से भी सिद्ध होता है कि पहिले भी जाति-भेद माना जाता था।

४ शङ्का—छवों शास्त्रों में सर्व-श्रेष्ठशास्त्र वेदान्त माना गया है इस में शूद्रों के लिये वेदों के अध्ययन, श्रवण दोनों ही निषिद्ध हैं। यथा:—

श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च। सू० १। ३। ३८॥
इस के भाष्य में श्रीशङ्कराचार्य लिखते हैं कि:—

श्रवणप्रतिषेधस्तावद्–अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र-प्रतिपूरणम् । पद्यु ह वा एतद् श्मशानं यच्छूद्रः । तस्मात् शूद्र-समीपे नाध्येतव्यञ्च ।

शूद्र यदि वेद सुने तो इस के कानों को रांग और लाख से भर देवें । शूद्र श्मशान के समान है । इस हेतु इस के निकट वेद नहीं पढ़ना चाहिये । मनुजी कहते हैं:—

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्नच संस्कारमर्हति । नास्याधिकारो धर्म्मेऽस्ति न धर्म्मात् प्रतिषेधनम् ॥ १२६ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्य्यो धनसञ्चयः । शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ १२८ ॥ मनु० १२ ॥

न शूद्र को कोई पातक लगता है न उस के लिये कोई संस्कार है । न उस को धर्म्म में अधिकार है । और धर्म से प्रतिषेध भी नहीं है ॥ १२६ ॥ शूद्र समर्थ होने पर भी धनसञ्चय न करे क्योंकि धनको पाके ब्राह्मण की ही बाधा किया करता है इत्यादि ।

५ शङ्का—वैयाकरण शिरोमणि वेदविद् महर्षि पाणिनि के व्याकरण देखने से भी प्रतीत होता है कि जाति-भेद अनादिकाल से चला आता है पाणिनि कहते हैं:—

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥ ८ । २ । ८३ ॥

अशूद्राविषये प्रत्यभिवादे यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतः स्यात् । सचोदात्तः । अभिवादयेदे वदत्तोऽहम् । भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३ । इत्यादि ।

अभिवाद=नमस्कार । प्रति+अभिवाद=आशीर्वाद । सूत्र कहता है कि अशूद्र विषयक प्रत्यभिवाद में जो वाक्य है उसका 'टि' प्लुत हो जायगा । परन्तु शूद्र के प्रत्यभिवाद में टि का प्लुतत्व नहीं होगा । इससे सिद्ध होता है कि

चारों वर्णों में अभिवादन और प्रत्यभिवादन की रीति भी भिन्न २ थी। पुनः--

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ २। ४। १० ॥

अबहिष्कृतानां शूद्राणां प्राग्वत्। तक्षायस्कारम्। पात्राद्बहिष्कृतानान्तु चाण्डालमृतपाः।

इस से विदित होता है कि शूद्र दो प्रकार के होते हैं। एक अबहिष्कृत और दूसरे बहिष्कृत। जो आर्य्यों में मिल गये जैसे तक्षा अयस्कार आदि ये अनिरवसित (अबहिष्कृत) और जो आर्य्यों में नहीं मिलाये गये हैं जैसे चाण्डाल मृतप आदि। ये निरवसित कहलाते हैं। व्याकरण के अनुसार द्वन्द्व समास में इनका प्रयोग भी भिन्न २ होता है।

६ शङ्का--आप लोग 'जाति' शब्द से बहुत डरते हैं परन्तु हम लोग चकित होजाते हैं कि जो मनुष्य पाणिनि को महर्षि और प्रमाणिक मानता है वह कैसे कह सकता है कि पाणिनि जाति नहीं मानते थे। अथवा इनके समय में जाति विभाग नहीं था महर्षि पाणिनि जाति की चर्चा बहुधा करते हैं। यथाः—

ब्राह्मोऽजातौ ॥ ६। ४। १७१ ॥

योगविभागोऽत्र कर्तव्यः। ब्राह्म इति निपात्यते। अनपत्येऽणि। ब्राह्मं हविः। ततो जातौ। अपत्ये जातावणि ब्रह्मणष्टिलोपो न स्यात्। ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणम् ॥

क्षत्राद् घः ॥ ४। १। १३८ ॥

क्षत्रियः। जातावित्येव क्षत्रिरन्यः। शूद्राचामहत्पूर्वाजातिः। इत्यादि ॥

मनुजी भी जाति शब्द का प्रयोग करते हैं। यथाः-

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णा द्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रोनास्ति तु पञ्चमः ॥ म० १०। ४ ॥
क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवतिजातितः॥ म० १०। ११

शुचिरुत्कृष्ट शुश्रूषुर्मृदु वागनहङ्कृतः ।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥मनु ०९।३३५॥

मनुस्मृति और अन्यान्य धर्म्मशास्त्रों में जाति और वर्ण ये दोनों शब्द एकार्थ में प्रयुक्त हुए हैं । पुनः आप मनुष्यों में भिन्न-जाति मानने में क्यों सन्देह करते हैं ।

यहां तक मैंने वेद शास्त्रानुसार आप से निवेदन किया अब आप दो चार युक्तियां भी सुनिये ।

७ शङ्का-(क) कर्म्मानुसार सृष्टि आप,हम दोनों मानते हैं । इस अवस्थामें स्वीकार करना पड़ेगा कि सृष्टि की आदि में भी अपने२ कर्म्म के अनुसार पशु, पक्षी आदि के समान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी उत्पन्न हुए होंगे । इसमें आस्तिकों को सन्देह ही क्या हो सकता है । (ख) जब कर्म के अनुसार कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र हुए तो इस अवस्था में ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण नहीं होसकता । जैसे त्रिकाल में भी घोड़ा हाथी नहीं होता और हाथी घोड़ा नहीं । अतः ब्राह्मण को शूद्र बनाना और शूद्र को ब्राह्मण बनाना यह भी साहसमात्र ही है । (ग) पुनः हम देखते हैं पशुओं में; पक्षियों में; जलचर मत्स्यादिकों में तथा इन वृक्षादि जड़ वस्तुओं में भी भिन्न२ जातियां ईश्वर ने बनाई हैं । तो क्या मनुष्यों में ही एक-जाति बनावेंगे ? इस मनुष्य-जाति को अन्यान्य जाति के समान अनेक करने में क्या ईश्वर को किसी ने रोक लिया ! जब संसार में एक-जाति किसी वस्तु को नहीं देखते हैं तो मनुष्य में ही केवल एक-जाति मानकर कैसे सन्तोष करलें । कोई उदाहरण इस में आप देवें । यदि उदाहरणाभाव है तो आप को स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्यों में भी भिन्न२ जातियां हैं । (घ) पुनः एक२ जाति में भी भिन्नता साक्षात् देखते हैं । यद्यपि सर्प एक-जाति है, वानर एक जाति है तथापि इन में सैकड़ों जातिएं पाई जाती हैं इसी प्रकार जड़ पदार्थ में भी । यद्यपि आम्र एक जाति है परन्तु इस में पचासों भेद विद्यमान हैं । इसी प्रकार ब्राह्मण एक-जाति है परन्तु इन में अनेक भेद विद्यमान हैं इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में भी जानिये । जब आप एक-जाति वाले सर्पादिकों के भेद का

अपलाप नहीं कर सक्ते। हज़ारों लाखों मनुष्य मिल कर भी जब वानरों और अन्यान्य सर्पादिकों की एक जाति नहीं बना सक्ते तो आप मनुष्य को एक-जाति बनाने का साहस कैसे कर सकते हैं ?। (ङ) पुनः यदि मनुष्य एक जाति हो तो एक प्रकार की प्रवृत्ति होनी चाहिये। मनुष्यों में भिन्न २ प्रवृत्तियें क्यों हैं। जैसे सकल ऊंट को कण्टक के, शूकर को अभक्ष्य के, शुकादि पक्षी को फल के; गृध्र को मांस के भक्षण में सब की एक सी प्रवृत्ति है। वैसे ही सब मनुष्य की एकसी प्रवृत्ति होनी चाहिये। परन्तु मनुष्य में सो नहीं देखते। किसी की तपस्या में, किसी की युद्ध में, किसी की व्यापार में, किसी की जूता बनाने केश काटने, खेत करने आदि में, ही प्रवृत्ति है। इस कारण से भी मनुष्य जाति भिन्न२ है। (च) षष्ठ युक्ति कहकर समाप्त करते हैं कि भगवान् के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य, और पैर से शूद्र की उत्पत्ति वेद शास्त्र सब मानते हैं इस हेतु ये चारों भिन्न २ जातिएं हैं इस में सन्देह नहीं इस का समाधान प्रथम आप कर के हम लोगों को समझा देवें। तब अन्यान्य शङ्काएं यदि रहेंगी तो करेंगे।

इस प्रकार सत्संग के हेतु एक समय तर्कपञ्चाननशास्त्री, विद्यासागर दामोदर जी, घनश्यामाचारी, मीमांसारत्न बलभद्रजी, श्री रंगाचारी, अप्पैदीक्षित न्यायरत्न, व्याकरणतीर्थ हरिहराचार्य, सुब्रह्मण्य शास्त्री प्रभृति अनेक विद्वान् एकत्रित हुए। क्योंकि जब तक विद्वान् किसी विषय का निर्णय नहीं करते हैं तब तक संदेह ही रहता है। और जब तक संदेह रहता है तब तक अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती है। श्रीकृष्णजी ने कहा है कि 'संशयात्माविनश्यति' इस हेतु आज मैं आप सबों से जाति का ही निर्णय कथन करूँगा। इस समय भारत में इस का बड़ा आन्दोलन है। शास्त्र में कहा गया है कि जब तक अज्ञानता रहती है। तब तक अनेक क्षति होती रहती हैं इस हेतु सहस्रों प्रयत्नों से अज्ञान का नाश और ज्ञान का उपचय अवश्य करना चाहिये। जगत् में अविद्या ही दुःख का मुख्य कारण है। परन्तु इस के पहले हम सब मिल के उस प्रभु के यश को गालेंवे तो महान् कल्याण हो और अन्तःकरण की शुद्धि हो ताकि इस विषय की शान्ति पूर्वक हम सब अच्छे प्रकार मीमांसा करसकें॥

"प्रार्थना स्तुति"

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये॥
अथर्व० ७। ८७॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ यजु० १८।४८॥

जो न्यायकारी देव, अग्नि में, जल के अभ्यन्तर, ओषधियों में और वीरुधों में व्यापक है। जिस ने सम्पूर्ण स्थावर और जंगम कल्पित किये हैं। उस प्रकाशरूप न्यायकारी देव को सहस्रशः नमस्कार हो। हे भगवन्! हमारे ब्राह्मणों में, राजाओं में, वैश्यों में तथा शूद्रों में ज्योति दीजिये। हे जगदीश! मैं भी उस ज्योति का भिक्षुक हूं कृपा करो अजस्र ज्योति प्रदान करो कि हम आप की विभूति देख सकें और सत्यासत्य समझ सकें।

"सब वर्णों के लिये समान प्रार्थना"

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ यजु० १८।४८॥

अर्थः—हे परमेश्वर! (नः) हमारे (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों में (रुचम्) प्रकाश (धेहि) स्थापित कीजिये (नः) हमारे (राजसु) राजाओं में (रुचम्+कृधि) प्रकाश स्थापित कीजिये (विश्येषु+शूद्रेषु) हमारे वैश्यों और शूद्रों में (रुचम्) तेज स्थापित कीजिये और (मयि) मुझ में (रुचा) प्रकाश के साथ रुचम्) प्रकाश अर्थात् अविच्छिन्न प्रकाश (धेहि) स्थापित कीजिये। स्वामीजी (श्रीमद्दयानन्द सरस्वती) रुचम्=प्रेम, प्रीति अर्थ करते हैं। महीधर रुचम्=दीप्तिम्। धेहि=आरोपय। विश्येषु=वैश्येषु।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि॥ यजु० २०।१७॥

अर्थः–(यद्+एनः) जो अपराध (चयम्) हमने (ग्रामे) ग्राम में (यत्) जो अपराध (अरण्ये) अरण्य में (सभायाम्) सभा में (यत्) जो पक्षपातादि (इन्द्रिये) इन्द्रिय विषय में (यत्) जो परापवादादि अपराध (शूद्रे) शूद्र के विषय में और (अर्य्ये) वैश्य के विषय में (यत्+यत्) जो २ अपराध वा पाप (चकृम) किया है और (एकस्य+अधि) सब से बढ़कर (धर्म्मणि) धर्म्म विषय में धर्म्मलोपादि रूप (यद्) जो पाप किया है । हे भगवन् ! (तस्य) उस सबका (अवयजनमसि) आप नाश करने वाले हैं । स्वामीजी का भाव यह है कि हे विद्वन् ! ग्रामादिकों में जो हम अपराध करते हैं वा करनेवाले हैं उस सब के आप छुड़ाने के साधन हैं । इस से महाशय हैं । अर्य्य=स्वामी वा वैश्य । अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ पाणिनिसू० ३ । १ । १०३ ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ यजु० २६ । २ ॥

अर्थ :—ईश्वर मनुष्यमात्र से कहता है कि (यथा) जैसे दया के वश हो कर लोगों के उपकारार्थ (इमाम्) इस (कल्याणीं) कल्याणी (वाचम्) चारों वेदरूपवाणी का इस संसार में (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये मैं (आ+वदानि) उपदेश देता हूं, इसी प्रकार आप सब भी इस कल्याणी वेद वाणी का उपदेश किया कीजिये । किस किस को मैं उपदेश देता हूं सो आगे नाम गिन कर कहते हैं (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण और राजाओं के लिये (शूद्राय+च+अर्य्याय+च) शूद्र और वैश्यों के लिये अर्थात् मनुष्यमात्र के लिये और (स्वाय+च+अरणाय) जो मेरे प्यारे हैं और अरण=दस्यु दासादि चोर डाकू हैं उन को भी मैं उपदेश देता हूं । वे पापी दुराचारी भी सुधरें । ऐ मनुष्यो ! मुझको तुम मत त्यागो इसी से तुम्हारा कल्याण है परन्तु तुम मुझे त्याग कर कल्याण चाहते हो सो नहीं होगा । इस प्रकार पिता पुत्र के समान भक्त-वत्सल ईश्वर समझाता है । ऐ मनुष्यो ! (देवानाम्) तुम में जो बड़े विद्वान् हैं उन का (प्रियः+भूयासम्) मैं प्रिय होऊं तथा (दक्षिणायै+दातुः) दक्षिणा देने

वाले धनाढ्य जो हैं उन का भी मैं प्रिय होऊँ (इह) इस मर्त्यलोक में (अयम्+मे+कामः) यह मेरी इच्छा (समृध्यताम्) पूर्ण होवे (अदः) यह मेरा वाक्य=वचन (मा+उप+दसत्) व्यर्थ न जाय । देखा जाता है कि कुविद्वान और धनाढ्य पुरुष प्रायः ईश्वर की आज्ञा प्रतिपालन नहीं करते हैं । वे समझते हैं कि हम निज पुरुषार्थ से विद्या वा धन उपार्जन करते हैं । इस में ईश्वर का क्या है । दान भी अश्रद्धा से वे देते हैं परन्तु ऐसा करने से उन की पीछे बड़ी हानि होती है अतः ईश्वर मनुष्य पर दया कर के कहता है कि मैं उन का भी प्रिय बनूं । ताकि भविष्यत् में उन्हें हानि न पहुंचे । ईश्वर ने जीव को स्वतंत्र किया है अतः कहता है कि यह कामना मेरी पूर्ण हो, मेरा वचन भग्न न होवे अन्यथा ईश्वर जो चाहता सो करता ॥

प्रियं मां दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च । यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ अथर्व १९।३२।८॥

अर्थ :—(दर्भ) हे दुष्टों के विदारक शिष्टों के संरक्षक देव ! (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय के लिये (शूद्राय+च+अर्य्याय+च) शूद्र और वैश्य के लिये अर्थात् सब के लिये (मा+प्रियम्) मुझ को प्रिय (कृणु) करो (यस्मै+च) हे भगवन् ! जिस के लिये (कामयामहे) कामना करते हैं अर्थात् (सर्वस्मै+च+विपश्यते) सब ही द्रष्टा पुरुष का प्रिय मुझे बनाओ । पुनः—

प्रियं मां कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्य्ये ॥ अथर्व १९।६२।१

अर्थ :—हे भगवन् ! (देवेषु) देव अर्थात् ब्राह्मणों में (मा+प्रियं+कृणु) मुझ को प्रिय बनावें । (राजसु+प्रियं+मां+कृणु) राजाओं में मुझ को प्रिय बनावें । (सर्वस्य+पश्यतः) सब देखने वालों में मुझे प्रिय बनावें । (उत+शूद्रे+उत+अर्य्ये) शूद्र और वैश्य में मुझे प्रिय बनावें ।

विवेकी पुरुषो ! मैंने यहां वेदों से पांच मंत्र उद्धृत किये हैं । इस वैदिक आज्ञा पर आप लोग ध्यान देवें । सबों के लिये एक सी प्रार्थना है । क्या ब्रा-

ह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य क्या शूद्र इन चारों में प्रकाश स्थापित करो । यदि शूद्र निकृष्ट अधम धर्म-विहीन माना जाय तो इस के लिये ऐसी प्रार्थना क्यों ! तब तो ऐसी प्रार्थना होनी चाहिये थी कि शूद्रों को मेरा दास बनाओ । पुनः "यद्ग्रामे" इस मंत्र में कहा गया है कि शूद्र और वैश्य के निकट मैंने जो अपराध किया उसे भी आप क्षमा कीजिये । आज कल तो धर्म्मशास्त्र के अनुसार शूद्रों के घात करने करवाने में भी कोई अपराध नहीं माना जाता । परन्तु वेद कहता है कि सब अपराध बराबर ही है । पुनः "यथेमांवाचम्" इस मंत्र के द्वारा सम भावसे वेदरूप कल्याणी वाणी का उपदेश सब को देता है । आज कल शूद्रों को वेद पढ़ना सुनना सब ही मना है । परन्तु यहां विपरीत देखते हैं । स्वयं भगवान् कहता है कि मेरी वाणी सब में पहुंचाओ । हे विद्वानो ! इस प्रकार आप देखते हैं वेदों में शूद्रों का दरजा नीच नहीं है । क्या आप इतने बुद्धिमान् और तार्किक शिरोमणि हो कर भी इस में सन्देह मानते हैं । क्या यथार्थ आप मनुष्यों में पशुवत् जातिभेद मानते हैं । इन में जातिभेदक लक्षण क्या पाते हैं। जैसे पशुओं में हाथी से घोड़ा एक भिन्न वस्तु है यह प्रत्यक्षतया भासता है कि हाथी को शुण्ड (सूंढ़) है घोड़े को नहीं । हाथी का शरीर, गर्जन, चलन, भोजन आदि सब ही घोड़े से भिन्न है । आप इसीप्रकार कोई उदाहरण लेलेवें । आप विषम उदाहरण लेते हैं इस हेतु शङ्का में पड़े हुए हैं । आप कहते हैं कि जैसे गदही गाय नहीं होती वैसे ही शूद्र ब्राह्मण नहीं हो सकता है । आप सोचें आप का यह उदाहरण विषम है क्योंकि प्रत्यक्ष में गाय के जैसे रूप रंग चलन कर्म स्वभाव प्रकृति हैं वैसे गदही के नहीं एक बालक भी गाय और गदही को देख कर कह सकता है कि ये दोनों दो जाति के हैं । क्या ऐसा ही भेद आप को ब्राह्मण और क्षत्रिय में प्रतीत होता है । हे विद्वानो ! आप लोग स्वयं विचार करें मैं आगे इस को पुनः निरूपण करूंगा । आप लोग कहेंगे कि आर्य्य दस्यु का निर्णय छोड़ अन्य विषय में चले गये । आप यह भी कदाचित् कहेंगे कि आपने जो वेदों के पांच उदाहरण दिये हैं । उन में तो चारों वर्ण प्रायः बराबर ही मानेगये हैं । परन्तु वेदों के पचासों स्थलों में यह जो आता है कि दास वा दस्यु को मारो निकालो ये काले हैं । आर्य्य की रक्षा करो दस्यु को सूर्य्य-ज्योति भी प्राप्त न होवे । आर्य्यों को पूर्ण ज्योति

दो। इस से विस्पष्ट सिद्ध होता है कि आर्य्यों की अपेक्षा दस्यु वा दास निकृष्ट जाति हैं। उसी को आज शूद्र कहते हैं। वेदों में जैसी आज्ञा है वैसी हम आज वर्त्तते हैं इत्यादि। इस में सन्देह नहीं की दस्यु और आर्य्य शब्द के ऊपर प्रथम विचारना है। हम यहां प्रथम आर्य्य और दास सम्बन्धी अनेक ऋचाओं का अर्थ सहित उल्लेख करते हैं। आप लोग ध्यान से इन ऋचाओं को विचारें आपको मालूम हो जायगा कि आर्य्य वा दस्यु वा दास किस को कहते हैं। शूद्र को दास वा दस्यु नहीं कहते ॥

'आर्य्य, दस्यु और दास शब्द'

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र। धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ऋ० १।३३।४॥

अर्थः-(इन्द्र) हेशूरवीर नरेन्द्र! (उपशाकेभिः) विविधशक्तियों से संयुक्त आप (एकः+चरन्) एकाकी विचरण करते हुए (घनेन) वज्र समान अस्त्र से (हि) निश्चय ही (धनिनम्) धनिक (दस्युं) चोर डाकू आदि दुष्ट प्राणी का (वधीः) वध कीजिये और (सनकाः) अधर्म्म से औरों के पदार्थ छीनने वाले मनुष्य (ते) आप के (धनोः+अधि) धनुष के ऊपर (व्यायन्) आते हुए (विषुणक्) सब प्रकार से (प्रेतिम्) मरण को (ईयुः) प्राप्त होवें। वे कैसे सनक हैं (अयज्वनाः) यज्ञादि शुभ कर्म्म विरहित। स्वामिजी-दस्यु= बल और अन्याय से दूसरों के धन को हरने वाले दुष्ट। धनुष। आज कल 'धनोः' रूप नहीं होगा। किन्तु 'धनुषः' होगा। प्रेति=प्रेत=मरण ॥

यहां देखते हैं कि 'अयज्वा' विशेषण आया है। जो यज्ञ करने वाले नहीं। यज्ञ नाम समस्त शुभ कर्म्म का है। जो शुभ कर्म्म नहीं करेगा वह अवश्य चोर डाकू नास्तिक व्यभिचारी कितव धूर्त्त होगा। ऐसे पुरुषों का शासन करना राजा का परम धर्म्म है। सायण 'दस्यु' शब्द का 'चोर' अर्थ करते हैं। उपक्षयार्थक 'दस' धातु से बनता है जो प्रजाओं में क्षय अर्थात् विनाश पहुंचाया करे। ऐसे को यदि दण्ड न दिया जाय तो प्रजा में कैसे शान्ति हो सकती है। इस से 'दस्यु' कोई भिन्न जाति सिद्ध नहीं होता। एवमस्तु ॥

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रा यज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः। प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ऋ० १।३३।५॥

परा। चित्। शीर्षा। ववृजुः। ते। इन्द्र। अयज्वानः। यज्वभिः। स्पर्धमानाः। प्र। यत्। दिवः। हरिवः। स्थातः। उग्र। निः। अव्रतान्। अधमः। रोदस्योः॥

अर्थः—जो दस्यु=दुष्ट जन स्वयं (अयज्वानः) वैदिक यज्ञों के विरोधी हैं अथवा शुभ कर्म्म रहित हैं। परन्तु (यज्वभिः+स्पर्धमानाः) यज्वा=शुभ कर्म्म करने वालों के साथ द्वेष रखने वाले हैं। (इन्द्र) हे राजेन्द्र ! नगाधिपते आप की रक्षा के प्रताप से (ते) वे दस्यु अयज्वा पुरुष (शीर्षा) अपने शिरों को (परा+चित्) पराङ्मुख कर के ही (ववृजुः) भाग जाते हैं (हरिवः) हे प्रशस्त घोटक-युक्त (प्र+स्थातः) हे युद्ध स्थल में सदा प्रस्थान करने वाले हे (उग्र) प्रचंड राजेन्द्र ! आप ने (यत्) जो द्युलोक से अर्थात् बहुत दूर स्थान में और (रोदस्योः) पृथिवी और अन्तरिक्ष से अर्थात् सर्वत्र से (अव्रतान्) शुभ कर्म्म रहित चोर डाकू आदि विघ्नकारी पुरुषों को (नि+अधमः) निःशेषतया निकाल बाहर किया है इस हेतु आप प्रशंसनीय हैं (१)॥

यहां 'दस्यु' के विशेषण में 'अयज्वा' और 'अव्रत' दो शब्द आए हैं और कहा जाता है कि ये दस्यु यज्ञ करने वाले के साथ स्पर्धा अर्थात् ईर्षा करते हैं। इस से सिद्ध है कि एक तो यज्वा व्रती आस्तिक हैं। और दूसरा अयज्वा, अव्रती और नास्तिक हैं। व्रत नाम नियम का है। क्या सामाजिक क्या धार्म्मिक क्या राजकीय क्या ईश्वरीय इन में से किसी नियम को जो नहीं पालता है वह अवश्य प्रजा में उपद्रवी होगा। इस हेतु वह नीच है। इसी को आज कल 'असुर' कहते और आर्य्य को देव कहते हैं। ऐसे नीच पुरुष निज समाज

(१) वृजी, वर्जने। हरिवः=हरिवान् का सम्बोधन में हरिवः। अधमः=धमा शब्दाग्निसंयोगयोः।

यों से ही उत्पन्न होते हैं क्या आज कल इस में ऐसे नहीं हैं ॥

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे । अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ऋ० १।३३।७॥

त्वम् । एतान् । रुदतः । जक्षतः । च । अयोधयः । रजसः । इन्द्र । पारे । अव । अदहः । दिवः । आ । दस्युम् । उच्चा । प्र । सुन्वतः । स्तुवतः । शंसम् । आवः ।

अर्थः—(इन्द्र) राजेन्द्र ! आप (रुदतः) रोते हुए । (जक्षतः+च) और खाते हुए वा हंसते हुए (एतान्) इन दुष्टों को (रजसः+पारे) लोक के पार अर्थात् वस्ती के पार (अयोधयः) युद्ध करके भगा देवें और (दस्युम्) चोराधिपति दस्यु को (दिवः+आ) द्युलोक से लाकर अर्थात् बहुत दूर स्थान से भी लाकर (उच्चा) बड़े उत्कर्ष के साथ (अव+अदहः) दग्ध कीजिये । और इस प्रकार उपद्रवों को शान्त कर (प्र+सुन्वतः) यज्ञ करने और (स्तुवतः) ईश्वर के गुण गाने वाले मनुष्यों की (शंसम्) स्तुति की (आवः) रक्षा कीजिये । जक्ष="जक्ष भक्ष हसनयोः" जक्ष धातु का हंसना और खाना अर्थ है । रजस=लोक, पृथिवी अन्तरिक्षादि । षुञ् अभिषवे । अभिषवः स्नपनं पीडनं स्नानं सुरासंधानम् । षुञ् धातु का अभिषव अर्थ होता है । स्नान करना, निचोड़ना, नहाना, और मद्य बनाना इतना अर्थ अभिषव का होता है । इसी से सोम, सुरा, सुत, अभिसुत, प्रसुत, अभिषेक, सुन्वत् आदि शब्द बनते हैं । शंस=शंसु स्तुतौ प्रशंसा शस्त्र आदि शब्द बनते हैं । वैदिक भाषा में 'शस्त्र' नाम स्तोत्र का भी बहुधा आया है । 'अव' धातु अनेकार्थक है । प्रायः रक्षार्थ में इस का प्रयोग बहुत होता है ।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत । त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ऋ० १ । ५१ । ५ ॥

त्वम् । मायाभिः । अप । मायिनः । अधमः । स्वधाभिः । ये । अधि ।

शुता । अनुहृत । त्वम् । पिप्रोः । नृ+मनः । प्र । अरुजः । पुरः । प्र । ऋजिश्वानम् । दस्यु+हत्येषु । आविथ ॥

अर्थ :—हे राजेन्द्र ! (त्वम्) आप ने (मायाभिः) प्रकृष्ट बुद्धियों से (मायिनः) छल कपटादि युक्त अयज्वा अव्रती दस्युओं को (अप+अधमः) कम्पायमान करें (ये) जो (स्वधाभिः) विविध अन्नों से (अधि+शुता) मुख में ही (अनुहृत) हवन करते हैं अर्थात् जो यज्ञ न कर के केवल अपने उदर को पूर्ण करने में ही लगे रहते हैं उन दुष्टों को दूर करें (नृमण+नृ+मनः) मनुष्यों की रक्षा में सदा मन रखने वाले राजन् ! (त्वम्) आप (पिप्रोः) पिप्रु= उपद्रव अशान्ति अज्ञानता नास्तिकता फैलाने वाले जनों के (पुरः) नगर को (प्र+अरुजः) भग्न करें और (दस्यु हत्येषु) जिन संग्रामों में दुष्टों का हनन होता है उन दस्युहत्य संग्रामों में (ऋजिश्वानम्) ऋजु=सरल प्रकृति पुरुषों की (आविथ) रक्षा कीजिये । माया=प्रज्ञा, बुद्धि कपट आदि । धमति गति कर्म्मेति यास्कः धम=ज्ञाना । स्वधा=अन्न । शुप्ति=मुख । पिप्रुः=पृ पालन पूर्णयोः । जो दुःख से जगत को पूरित करे । नृमणः । नृषुमनो यस्य स नृमणाः । अरुजः रुजोभंगे । ऋजिश्वानम् । ऋजुमश्नुते प्राप्नोति ऋजिश्वा । दस्युहत्येषु= हन् हिंसागत्योः । दस्यूनांहत्यायेषु संग्रामेषु । आविथ=अवरक्षणे ॥

इस ऋचा में विस्पष्ट कहा गया है कि जो अपने मुख में ही हवन करते हैं अर्थात् जो दान, यज्ञ, परोपकार आदि शुभ कर्म्मों से विरहित हैं । ऐसे आदमी अवश्य असुर होते हैं । कौषीतकी ब्राह्मण में उक्त है 'असुरा वा आत्मन्यजुहवु रूद्रातेम्रौ ते पराभवन्' । असुरगण शरीर में ही हवन करते थे । अतः वे परास्त हुए । पुनः वाजसनेयियों ने कहा है 'देवाश्चहवा असुराश्चास्पर्धन्त । ततो हासुराअभिमानेन कस्मै च न जुहुम इति स्वेष्वेव आस्येषु जुह्वतश्चेरुस्ते परावभूवुः इति' । देव और असुर परस्पर ईर्षा करने लगे । असुर गण अभिमान से किसी की पूजा स्तुति हम नहीं करेंगे यह मन में ठान अपने ही मुख में हवन करते हुए विचरण करने लगे । इस हेतु अन्त में ये परास्त हुए । सायण ने अपने भाष्य में इन वाक्यों को उद्धृत किया है । वैदिक और ब्राह्मण दोनों वाक्य एक प्रकार के हैं । इस से सिद्ध होता है कि वेद के दस्यु वा दास ब्राह्मण ग्रन्थों के

असुर हैं। परन्तु असुर कोई जाति विशेष नहीं जो दानादि न करे वे असुर हैं अतः दास वा दस्यु की भी कोई भिन्न जाति नहीं। इसी सूक्त की नवम ९ ऋचा में अनुव्रत और अपव्रत दो शब्द आये हैं जिस को आज कल क्रम से आस्तिक और नास्तिक कहते हैं। नवम मंत्र का अर्थ आगे देखिये।

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम्। महान्तं चिदर्बुदम् नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे॥ १।५१।६॥

त्वम्। कुत्सम्। शुष्ण+हत्येषु। आविथ। अरन्धयः। अतिथि+ग्वाय। शम्बरम्। महान्तम्। चिद्। अर्बुदम्। निः। क्रमीः। पदा। सनात्। एव। दस्यु+हत्याय। जज्ञिषे।

अर्थ :—हे राजेन्द्र! (शुष्ण+हत्येषु) प्रजाओं के शोषण करने वालों की हत्या हो जिन संग्रामों में उन में (त्वम्) आप (कुत्सम्) ब्रह्मज्ञानी ऋषि की (आविथ) रक्षा करते हैं और (अतिथिग्वाय) अतिथि के सेवक लोगों के कल्याणार्थ (शम्बरम्) शम्=कल्याण के रोकने वाले दुष्टों को (अरन्धयः) नष्ट कर देते हैं। और (महान्तम्+चित्) महान् से महान् (अर्बुदम्) दुष्ट को (पदा+नि+क्रमीः) पैर से चूर्ण कर देते हैं। हे राजेन्द्र! (सनाद्+एव) सदा से ही (दस्यु+हत्याय) दस्यु-हनन-संग्राम के लिये ही आप (जज्ञिषे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रजाके विघ्नों की शान्ति करने के लिये ही राजा बनाए जाते हैं। शुष्ण=शोषयिता-शोषण अर्थात् दुःख देने वाला। अतिथिगु अतिथि गन्तव्य। जिस के निकट अतिथि जांय। अरन्धयः रध हिंसासंराध्योः शुष्णहत्य और दस्युहत्य ये शब्द सूचित करते हैं कि राजा को उचित है कि दुष्टों के संहार के लिये पृथक् सेना और पृथक् न्यायालय बनावे। और उन का नाम 'दस्युहत्य' रक्खे। जिस में दस्युओं का न्याय हुवा करे।

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥८॥

वि। जानीहि। आर्य्यान्। ये। च। दस्यवः। बर्हिष्मते। रन्धय। शा-

सव । अव्रतान् । शाकी । भव । यजमानस्य । चोदिता । विश्वा । इत् । ता । ते । सधमादेषु । चाकन ।

अर्थः—हे परमैश्वर्य्य शालिन् ! भगवन् ! आप (आर्य्यान्) आर्य्य अर्थात् यज्ञानुष्ठानकर्त्ता, धर्म्मात्मा, शिष्ट, विद्वान् पुरुषों को (विजानीहि) अच्छे प्रकार जानते हैं (च) और (ये+दस्यवः) जो दस्यु अर्थात् यज्ञादि व्रतरहित अनाचारी और निरपराध मनुष्यों के हिंसक हैं उनको भी आप जानते हैं । हे भगवन् ! (वर्हिष्मते) यज्ञादि शुभ कर्म्म के अनुष्ठान करने वाले के लिये आप (अव्रतान्) उन कर्म्म विरोधी अव्रती दस्युवों को (रन्धय) नष्ट करो अथवा यजमान के वश में करो । और (शासत्) उन का शासन अच्छे प्रकार करो । हे भगवन् आप (शाकी) सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं इस हेतु (यजमानस्य) यज्ञानुष्ठानकर्त्ता के (चोदिता+भव) प्रेरक होओ । हे व्रतपते ! (ते) आप के (ता) उन (विश्वा+इत्) सब ही व्रतरूप नियमों के (सधमादेषु) यज्ञ-स्थानों में प्रतिपालन के हेतु सदा (चाकन) चाहता हूं । सायण= दस्यु=अनुष्ठाताओं का उपक्षयिता शत्रु । वर्हिष्मान्=यज्ञानुष्ठाता । शासत्= शास्तु, अनुशिष्टौ । रन्धय=रध हिंसासंराध्योः । सधमादः=सहमाद्यन्तेषु इति सधमादायज्ञाः । चाकन=कनी दीप्तिःकान्ति गतिषु । दीप्ति कान्ति और गति इन तीन अर्थों में कन् धातु आता है ।

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रताना भूभिरिन्द्रःश्नथयन्ननाभुवः॥१।५१।९॥

अर्थः-(इन्द्रः) नरेन्द्र राजा आप (अनुव्रताय) शुभकर्म्म करने वाले आस्तिक के कल्याण के हेतु (अपव्रतान्) व्रत रहित पुरुषों का (रन्धयन्) हनन करते हुए और (आभूभिः) आभू अर्थात् स्तुति करने वालों के साथ द्वेष रखने वाले (अनाभुवः) अनाचारी ईश्वर-गुण-गान रहित अनाभुओं को (श्नथयन्) शासन करते हुए वर्तमान हैं । आभू=आभि मुख्येन भवन्तीति आभुवः स्तोतारः सायण कहते हैं कि आभू और अनाभू ये परस्पर विपरीत शब्द आये हैं ।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा। अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्य्याय॥ १।११७।२१॥

अर्थः-(दस्रा) दुष्टों के संहार करने वाले (अश्विनौ) हे राजन् ! तथा हे महाराणी ! (वृकेण) भूमि के विदारने वाले लाङ्गल से भूमि को चीर कर उस में (यवम्) जौ अर्थात् सब प्रकार के धान्य को (वपन्ता) बोते हुए और (मनुषाय) मनन करने वाले विद्वानों को (इषम्) अन्न (दुहन्ता) देते हुए और (दस्युं) चोर, डाकू, दुष्ट, व्यभचारी, कितव आदि और प्रजा में अशान्ति डालने वाले पुरुष को (बकुरेण) अग्निवद् भासमान अस्त्र शस्त्र से (अभि धमन्ता) वध करते हुए इस प्रकार तीन प्रकार के कार्य्य करते हुए आप दोनों सदा (आर्य्याय) आर्य्य के लिये (उरु+ज्योतिः) बहुत प्रकाश (चक्रथुः) किया करते हैं । यास्क= "वृकोलाङ्गलं भवति" (नि० ६ । २५) लाङ्गल का नाम वृक है "बकुरो भास्करो भयङ्करो भासमानो द्रवतीति" । बकुर एक अस्त्र का नाम है जिस में आग्नेय पदार्थ अधिक हों और जो भयङ्कर हो और जो अग्नि से जलता हुआ दौड़े । तत्कावश्विनौ द्यावा पृथिव्यौ इत्येके। अहोरात्रावित्येके । सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके । राजानौ पुण्यकृतौ इति ऐतिहासिकाः । (नि० १२-१) द्यावापृथिवी, अहोरात्र, सूर्य्य, चन्द्र और पुण्यवान् राजा रानी इन चारों जोड़ों को 'अश्विनौ' अश्वी कहते हैं । स्वामी जी 'आर्य्य' शब्दार्थ ईश्वर पुत्र करते हैं, अर्थात् ईश्वर के पुत्रवत् वर्तमान मनुष्य, सायण धमतिवधकर्मा ॥ धम=वध करना ॥

इन्द्रः समत्सु यजमान मार्य्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीढेष्वाजिषु । मनवे शासदव्रतान् त्वचंकृष्णामरन्धयत् । धक्षन्नविश्वं ततृषाण मोषति न्यर्शसानमोषति ॥ १ । १३० । ८ ॥

अर्थः-(शतमूतिः) अनेक प्रकार से रक्षक (इन्द्रः) महाराज नरेन्द्र । (विश्वेषु) सब (समत्सु) साधारण संग्राम (आजिषु) स्पर्धा निमित्तक संग्राम और (स्वर्मीढेषु) सुख प्राप्ति हेतुक (आजिषु) महासंग्राम इन तीनों प्रकार के संग्रामों में (यजमानम्+आर्य्यम्) यज्ञ करने वाले आर्य्य को (प्र+अवत्) अच्छे प्रकार रक्षा करें और (मनवे) सकल मनुष्यों के लिये अर्थात् प्रजा मात्र के कल्याणार्थ (अव्रतान्) नियम के न पालने वाले मनुष्यों को (शासत्) दण्डादिकों से शासन करें (कृष्णाम्+त्वचं) काले चर्म्म अर्थात्

दुष्ट कर्म्म से जिन का अन्तःकरण और बाहर दोनों काले होगये हैं ऐसे पुरुषों को (अरन्धयत्) बध करें और (न) मानों (विश्वम्) सब दुष्टों को (धक्षत्) दग्ध करें और (ततृषाणम्) हिंसा करने के इच्छुक पुरुष को (ओषाति) भस्म करें तथा (अर्शसानम्) हिंसा करते हुए दुष्ट को (नि+ओषति) जड़ मूल से भस्म करें। यहां समत् और आजि ये दोनों संग्राम के नाम हैं। स्वर्मीढ स्वः = सुख, मीढ=मिह सेचने। सेचन। जिस में सुख का सेचन हो। बिना दुष्टों के संहार से जगत में सुख नहीं होता। इस हेतु संग्राम के विशेषण में 'स्वर्मीढ' आया है। ततृषाणम् = हिंसकम्। अर्शसानम् = हिंसारुचिम्। सा०। वेद में 'न' शब्द यथा इव अर्थमें भी आता है। इस ऋचाका अर्थ स्वामीजी का प्रायः ऐसा ही है यहां 'कृष्णत्वक्' शब्द आया है। जिस का अर्थ 'काला' 'चमरा' होता है। यहां अलङ्कार से इस शब्द का प्रयोग है। यहां शरीर के चर्म्म से प्रयोजन नहीं है। आन्तरिक दुष्ट भाव को सूचित करता है। आज कल भी जो बड़ा दुष्ट होता है। उस को लोग कहते हैं कि इस का हृदय काला, इस का मन काला इत्यादि।

ससानात्याँ उत सूर्य्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्। हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वीदस्यून् प्रार्य्यं वर्णमावत् ॥ऋ० ३।३४।९॥

ससान। अत्यान्। उत। सूर्य्यम्। ससान। इन्द्रः। ससान। पुरुभोजसम्। गाम्। हिरण्ययम्। उत। भोगम्। ससान। हत्वी। दस्यून्। प्र। आर्य्यम्। वर्णम्। आवत्।

अर्थः-मनुष्यों के हित के हेतु (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य सम्पन्न जगदीश (अत्यान्) विविध पदार्थ (ससान) देता है क्या २ देता है सो आगे कहते हैं (उत) और (सूर्य्यम्) पृथिवी का धर्ता पोषक प्रकाशक सूर्य्य को (ससान) देता है (उत) और (हिरण्ययम्+भोगम्) सुवर्ण युक्त विविध भोग को (ससान) देता है इस प्रकार (दस्यून्) दुष्ट चोर डाकू आदिकों को (हत्वी) मार कर (आर्य्यम्+वर्णम्) श्रेष्ठ वर्ण अर्थात उत्तम मनुष्यों को (प्र+आवत) अच्छे प्रकार रक्षा करता है। ससान=षणु दाने। लिट् का रूप है। हिरण्ययम् हिरण्य शब्द से विकारार्थ में 'मयट् प्रत्यय हो कर हिरण्यय बनता है। हत्वी

वेदमें 'हत्वा' के स्थान में 'हत्वी' भी बनता है। आर्य्यम् उत्तमम्। वर्णम् "त्रैवर्णिकम्"। आर्य्य का उत्तम और वर्ण का त्रैवर्णिक अर्थ सायण करते हैं। परन्तु सायण का यह अर्थ अशुद्ध है। 'कृष्णत्वक्' के विरुद्ध 'आर्य्य वर्ण' शब्द आया है। जैसे मलिनात्मक पुरुष को कृष्ण कहते हैं वैसे शुद्धाचारी शुद्धात्मा साधु सज्जन को शुक्लवर्ण कहते हैं। इसी हेतु आज कल भी यश, प्रताप आदि का वर्ण श्वेत और पाप का कृष्ण वर्ण माना गया है। श्रीस्वामी जी वर्ण का अर्थ 'स्वीकर्त्तव्यः' करते हैं। इस में सन्देह नहीं कि 'वर्ण' का अर्थ आज लोग भूल गये। वृञ् वरणे धातु से वर्ण शब्द बनेगा जिस को सब कोई स्वीकार करें। सभ्य साधु सज्जन को सब कोई स्वीकार करते हैं अतः आर्य्य और वर्ण दोनों ही शब्द विशेषण हैं आर्य्य=उत्तम-कर्म-स्वभावयुक्त धार्मिक। वर्ण स्वीकार करने योग्य पुरुष।

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय। अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनुकेतमायन्॥ ४।२६।२॥

अर्थ:-ईश्वर कहता है (अहम्) मैं (आर्य्याय) आर्य्य को (भूमिम्) भूमि (अददाम्) देता हूं (दाशुषे+मर्त्याय) दान शील मनुष्यों को (अहम्) मैं (वृष्टिम्) वृष्टि देता हूं (अहम्) मैं (वावशानाः+अपः) सुखकारी जल (अनयम्) लाता हूं। हे मनुष्यो! (मम+केतम् अनु) मेरे संकल्प के अनुसार (देवासः) सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र वायु पृथिवी आदि देव (आयन्) चलते हैं॥

उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः। अर्णाचित्ररथावधीः॥ ४।३०।१८॥

अर्थ:-(इन्द्र) राजन्! (उत) और आप (त्या=त्यौ) उन (आर्य्या=आर्य्यौ) श्रेष्ठ कन्या और बालक को (सरयोः) सरयु नदी के (पारतः) पार में (सद्यः) शीघ्र (अवधीः) शिक्षा दिलावें। कैसे कन्या पुरुष (अर्णा+चित्ररथौ) जिन के शील स्वभाव बुद्धि अच्छी हों। सायण इस का अर्थ यह करते हैं कि सरयु नदी के पार में बसते हुए आर्याभिमानी अर्ण और चित्ररथ नाम के दो राजाओं का हनन आप ने किया है। परन्तु यह अर्थ उचित नहीं। इन्

हिंसागत्योः। हिंसा और गति दोनों अर्थ 'हन्' धातुके होते हैं। गति नाम गमन प्रापण ज्ञान अर्थात् गति नाम ज्ञान का है 'आर्या' यह द्विवचन है। आर्यश्च आर्या च आर्यौ। वेद में 'आर्यौ' का 'आर्या' हो जाता है। सरयु=सरति सर्वदैव गच्छति इति सरयुः। जो सर्वदा चले उसे सरयु कहते हैं। अर्ण+चित्ररथ। कोमल प्रकृति को 'अर्ण' कहते हैं अथवा अर्ण नाम जल का है। जैसे जल सब का प्रिय है वैसा सर्व प्रिय बालक। चित्ररथ। रथ—रमण, क्रीड़ा। चित्र विचित्र क्रीड़ा शील बालक। अर्थात् राजा को उचित है सर्वदा बहने वाली नदी के तट पर कन्या और बालक की पाठशाला बनाकर शिक्षा के द्वारा विज्ञान फैलाया करे।

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः। इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्य्यः॥ ५।३४।६॥

अर्थः—(समृतौ) संग्राम में (वि+त्वक्षणः) शत्रुओं को चूर्ण करने वाला (चक्रम+आसजः) चक्रास्त्रसज्जयिता (असुन्वतः+विषुणः) अयज्वायों से पराङ्मुख (सुन्वतः) और यज्वायों का (वृधः) वर्धयिता (विश्वस्य+) विश्व=सब का (दमिता) शिक्षक (विभीषणः) भयङ्कर (आर्य्यः) आर्य्य (इन्द्र) राजेन्द्र अर्थात् आर्य्य राजा (दासम्) दुष्टों का (यथा+वशम्) धीरे २ अपने वश में (नयति) लाता है। लावें॥ त्वक्षु=तनूकरणे। त्वक्ष तनूकरना। समृति=सम्=ऋति। जिसमें सम्यक् प्रकार से अर्थात् बड़े समारोह से ऋति गमन हो उसे 'समृति' कहते हैं। षुञ्=अभिषवे। इससे 'सुन्वन्' बनता है। सुन्वन्=यजमान। यहां विस्पष्ट है कि आर्य्य राजा अयज्वा को अपने वश में लावे।

त्वं ह नु त्यद दमायो दस्यूँ रेकः कृष्टी रवनोरार्य्याय। अस्ति स्विन्नु वीर्य्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥ ६।१८।३॥

अर्थः—ज्ञानी जन राजाको उपदेश देते हैं हे नरेन्द्र! (ह) निश्चय (नु) शीघ्र ही (त्यत्=त्वम) प्रजाओं में प्रसिद्ध होकर आपने (दस्यून्+अदमायः) दुष्टों का दमन किया और (एकः) अकेले आपने (आर्य्याय) शिष्टजन को

(कृष्टीः) बहुतसे धन भूमि (अवनोः) दिये हैं। इस प्रकार से आप सदा दुष्ट निग्रह शिष्ट परिग्रह करते ही रहते हैं परन्तु (ते) आपके (वीर्य्यम्) मंत्री, सेना, कोश, हस्ती, गज, अस्त्र, शस्त्र, आदि बल (अस्ति+स्वित्+नु) हैं ? अथवा (न+स्वित्+अस्ति) नहीं हैं (तत+तत) उस उस विषय की खबर (ऋतुथा) ऋतु ऋतु में (विवोचः) कहा करें अर्थात्=ऋतुथा प्रत्येक ऋतु में राजाको अपनी सभा में खबर देनी चाहिये कि अब कोश सेना आदि की यह दशा है।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्य्याय बृहतीममृध्राम् । यया दासान्यार्य्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥६।२२।१०॥

अर्थः—राजा के लिये उपदेश है [इन्द्र] हे राजेन्द्र ! [नः] हम प्रजाओं के [शत्रुतूर्य्याय] शत्रुओं के नाशार्थ आप [बृहतीम्] बहुत [अमृध्राम्] अक्षय अहिंसनीय [संयतम्] संगत इकट्ठी होने वाली [स्वस्तिम्] सेनादिधन सम्पत्ति को [आ] चारों तरफ़ से इकट्ठा कीजिये [यया] जिस सेनादि सम्पत्ति से आप [दासानि] दुष्टों को [आर्य्याणि] शिष्ट [करः] कर सकें [वज्रिन्] और हे वज्रधारी राजन् ! [नाहुषाणि+वृत्रा] मनुष्य सम्बन्धी विघ्नों को [सुतुकानि] थोड़े कर सकें। यहां पर भी शिक्षा है कि दास को आर्य्य बनावो। नहुष नाम मनुष्य का है निघण्टु देखो॥

आभिः स्पृधो मिथती ररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र । आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्य्याय विशोऽवतारीर्दासीः ॥ ६। २५। २॥

अर्थः-(इन्द्र) हे राजेन्द्र सम्राट् ! (आभिः) इन सामग्रियों से (मिथती) संग्राम करने वाली (स्पृधः) सेनाओं को (अरिषण्यन्) बचाते हुए आप (अमित्रस्य) शत्रु के (मन्युम्) क्रोध को (व्यथय) नष्ट कीजिये और (आर्य्याय) शिष्ट जन के लिये (अभियुजः) चारों तरफ उपद्रव मचाने वाली (विषूचीः) और चारों ओर फैलने वाली (दासीः) परम दुष्ट (विशः) प्रजाओं को (अवतारीः) अच्छे प्रकार ताड़न कीजिये।

इस मंत्र में विस्पष्ट पद है 'दासी विश' हिंसक प्रजाएं जितनी हैं उन सबों का संहार करो। 'दासी' यह पद 'विश' का विशेषण है।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्य्या च शूर। वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ६। ३३। ३॥

त्वम्। तान्। इन्द्र। उभयान्। अमित्रान्। दासा। वृत्राणि। आर्य्या। च। शूर। वधीः। वना+इव। सुधितेभिः। अत्कैः। आ। पृत्सु। दर्षि। नृणाम्। नृतम॥

अर्थः–हे [इन्द्र] ऐश्वर्य्य शालिन् राजन्! [त्वम्] आप [तान्+उभयान्] उन दोनों प्रकार के [अमित्रान्] शत्रुवों को [वधीः] नष्ट करें। वे दो प्रकार के शत्रु कौन हैं? जो [दासा] प्रजाओं में उपद्रव मचाने वाले बाह्य शत्रु और [आर्य्या] आर्य्यकृत [वृत्राणि] आन्तरिक अज्ञान इन दोनों का नाश करें [नृणाम्+नृतम] मनुष्यों के उत्तम नायक [शूर] शूर राजन्! आप (वना+इव) जैसे वन में कुठारादिकों से वृक्षों को काटते हैं तद्वत् आप [पृत्सु] संग्रामों में [सुधितेभिः] अच्छे बनाए हुए [अत्कैः] निज आयुधों से [दर्षि] अन्यान्य उपद्रवों का भी नाश करें। विविध सेना और रक्षणादि उपायों से बाह्य उपद्रवों की और विद्यादि शुभ कर्म्म के प्रचार से आन्तरिक अथवा आर्य्यकृत उपद्रवों की शान्ति क्रिया कीजिये। दास–उपक्षयिता। कर्म्म विरोधी। ज्ञान के क्षय करने वाले। अथवा प्रजा के धन के क्षय करने वाले अज्ञानी। अथवा हिंसक। वृत्र–आवरक आवरण करने वाले अज्ञान यहां 'वृत्र' शब्द नपुंसक बहु वचन है। अतः अज्ञानार्थ है। आर्य्य–यह यहां वृत्र का विशेषण भी हो सकता है। क्योंकि अज्ञान भी बहुत बड़ा है। शीघ्र इस का नाश नहीं होता। अथवा आर्य्यों में जो वृत्र अज्ञान उसे आर्य्य वृत्र कहते हैं॥

हतो वृत्राण्यार्य्या हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अपद्विषः॥ ६। ६०। ६॥

हतः । वृत्राणि । आर्य्या । हतः । दासानि । सत्पती । हतः । विश्वा । अप । द्विषः ॥

अर्थः—राजा और अमात्य मिल कर (आर्या) आर्य्यकृत (वृत्राणि) उपद्रवों को (हतः) नष्ट करते हैं (सत्पती) सज्जन पुरुषों के पालन करने वाले वे राजा और मंत्री (दासानि) दासकृत उपद्रवों को (हतः) नष्ट करते हैं । इस प्रकार (विश्वा+द्विषः) सब शत्रुओं को (अप+हतः) नष्ट करते हैं । हन् हिंसा गत्योः । हन्ति, हतः । यहां हतः द्विवचन है ॥

यद्यपि आर्य्य नाम श्रेष्ठ और दास नाम दुष्ट का है । कभी २ विद्वान् धार्म्मिक पुरुष से भी अन्याय हो जाता है । आज कल भी यही रीति देखते हैं अतः ईश्वर आज्ञा देता है कि यदि विद्वान् श्रेष्ठ पुरुष से भी भूल हो जाय तो राजा मंत्री और राजसभा को उचित है कि इन को भी दण्ड देवे । तब ही प्रजा में शान्ति रह सकती है ॥

त्वे असुर्य्यं वसवोन्यृण्वन् क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त । त्वं दस्यूँ रोकसोऽग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्य्याय ॥ ७-५-६ ॥

अर्थ :—[मित्रमहः] हे मित्रों के पूजयिता [अग्ने] अग्ने मंत्रिन् ! [त्वे] आप की सहायता के निमित्त [वसवः] वसु नाम के कार्य्य सम्पादक राज्याधिकारी गण [असुर्य्यम्] विविध उपायों की [नि+ऋण्वन्] आयोजना करते हुए [हि] निश्चय, नियम पूर्वक वे [ते] आप के [क्रतुम्] कार्य्य को अथवा आप की आज्ञा को [जुषन्त] सेवन करते हैं । इस हेतु निर्भय हो कर [त्वम्] आप [ओकसः] प्रत्येक स्थान से [दस्यून्] दुष्ट=कर्म्म रहित पुरुषों को [आजः] दूर फेंक दीजिये और इस प्रकार [आर्य्याय] शिष्ट जन के लिये [उरु+ज्योतिः] बहुत प्रकाश [जनयन्] उत्पन्न करते हुए आप सदा अपने कार्य्य में निर्भर रहैं । असुर्य्यम्=असुर=वीर तत्सम्बन्धी असुर्य्य ॥

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः । आ योऽनयत् सधमा आर्य्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन् ॥ ७ । १८ । ७ ॥

अर्थ :—[पक्थासः] पक्थ [भलानसः] भलाना [अलिनासः] अलिन [विषाणिनः] विषाणी [शिवासः] शिव ये सर्व प्रकार के मनुष्य [आभनन्त] अच्छे राजा की कीर्त्ति को गावें [यः] जो राजा [सधमाः] सभा की आज्ञा को मानते हुए [तृत्सुभ्यः] हिंसक दुष्ट पुरुषों से रक्षा कर के [आर्यस्य] शिष्ट पुरुष के [गव्या] पदार्थों को [आ+अनयत्] सर्वदा लाया करता है और [नॄन्] दुष्ट मनुष्यों को [युधा] युद्ध के द्वारा [अजगन्=अजगत्] शासन किया करते हैं ॥ पक्थ=पाचक यज्ञादि कर्म्म में पाक करके लोगों को सत्कार करने वाले । भलाना=वाग्मी, भद्रमुख प्रिय भाषण करने वाले सदा सुप्रसन्न । अलिन=तपस्यादि से रहित विलासी पुरुष । विषाणी=विषाण=शृंग=सींगधारी अर्थात् मलिन । शिव=मंगल मूर्ति । सधमा = सध+मा, सध = साथी । मा मानना । साथियों को मानने वाला अर्थात् सभा की आज्ञा मानने वाला । भनन्त । भनतिः शब्दकर्म्मा ।

य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वाऽऽर्य्यात्सप्त सिन्धुषु । वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥ ८ । २४ । २७ ॥

अर्थः—[यः] जो परमात्मा [ऋक्षात्+अंहसः] भालू स्वरूप पाप से [मुचत्] छुड़ाता है [वा] और [यः] जो [सप्तसिन्धुषु] सर्पण शील नदियों के तट पर यज्ञादि करने वालों को [आर्य्यात्] आनन्द पहुंचाता है । हे [तुविनृम्ण] आनन्दस्वरूप धनसम्पन्न परमेश्वर ! आप [दासस्य] जगत के क्षय करने वाले मनुष्यों के [वधः] वध साधन अस्त्रादिकों को [नीनमः] नमाओ अर्थात् दूर करो । सायणः–ऋन् मनुष्यान् क्षणोतीति ऋक्षः । मनुष्य के हिंसक राक्षस को ऋक्ष कहते है । **आर्य्यात्** =सायण कहते हैं कि **आर्य्यात्** क्रिया पद है । ऋ गतिप्रापणयोः=गत्यर्थक और प्रापणार्थक 'ऋ' धातु से आशीर् लिङ् में बनता है । सप्त = सर्पणशीलासु । बहने वाली । यहां सायण भी 'सप्त' शब्द का अर्थ पक्षान्तर में सर्पण शील ही करते हैं । तुविनृम्ण । बहुधनेन्द्र । दास = उपक्षयिता । नीनमः = नमय ।—

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः । उपो षु जात-मार्य्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ ८ । १०३ । १ ॥

अर्थः—[गातुवित्तमः] गायकों के भावको परमज्ञाता वह परमात्मा साधकों के हृदय में [अदर्शि] दृष्टि गोचर होता है । [यस्मिन्] जिस के निमित्त [व्रतानि+आदधुः] व्रत धारण करते हैं । ऐसे [अग्निम्] प्रकाशक और [उपो] हृदय के समीप [सु+जातम्] सुप्राप्त [आर्य्यस्य+वर्धनम्] आर्य्य को बढ़ाने वाले परमात्मा को [नः+गिरः] हमारी स्तुतिएं [नक्षंत] प्राप्त हों । नक्ष गतौ ।

यो नो दास आर्य्यो वा पुरुष्टुताऽदेव इन्द्र युधये चिकेतति । अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान् वनुयाम सं-गमे ॥ १० । ३८ । ३ ॥

अर्थः-[पुरु+स्तुत] हे बहुस्तुत [इन्द्र] परमेश्वर ! [यः] जो [दासः] दुष्ट [वा] अथवा [आर्य्यः] शिष्ट पुरुष [अदेवः] देव रहित=यज्ञादि शुभ कर्म्मरहित अथवा आपकी स्तुति प्रार्थनादि से पराङ्मुख नास्तिक हैं और ऐसे पुरुष यदि [नः] हम लोगों से [युधये+चिकेतति] युद्ध करने की इच्छा करें तो हे भगवन् [ते+शत्रवः] वे देवरहित शत्रु [अस्माभिः] हमारे साथ [सुषहाः+सन्तु] अभिभव को प्राप्त होवें । और [त्वया] आप के द्वारा [वयम्] हम [संगमे] संग्राम में [तान्+वनुयामः] उन को नष्ट करें ।

वयो न वृक्षम्.......विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्य्यम् ॥ १० । ४३ । ४ ॥

ईश्वर आर्य्य ज्योति अर्थात् उत्तम ज्योति मनुष्य को देवें । यहां सायण 'आर्य्यम् प्रेर्यम्' आर्य्य शब्द का अर्थ प्रेर्य्य करते हैं ।

अहमेतकम्.......न यो रर आर्य्यं नाम दस्यवे ॥ १० । ४९ । ३ ॥

[यः] जो मैं [दस्यवे] दस्यु को [आर्य्यं] आर्य्य नाम वा श्रेष्ठ नाम [न+ररे] नहीं देता हूं ॥

समज्या पर्वत्या वसूनि दासा वृत्राण्यार्य्या जिगेथ ॥ १० । ६९ । ६ ॥

अर्थः—(अज्म्रा) मनुष्य हितकारी (पर्वत्या) पर्वतोद्भव (वसूनि) विविधरत्नादि धनको (सम्+जिगेथ) आपने जीता है और (दासा) दासकृत और (आर्य्या) आर्य्यकृत उपद्रवों को आपने शान्त किया है।

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक्। सह्याम दासमार्य्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १० । ८३ । १ ॥

अर्थः—(मन्यो) हेक्रोध ! (यः) जो पुरुष (ते) तुह्मारा (अविधत्) सेवन करता है (वज्र+सायक) हेवज्रवत् कठोर और वाणवत् तीक्ष्ण वध करने वाले मन्यु ! वह पुरुष (सहः) बाह्यबल और (ओजः) शारीरिक बल (विश्वम्+आनुषक्) सब बल को सर्वदा (पुष्यति) पुष्ट करता है और (युजा) सहायक (सहस्कृतेन) बलोत्पादित (सहस्वता) बलवान् (त्वया) आप के सहायक होने से (दासम्+आर्य्यम्) दासकृत और आर्य्य कृत उभयविध शत्रु को (सह्याम) अभिभव करते हैं।

प्रश्न—इन ऋचाओं के श्रवण से हम लोगों को एक और भी सन्देह उत्पन्न होता है आप कहते हैं कि आर्य्य और दस्यु अथवा दास दो वर्णोंके नाम नहीं है। किन्तु शिष्ट और दुष्ट का नाम क्रमसे आर्य्य और दास है अब हम पूछते हैं अनेक मंत्रों में कहा गया है कि दस्यु अव्रती अयज्वा है अतः ये दण्डनीय है। और आर्य्य व्रती यज्वा है अतः ये रक्षणीय हैं। इस से सिद्ध हुआ कि धार्म्मिक को आर्य्य और पापी को दस्यु कहते हैं। तब इस अवस्था में इसः—

"यो नो दास आर्य्यो वा पूरुष्टुताऽदेवः"

ऋचा में आर्य्य को अदेव कैसे कहा गया है क्योंकि जो 'अदेव' होगा वह तो दास ही होगा। पुनः आर्य्यको कभी 'अदेव' नहीं कहना चाहिये। पुनः—

'हतो वृत्राण्यार्य्या हतो दासानि सत्पती'
'त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्रार्य्या च शूर'

इन ऋचाओं में कहा जाता है कि आर्य्य कृत और दास कृत दोनों उपद्रवों का शासन राजा वा मंत्री करता है आर्य्यकृत उपद्रव कैसे ? जो उपद्रव करेगा वह आर्य्य ही नहीं वह तो दास वा दस्यु है। पुनः "यया दासान्यार्य्याणिवृत्राकरः" इस में कहा गया है कि दास को आर्य्य बनाओ। जो दुष्ट होगया है उस को शिष्ट बनाना कैसे। ये ऋचाएं सिद्ध करती हैं कि ये आर्य्य और दस्यु दो वर्ण पृथक् २ थे दस्यु को वश करने के हेतु सदा यज्ञ किया करते थे। आर्य्य लोग में कोई २ 'अदेव' नास्तिक हो जाते होंगे। राजसभा उस को भी दबाने के लिये कोशिश करती होगी। इसी प्रकार जैसे आज कल भी ब्राह्मण लोग नास्तिक वा उपद्रविक हो जाते हैं तद्वत् आर्य्य भी कभी २ उपद्रव करना आरम्भ करते थे। जैसे वसिष्ठ विश्वामित्र परशुराम और सहस्रबाहु राजादि आर्य्य होने पर भी परस्पर युद्ध किया करते थे।

समाधानः—ऐ विद्वानो ! आप अच्छी तरह विचारें "अदेव" पद देख कर आप को सन्देह उत्पन्न हुआ। आप लोगों ने अपने सन्देह का आप ही कुछ समाधान भी किया है। "आर्य्य" शिष्ट को कहते हैं इस में सन्देह नहीं। जैसे जो अध्ययन करके एक वार पण्डित बन गया क्या वह पुनः दुराचार नहीं कर सकता। यदि पण्डित दुराचारी हो तो उस के लिये भी यह कहा जायगा कि जो पण्डित "अदेव" हो उसे दण्ड दो। पण्डित होने पर भी उस के साथ "अदेव" विशेषण लग सकता है। इसी प्रकार आर्य्य के साथ भी समझें और यह मनुष्य का स्वभाव ही है कि अच्छा बुरा दोनों हुवा करता है। जैसे गुरु आचार्य आदि भी अपराध कर बैठते हैं वैसे आर्य्य बनने पर भी पश्चात् दुराचारी बनने की सम्भावना है। यहां ईश्वर तुल्य भाव से उपदेश देता है कि क्या आर्य क्या दास दुष्ट होने से दण्डनीय हैं।

दुष्ट तो दुष्ट ही है ॥ अच्छा भी कभी २ कुकर्मी बन जाता है इस में सन्देह की कौन बात ? जब "स्वधाभिर्ये अधिशुप्तावजुह्वत" 'वे मायावी अपने ही मुख में हवन करते हैं' ऐसा वर्णन मन्त्र स्वयम् करता है और इसी के अनुकूल कौषीतकी और वाजसनेयी भी हैं "असुरा वा आत्मन्य जुहवुरुद्रातेऽग्नौ। ते पराभवन्

देवाश्च ह वा असुराश्चास्पर्धन् । ततो हासुरा अभिमानेन न कस्मैचन जुहुम इति स्वेष्वेवाऽऽस्येषु जुह्वतश्चेरुस्ते पराबभूवुरिति” इत्यादि प्रमाण प्रस्तुत करते हुए। यहां आप देखते हैं कि दस्यु के स्थान में असुर शब्द प्रयुक्त हुआ । परन्तु असुर कोई आर्य्य से पृथक् जाति नहीं । जो दुष्ट नास्तिक अकर्म्मण्य हुए वे भी असुर नाम से व्यवहृत होने लगे। अतः दास वा दस्यु भी कोई भिन्न जाति नहीं

प्रश्न—सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ।
न मे दासो नार्य्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये ॥
ऋ० ८ । ११ । ३ ॥

अर्थ—ईश्वर कहता है कि [सत्यम्] सत्य है इस में अणुमात्र भी तुम सन्देह मत करो [काव्येन] स्वाभाविक ज्ञान से [अहम्+गभीरः] मैं गम्भीर हूं [सत्यम्] यह सत्य है कि [जातेन] सर्व प्राणी के साथ वर्त्तमान मैं [जातवेदाः] सब जात=भूत=प्राणी मात्र को जानने वाला हूं । हे मनुष्यो ! तुम सत्य जानो [यद्+व्रतम्] जिस नियम को [अहम्+धरिष्ये] मैं स्थापित करूंगा [मे] उस मेरे व्रत को [महित्वा] अपनी महिमा से [न+दासः] न तो दास और [न+आर्य्यः] न आर्य्य [मीमाय] तोड़ सकेगा ।

यहां पर ईश्वर कहता है कि मेरे नियम को न दास और न आर्य भग्न कर सकता है । यहां यदि दास शब्द का केवल दुष्ट अनाचारी चोर आदि अर्थ हो तो ईश्वर का कथन असत्य हो जायगा क्योंकि दुष्ट चोर तो ईश्वर के नियम को भग्न ही कर रहा है । अतः दास और आर्य्य दो जातियें हैं ।

समाधानः-ईश्वरीय नियमको कोई भी भग्न नहीं कर सकता, क्या चोर भूखा रह सकता है। सोए बिना अपना स्वास्थ्य रख सकता है। ज्वरादि से पीड़ित नहीं होता अग्नि उसे नहीं जलाती । श्वास प्रश्वास विना निर्वाह कर सकता है । यदि यह सब नहीं करसकता है तो वह ईश्वरीय नियम को भग्न नहीं कर सकता । अब रह गया चोरी डकैती आदि कुकर्म सेवन, सो ईश्वर का नियम नहीं, किन्तु यह आज्ञा है कि कुकर्म सेवन मत करो । सत्य बोलो धर्म करो अधर्म त्यागो इत्यादि । मनुष्य को ईश्वर ने स्वतन्त्र बनाया है अतः आज्ञा भंग कर सकता है । नियम भंग नहीं । यहां ही कहा गया है । यथाः—

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ सचिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय॥
५।११।४॥

हे वरणीय! हे अन्नादिक प्रदान से जगत् पालक ईश! आप से बढ़ कर कोई कवितर नहीं, मेधा से कोई धीरतर नहीं, समस्त भुवन को जानते हैं। हे भगवन् आपसे मायावी भी डरता है। यहां साफ कहा गया है कि मायावी भी ईश्वर से डरता है। परन्तु मनुष्य से न डरकर मनुष्यों में मायावी उपद्रव किया करता है। जिस से प्रजा में बड़ी हानि हुआ करती हैं इसी कारण यहां भी यह प्रार्थना है:—

तत् ते विद्वान् वरुण प्रब्रवीम्यधो वचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उपसर्पन्तु भूमिम्॥ अथर्व ५।११।६॥

हे वरणीय पूज्यदेव! मैं प्रजाओं की सब दशा जानता हुआ आप से निवेदन करता हूं कि आप की कृपा से इन दुष्ट व्यवहार शील पुरुषों का वचन नीच होवे। ये दास नीच भूमि को जांय। प्रजाओं में उद्वेगकारी और दुष्ट जनों का वर्णन है।

आप लोग यहां इतना और जानें कि ईश्वर की ऐसी इच्छा है कि ईश्वर-विमुख कोई मनुष्य न होवे। ईश्वर राजा को बराबर आज्ञा देता है कि जो चोर नास्तिक है जो सज्जन पुरुष को अकारण क्षति पहुंचाया करता है जो प्रजाओं में अशान्ति फैलाता है। उस का शासन करो। बहुत सी ऋचाएं ऐसी हैं जिन में दास वा दस्यु पद नहीं आया है किन्तु 'ब्रह्मद्विट्' शब्द का प्रयोग है इस ब्रह्मद्विट् के लिये भी दासवत् ही आज्ञा है। ईश्वर, वेद, ब्रह्मवित् और तपस्या आदि अर्थ में ब्रह्म शब्द आता है। इन सबों का जो द्वेषी हो उसे ब्रह्म द्वेषी' वा 'ब्रह्मद्विट्' कहते हैं। इस में प्रमाण:—

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य॥
ऋग्वेद ३।३०।१७॥

अर्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्य्य शालिन् राजन् ! आप (रक्षः) राक्षस को (उद्बृह) नष्ट करो (सहमूलम्) जड़ मूल से उसे काट डालो (मध्यम) उस के मध्यभाग को काट दो (प्रत्यग्रम्) प्रत्येक अग्रगामी को (शृणीहि) हनन करो (सलल्कम्) उस पापी को (आकीवतः) बहुत दूर (चकर्थ) कर दो इस प्रकार हे राजन् ! (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर, वेद, वेदज्ञ पुरुष और तपस्यादि शुभकर्म इन सबों से द्वेष करने वाले दुष्ट पुरुष के लिये (तपुषिम्) तापक=तपा कर घात करने वाले (हेतिम्) आयुध (अस्य) फेंको । उद्+बृह=बृह वृद्धि उद्यमने । शृणीहि= शॄ हिंसायाम् । कीवतः=कियतः । सलल्कम्=सॢ गतौ । तपुषिम् =तप संतापे । हेतिम्=हन हिंसागत्योः । अस्य=असु क्षेपणे लोटिरूपम् ।

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्त मनवायं किमीदिने ॥
ऋ० ७ । १०४ । २ ॥

अर्थः—[इन्द्रासोमा] हे राजन् तथा सौम्य मन्त्रिन् ! [अघशंसम्] सर्वदा पाप की चर्चा करने वाले [अघम्] पापी को आप दोनों मिलकर [अभि] हरएक प्रकार से नष्ट करें [तपुः] जगत् के तपाने वाला वह [ययस्तु] क्षयको प्राप्त हो। अथवा आप दोनों से संतप्यमान होकर क्षय को प्राप्त हो । यहां दृष्टान्त देते हैं- [अग्निवान्+चरुः+इव] अग्नि संयुक्त चावल के समान वह गल पच जाय। हे राजन् तथा मन्त्रिन् ! [ब्रह्मद्विषे] ब्रह्म द्वेषी [क्रव्यादे] मांसभक्षक [घोरचक्षसे] भयङ्कर रूपवाले [किमीदिने] कुटिल पिशुन मनुष्य के निमित्त आप दोनों [अनवायम्] सर्वदा [द्वेषः+धत्तम्] द्वेष धारण करें। अघशंस=अघ=पाप, शंस=कहने वाला पाप की ही प्रशंसा करने वाला । अघ=पाप, पापी । जैसे पाप शब्द का अर्थ पाप और पापी दोनों होता है तद्वत्। क्रव्याद=क्रव्य+आद, क्रव्य=मांस, आद =भक्षक अर्थात् मांसभक्षक । किमीदी=किमिदानीं किमिदानीम्=आज क्या है आज क्या है इस प्रकार से जो करता फिरता है उसे 'किमीदी' कहते हैं ।

यहां पर आप लोग देखते है कि जो दण्ड दस्यु और दास के लिये है वही दण्ड इस राक्षस, क्रव्याद ब्रह्मद्वेषी पिशुनके लिये भी है। परन्तु आप लोग अच्छे प्रकार जानते हैं कि राक्षस वा क्रव्याद वा ब्रह्मद्वेषी वा किमिदी [पिशुन=चुगला]

कोई जाति विशेष नहीं । आज हम लोगों में भी बहुत से राक्षस विद्यमान हैं । बहुत से लोग क्रव्याद हैं । बहुत से ब्रह्म द्वेषी हैं । इस से सिद्ध है कि आर्य्य और दस्यु दो जाति नहीं । वेदों में विस्पष्ट कहा गया है कि अनेक अधार्मिक राजा मिल एक धार्मिक राजा को परास्त नहीं कर सकते ।

"धर्म्म की महिमा"

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणा मद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु ॥
७ । ८३ । ७ ॥

अर्थः—[अयज्यवः] अयज्यु अर्थात् यज्ञ विरहित अर्थात् अधार्मिक [दश-राजानः] दश राजा [समिताः] सम्मिलित होकर भी [सुदासम्] एक धार्मिक राजा से [इन्द्रावरुणा] हे राजन् तथा हे मन्त्रिन् ! [न+युयुधुः] युद्ध नहीं कर सकते अर्थात् परास्त नहीं कर सकते । क्योंकि [अद्मसदाम्+नृणाम्] यज्ञ करने वाले मनुष्यों की [उपस्तुतिः] स्तुति प्रार्थना [सत्या] सत्य होती हैं और [एषाम्] इन यज्वा मनुष्यों के [देवहूतिषु] देव यज्ञों में [देवाः+अभवन्] देव अर्थात् बड़े बड़े विद्वान् सम्मिलित होते हैं उन विद्वानों की शिक्षा से यज्वाओं का अभिभव कदापि नहीं होता ।

हे विद्वानो ! आप देखते हैं कि धर्म का कैसा प्रभाव होता है । ईदृग् वैदिक आज्ञा को देख कर आर्यराजा सदा ब्रह्मद्वेषी को विनष्ट किया करें । यह शिक्षा वेद से लेनी चाहिये । वेदों में सत्यासत्य के विषय में बहुत कुछ कहा गया है सत्य का विजय असत्य का नाश सदा हुआ करता है ।

"सत्य की महिमा"

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यसत् ॥
ऋग्वेद ७ । १०४ । १२ ॥

अर्थः—[चिकितुषे+जनाय] विद्वान् चेतन जन के लिये [सुविज्ञानम्] यह सुविज्ञान है अर्थात् जानने योग्य है कि [सत्+च] सत् और [असत्+च] असत् ये दोनों परस्पर [पस्पृधाते] ईर्ष्या रखते हैं। सत् असत् को, असत् सत् को दबाना चाहता है। परन्तु [तयोः] उन दोनों में [यत्+सत्यम्] जो सत्य है और [यतरत्] दोनों में जो [ऋजीयः] ऋजुतम अत्यन्त ऋजु अकुटिल है [तत्+इत्] उसी को [सोमः] ईश्वर अथवा राजमन्त्री [अवति] सदा रक्षा करता है और [असत्+हन्ति] असत् का हनन करता है।

"दस्यु शब्द और महाभारत आदि"

अब मैंने अनेक उदाहरण वेदों से लेकर आप लोगों को सुनाये आर्य और दस्यु शब्द के ऊपर अब अधिक विचार करना उचित नहीं। मैं आगे आप लोगों को सुनाऊंगा कि पशु पक्षी प्रभृति के समान मनुष्यों में जाति की अनेक प्रकारता नहीं हैं। मनुष्य की सृष्टि भगवान ने एक ही प्रकार की की है। हां ? इस में सन्देह नहीं, कि इनके वंश विविध हैं। जिस को 'पंचमानव' शब्द के ऊपर दिखलाऊंगा। अभी आप लोगों ने देखा है कि श्रेष्ठ यज्वा, व्रती, ब्रह्मविद्, सज्जन, धार्म्मिक-शूरवीर को आर्य्य और नीच अयज्वा, अव्रती, ब्रह्मद्वेषी, असज्जन, अधार्म्मिक-शूरवीर क्रव्याद को दस्यु वा दास कहते हैं। वेदों में ये लक्षण देख श्रेष्ठ पुरुषों ने अपना नाम आर्य और दुष्ट पुरुषों का नाम 'दस्यु' वा 'दास' रक्खा। तब से ये दोनों शब्द योग रूढ़ि के समान प्रयुक्त होने लगे। क्रमशः इन शब्दों के प्रयोग में बहुत अन्तर होता गया। बहुत काल के पश्चात् ये जातिवाचक शब्द बन गये। जो लोग इस 'भारत खण्ड' में आकर निवास करने लगे वे अपने सम्पूर्ण वंश को 'आर्य्य' और अपने से भिन्न अन्यान्य देश वासी को 'दस्यु' कहने लगे और ये आर्य्य लोग जिन को युद्ध में परास्त करते थे। बहुतों को तो आर्य्य ही बनालेते थे और बहुत से पुरुषों को सेवक के समान रखने लगे। उन सेवकों को 'दास' नाम से पुकारते थे। यहां यह स्मरण रखना चाहिये ये दास उस समय में भी कदापि शूद्र नहीं कहलाते थे। परन्तु यह सब लीला बहुत पीछे होने लगी है। ऋषियों के समय में यह एक साधारण नियम था कि दुष्ट से दुष्ट

पुरुष यदि सुधर जाय तो वह 'आर्य' कहलावे है क्योंकि कई एक मन्त्रों में आपने देखा है कि ईश्वर आज्ञा देता है कि इनको भी आर्य बनाओ। एवमस्तु 'दस्यु' शब्द के प्रयोग के ऊपर अब ध्यान दीजिये। यद्यपि कोश और अनेक प्रयोगों में 'दस्यु' शब्द आज भी प्रायः 'चोर' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है और वैदिकार्थ करीब २ यही है। तथापि आर्य्य भिन्न जांगलिक पुरुषों में भी इस का प्रयोग अधिक होने लगा। जैसा कि आगे के प्रकरण से विदित होगाः—

विजित्य चाहवे शूरान् पार्वतीयान् महारथान्।
जिगाय सेनया राजन् पुरं पौरव रक्षितम् ॥ १५ ॥
पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः।
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाण्डवः ॥ १६ ॥
....
ततः परमविक्रान्तो वाह्लीकान् पाकशासनिः।
दरदान् सह कम्बोजैरजयत्पाकशासनिः ॥ २३ ॥
प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः।
निवसन्ति वने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥ २४ ॥
महाभारत सभापर्व। अ० २७ ॥

यहां अर्जुन के दिग्विजय का प्रकरण है। अर्जुनने महारथी पर्वत निवासी पार्वतीय शूरों को जीत तब पौरव रक्षित नगरी का विजय किया ॥१५॥ पौरव और पर्वत निवासी 'दस्युओं' को जीत सात दल इकट्ठे उत्सव संकेतनामक सैन्यों को जीता। तब वाह्लीक और कम्बोजों के साथ दरदों को जीता ॥२३॥ तत्पश्चात् पूर्वोत्तर दिशा के आश्रित जो दस्यु लोग उन्हे भी जीता।

यहां उत्सवसंकेत, पाण्डु, कम्बोज, वाह्लीक आदि के समान ही 'दस्यु' शब्द का प्रयोग है॥

मान्धातोवाच।

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शवर बर्बराः।
शकास्तुषाराः कङ्काश्च पह्लवाश्चान्ध्र मद्रकाः ॥ १३ ॥

पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैव सर्वशः ।
ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ॥ १४ ॥
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः ॥१५॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ।
त्वं बन्धु भूतो ह्यस्माकं क्षत्रियाणां सुरेश्वर ॥ १६ ॥
महाभारत शान्तिपर्व अ० ६५ ॥

राजा मान्धाता इन्द्र से पूछते हैं कि यवन, किरात, गान्धार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ, और काम्बोज, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये सब कैसे धर्म्म करेंगे, और दस्युजीवी पुरुषों की स्थापना हम कैसे कर सकते हैं आप कृपा कर यह विषय मुझे सुनावें।

यहां यद्यपि यवनादिकों से दस्यु को पृथक् रक्खा है। परन्तु देखने से प्रतीत होता है कि 'दस्युजीवी' शब्द विशेषण है अर्थात् यवनादि से लेकर शूद्र पर्यंत सब ही दस्युजीवी अर्थात् नास्तिक होगये हैं। इनकी रक्षा कैसे हो सकती है। ऐसा भाव प्रतीत होता है।

ब्राह्मणो मध्यदेशीयः कश्चिद्वै ब्रह्मवर्जितम् ।
ग्रामं वृद्धियुतं वीक्ष्य प्राविशद्भैक्ष्यकांक्षया ॥ ३० ॥
तत्र दस्युर्धनयुतः सर्व वर्णविशेषवित् ।
ब्राह्मण्यः सत्यसन्धश्च दाने च निरतोऽभवत् ॥ ३१ ॥
प्रादात्तस्मै च विप्राय वस्त्रश्च सदशं नवम् ।
नारीञ्चापि वयोपेतां भर्त्रा विरहितां तथा ॥ ३३ ॥
एतत्सम्प्राप्य हृष्टात्मा दस्योः सर्वं द्विजस्तथा ।
तस्मिन् गृहवरे राजन् तया रेमे स गौतमः ॥ ३४ ॥
महाभारत शान्तिपर्व १६८ ॥

मध्यदेशीय कोई ब्राह्मण किसी ग्राम को ब्राह्मण रहित परन्तु धन सम्पत्ति संयुक्त देख भिक्षार्थ उस ग्राम में पैठा। वहां एक 'दस्यु' बड़ा धनाढ्य सर्व

वर्णों के धर्मों को अच्छे प्रकार जानने वाला, ब्राह्मण्य, सत्यप्रतिज्ञ और दान में रत था। इस दस्युने उस ब्राह्मण को नवीन पाढ़दार वस्त्र और एक विधवा स्त्री दी। वह ब्राह्मण उसी दस्यु के गृह पर रहने लगा इत्यादि इस ब्राह्मण के बारे में बृहत् कथा है॥

यहां पर देखते हैं कि 'दस्यु' परम धर्मात्मा पुरुष है। इस को 'आर्य्य' न कह कर 'दस्यु' कहा है। इस से सिद्ध है कि जांगलिक मनुष्यों को पीछे दस्यु कहने लग॥

"मनुस्मृति और दस्यु,,

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥ म० १०।४५॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों से भिन्न जो वर्ण हैं। क्या वे म्लेच्छ भाषा बोलते हों या आर्य भाषा वे सब दस्यु हैं। इस से सिद्ध है कि चतुर्वर्ण के अतिरिक्त जितने अन्यान्य पृथिवीस्थ मनुष्य हैं वे मनु के अनुसार "दस्यु" हैं इत्यादि कई एक स्थलों में मनुने दस्यु की चर्चा की है। इस से आप लोगों के उस प्रश्न का भी उत्तर होगया। आप लोगों ने जो यह कहा था कि वैदिक 'दस्यु' को हम लोग 'शूद्र' कहते हैं। सो इस से सिद्ध नहीं होता। शूद्र से 'दस्यु' भिन्न हैं॥

"ऐतरेय ब्राह्मण और दस्यु,,

तद् ये ज्यायांसो न ते कुशलमेनिरे। ताननु व्याजहार अन्तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति। त एते अंध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दाः मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः॥ ऐतरेय ब्रा० ७। १८॥

विश्वामित्र के अनेक पुत्र थे। किसी कारणवश उन्होंने शुनःशेप को भी अपना दत्तकपुत्र बनाया था। उस को दत्तकपुत्र बना कर विश्वामित्र ने सब

पुत्रों से कहा है कि हे पुत्रो ! इसी को आप सब भाई ज्येष्ठ मानो। परन्तु वि-श्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र ने इस को कुशल नहीं माना। इस प्रकार आज्ञा भङ्ग करते हुए उन पुत्रों से विश्वामित्र ने कहा कि तुम्हारे सन्तान नीच जाति को प्राप्त होवें। वे ये अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिबा आदि नीच जाति के मनुष्य हुए। विश्वामित्र की सन्तान इस प्रकार दस्युओं में अधिक हैं॥

इस से वैदिक सिद्धान्त ही सिद्ध होता है अर्थात् जो अनाचारी हुए वे आर्यों से निकल कर विरुद्ध पक्ष ले अनार्य अन्ध्र प्रभृति नाम से प्रसिद्ध होने लगे। और इसी हेतु यह भी सम्भव है कि इन के पास धनधान्य बहुत है क्योंकि वे आर्य से 'दस्यु' बने हैं।

ऋग्वेद में आये हुए 'दस्यु' शब्द के प्रयोगों को यहां क्रम से मण्डल, सूक्त और मन्त्र के पता सहित लिखते हैं यथाः—

दस्यवः= १—५१—८
दस्यवि= ८—६—१४
दस्यवे= १—३६—१८
१—१०३—३
८—५१—२
८—५६—२
९—९२—५
१०—४९—३
१०—१०५—७
८—५५—१
८—५६—१
दस्युः= २—११—१८
४—१६—९
१०—२२—८
दस्युहन्ता= ४—१६—१०
दस्युजूताय=६—२४—८

दस्युतर्हणा=९—४७—२
दस्युभ्यः= ५—३८—१
१०—४८—२
दस्युम्= १—३३—४
१—३३—७
१—३३—९
१—५३—४
१—५९—६
१—११७—२१
१—१७५—३
२—१५—९
५—४—६
५—३०—९
६—१४—३
७—१९—४
८—५०—८

दस्युम्= ८-७०-११
९-४१-२
१०-७३-५

दस्युहत्याय= १-५१-६
१-१०३-४
१०-९५-७

दस्युहत्ये= १०-९९-७
१०-१०५-११

दस्युहत्येषु= १-५१-५

दस्युघ्नम्= १०-४७-४

दस्युहन्तमम्= ६-१६-१५
८-३९-८
१०-१७०-२

दस्युहा= १-१००-१२
६-४५-२४
८-७६-११
८-७७-३
१०-८३-३

दस्यून्= १-६३-४
१-७८-४
१-१००-१८
१-१०१-५
२-११-१६
२-१३-६
२-२०-८
३-२६-९
३-३४-६

दस्यून्= ३-३४-९
४-१६-१२
४-२८-३
४-२८-४
५-७-१०
५-१४-४
५-२६-१०
५-३१-५
५-३१-७
५-७०-३
६-१८-३
६-२३-२
६-२६-६
७-५-६
७-६-३
८-१४-१४
१०-५५-८
१०-८३-६
१०-९९-८

दस्योः= १-१०४-५
१-११७-३
२-१२-१०
३-४६-२
६-३१-४
८-९८-६
९-८८-४

"दास शब्द पर विचार,,

यद्यपि 'दस्यु, शब्द के साथ इसका भी विचार हो चुका है। और उन्हीं प्रमाणों से सिद्ध होचुका है कि दास और और दस्यु शब्द प्रायः एकार्थक हैं। तथापि इस पर पृथक् करके इस हेतु मीमांसा करने की आवश्यकता हुई है कि वैदिक अर्थ इस का अब नहीं रहा इस के अर्थ में बहुत उन्नति हुई है। देश के साधु सन्त तुलसी दास सूरदास जैसे विद्वान् भी दास कहलाने लगे और विशेष कर शूद्र शब्द के साथ इस का बड़ा सम्बन्ध हुआ है। यहां तक कि शूद्रों के नाम करण में 'दास' शब्द जोड़ कर नाम रखने की विधि आधुनिक धर्म शास्त्र में देखते हैं और ब्राह्मणातिरिक्त क्षत्रियादि वर्णोंके लिए भी दासत्व कहा गया है। अर्थात् सेवकार्थ में इसका प्रयोग अब हो गया है। जैसे कि राजा के दास दासी। परन्तु वेदानुसार इस का अर्थ न सेवक और न शूद्र किन्तु चोर, डाकू नास्तिक आदि निकृष्ट अर्थ हैं। अब हमें परीक्षा करनी चाहिए कि वैदिक समय में यह क्या भाव रखता था। पहले मैं 'दास, इस शब्द के प्रयोग न देकर जिस धातु से यह सिद्ध होता है उस के दो एक प्रयोग देते हैं जिस से विस्पष्टतया प्रतीत हो कि यथार्थ में इस का क्या अर्थ है।

"दास धातु और वेद,,

मा वीरो अस्मन्नर्यो विदासीत्। ऋ०। ७। १। २१॥

मा=नहीं। वीर=वीर। अस्मत्=हम से। नर्य=नर-हितकारी। वि=विशेष। दासीत्=क्षय होवे। (१) सायण—"अपि च अस्मत् पृथग् भूतः अस्माकं वा षष्ठ्यर्थे पञ्चमी। वीरः पुत्रः नर्यो नरहितः माविदासीत् मोपक्षीयेत"

(१) अब यहां से आगे वैदिक शब्दों के विभक्ति रहित अर्थ पहले हो लिख देवेंगे ताकि जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी पद और पदार्थ मालूम हो। विभक्ति रहित का तात्पर्य्य यह है कि जैसे आत्मा शब्द के आत्मा, आत्मानौ, आत्मनो, आत्मने आदि पद होते जाते हैं। अब यदि हम केवल 'आत्मने, का अर्थ करदें तो जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें यह कौन शब्द है ऐसा प्रतीत नहीं होगा। अतः प्रथम विभक्ति रहित अर्थ कर के पुनः विभक्ति सहित अर्थ करेंगे।

(अस्मत्) हम से पृथक् हो के हमारा (वीरः) वीर पुत्र जो (नर्यः) मनुष्य हितकारी है (मा+वि+दासीत्) वह क्षय को प्राप्त न होवे ।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने । ६ । ५ । ४ ॥

यः=जो । नः=हम को । सनुत्य=अन्तर्हित छिपा हुआ । अभिदासत्=हिंसा करता है, दुःख देता है ! अग्नि=प्रकाश स्वरूप देव । सायण आह—"यः शत्रुः सनुत्यः अन्तर्हितदेशे वर्तमानः सन् । नो अस्मान् अभिदासत् उपक्षयति बाधते" । (यः) जो शत्रु (सनुत्यः) छिप के (नः) हम को (अभि+दासत्) नष्ट करना चाहता है । हे देव ! उसे आप नष्ट करें ।

यो नः कदाचिदभि दासति द्रुहा । ७ । १०४ । ७

य=जो । नः=हम को । कदाचित्=कभी । अभिदासति=हिंसा करना चाहता है । द्रुह=द्रोह । सायण आह—द्रुहा द्रोहेण युक्तो नोऽस्मान् कदाचिदपि अभिदासति अभिहन्ति तस्मै इत्यादि ।

(यः) जो पुरुष (कदाचिदपि) कभी भी (द्रुहा) द्रोह से युक्त होकर (नः) हम को (अभिदासति) हनन करना चाहता है । उसे कल्याण न हो ।

उपस्ति रस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१०।९७।२३॥

उपस्ति=अधःपाती । अभिदासति=हनन करना चाहता है । (अस्माकम्) हमारा (सः) वह शत्रु (उपस्तिः+अस्तु) अधः शायी होवे अर्थात् उस का अधःपतन होवे (यः) जो (अस्मान्+अभिदासति) हमको हनन करना चाहता है ।

'अभिदासति' प्रायः अभि पूर्वक 'दास' धातु का प्रयोग हिंसा ही अर्थ में आता है । इस प्रयोग से विदित होता है कि 'दास' धातु का अर्थ अच्छा नहीं है 'दस' धातु से भी 'दास' बन सकता है ! अतः उसके भी प्रयोग लिखते हैं ।

"दस धातु,,

उतो रयिः पृणतो नोपदस्यति । १० । ११७ । १ ॥

उतो=और । रयि=धन । पृणत्=देता हुवा । न=नहीं । उपदस्यति=क्षीण होता है, घटता है । सायण आह—"उतो उत शब्दस्त्वप्यर्थे पृणतः प्रयच्छतः पुरुषस्य रयिः धनं नोपदस्यति न उपक्षीयते दसु उपक्षये दैवादिकः पृणदाने तौदादिकः" (उतो) और (पृणतः) दान देते हुए पुरुष का (रयिः) धन (न+उप+दस्यति) क्षीण नहीं होता है ।

नास्यराय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथा ॥ ऋ० ५ । ५४ । ७ ॥

न=नहीं । अस्य=इस का रै=धन । ऊति=रक्षा । (अस्य) इस को (रायः) पुत्र, पौत्र, पशु, हिरण्यादि धन (न+उपदस्यन्ति) नष्ट वा क्षीण नहीं होते (नः+ऊतयः) और न इस की रक्षा ही नष्ट होती (यं ऋषिम्) जिस ऋषि (वा+राजानम्) वा राजा को (सुषूदथ) आप प्रेरणा करते हैं ।

इत्यादि उदाहरण में 'दस, धातु का अर्थ उपक्षय होता है । अर्थात् क्षीण होना 'दस, धातु से भी दास बनता है । अब साक्षात् 'दास, शब्द के प्रयोग कहते हैं । पहले के साथ भी इस को मिलावें ।

"दास शब्द के प्रयोग,,

यो दासं वर्ण मधरं गुहाकः । २ । १२ । ४ ॥

दास=उपक्षयिता । वर्ण=वर्ण,रंग,रूप । अधर = नीच । गुहा–गह्वर । अकः=किया है । सायण–"यश्च दासं वर्णं दासमुपक्षयितारं अधरं निकृष्टमसुरं गुहा गुहायां अकः अकार्षीः" (यः) जो (दासम्+वर्णम्) उपक्षयकारी=विनाशकारी वर्ण को (अधरम्) नीच करके (गुहा+अकः) अन्धकार स्थान में कर दिया है । अर्थात् जगत् के विघ्न–कारी पुरुष को दण्ड देकर अन्धकार स्थान में राजा रखता है । सायण दास का असुर अर्थ करते हैं ।

यथा वशं नयति दास मार्यः । ५ । ३४ । ६ ।

आर्य लोग दास को अपने वश में लाते हैं ।

अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् । ६ । २६ । ५ ।

सायण आह–"तथा त्वं दासं यज्ञादिकर्म्मणा मुपक्षयितारं गिरेः पर्वतादधि-गतं शम्बरमसुरम् अवहन् अवावधीः"। आपने (शम्बरस्य) कल्याण के अवरोधक (दासम्) यज्ञादि कर्म के विरोधी दास को (गिरेः) पर्वत से भी पृथक् कर (अव+हन्) हनन किया है। सायण 'दास, का अर्थ यज्ञादि कर्म्मों का उपक्षयिता अर्थात् विनाशयिता (विनाश करने वाला) करते हैं। यज्ञ के विनाश करने वाला नास्तिक के सिवाय कौन होता है।

दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धयः । ७ । १९ । २ ।

शुष्ण=प्रजाओं के धनका शोषण करनेवाला। कुयव–पृथिवी पर उपद्रावक। हे राजन्! आप (यद्) जब (दासम्) दास। (शुष्णम्) शुष्ण और (कुयवम्) कुयव इत्यादि दुष्ट पुरुषों को (नि+अरन्धयः) अतिशय वश में ले आए हैं।

वृत्रेव दास वृत्रहा रुजम् । १० । ४९ । ६ ।

(वृत्रहा) विघ्नों का नाश करने वाला मैं (वृत्रा+इव) विघ्न वा पाप स्वरूप (दासम्) उद्वेगकारी पुरुष को (अरुजम्) सदा भग्न किया करता हूं। यहां साक्षात् पाप स्वरूप में दास शब्द का प्रयोग है।

ऋधक् कृषे दासं कृत्व्यं हथैः । १० । ९९ । ७ ॥

ऋधक्=पृथक्। कृषे करता हूं। कृत्व्य=हन्तव्य। हथ=हननास्त्र। (कृत्व्यम्) हनन योग्य (दासम्) दास को (हथैः) विविध हननास्त्र से (ऋधक्+कृषे) पृथक् करता हूं।

इत्यादि अनेक मन्त्र हैं जिन से सिद्ध होता है कि "दास" कोई ऐसा नीच पुरुष होता है जो सर्व काल में हिंसनीय और दण्डनीय है। अब इसके सम्बन्धी के विषय में सुनिए।

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः। अधि पञ्च प्रधींरिव । ४ । ३० । १५ ।

वर्ची=अस्त्रधारी। प्रधि=शंकु=खूंटी।

आपने (उत) और (दासस्य) दुष्ट पुरुष के सम्बन्धी (वर्चिनः) अस्त्र शस्त्र धारी (पंच+शता) ५०० सौ और (सहस्राणि) सहस्रों पुरुषों का (प्रधीन+इव) शंकु के समान (अधि+अवधीः) अत्यन्त हनन किया हैं। जैसे छोटी छोटी खूटियों को विना परिश्रम तोड़ डालते हैं। वैसे ही आपने दासों को तोड़ फोड़ किया है।

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः।
दासाना मिन्द्रो मायया। ४। ३०। २१।

अस्वापयत्=हनन किया है। दभीति=भय दान। हथ=हननास्त्र। माया=प्रज्ञा, बुद्धि॥

(इन्द्रः) राजाने (मायया) बुद्धि से (दभीतये) भय दिखलाने के लिये (त्रिंशतम्+सहस्रा) ३०००० तीस सहस्र (दासानाम्) दासों को (हथैः) विविध हननास्त्रों से (अस्वापयत्) हनन किया है॥

दभीति=भीतिद=भीतिदान। भीतिद होना चाहिये परन्तु वेद में उलटा भी होजाता है। स्वाप्=हिंसा करना मारना इत्यादि अर्थ यहां है। या मारकर सोला दिया है ऐसा भी अर्थ हो सकता है।

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नी रधूनतम्।
साक मेकेन कर्म्मणा। ३। १२। ६।

नवति=९०। पू=नगरी। दासपत्नी=दासों से पालित। अधूनतम्=कम्पायमान किया। साकम्=साथ॥

(इन्द्राग्नी) हे राजन्! तथा हे मन्त्रिन्! आप दोनों ने (एकेन+कर्म्मणा+साकम्) केवल एक ही उद्योग के साथ (दासपत्नीः) दासों से पालित (नवतिम्+पुरः) ९० नगरों को (अधूनतम्) कंपा दिया है। सायण दासपत्नी का अर्थ करते हैं "दासयन्ति उपक्षयन्तीति दासाः उपक्षयितारः

शत्रवः । तेपतयः पालका यासां ता दासपत्नीः । दसुउपक्षये । दासयतीतिदासः पचाद्यजन्तः । जो क्षय करे उसे दास कहते हैं । उपक्षयार्थक ण्यन्त 'दस' धातु से 'दास' को सायण सिद्ध करते हैं ।

उन उदाहरणों से आप विचारें कि वैदिक समय में दास शब्द के क्या अर्थ थे । जितना ही विचारेंगे उतना ही प्रतीत होगा कि आज कल इस शब्द के अर्थ में वैदिक समय से बहुत अन्तर पड़गया है । निःसन्देह, 'दास' और 'दस्यु' वैदिक समय में एकार्थक थे ।

दास शब्दार्थ की उन्नति ।

इस में सन्देह नहीं कि यह 'दास' शब्द हमें एक गूढ़ इतिहास प्रकाशित कर रहा है । और अच्छे प्रकार बतलाता है कि शूद्र के साथ इस का क्यों प्रयोग होने लगा, आप अभी देखा है कि दुष्ट, उपद्रवी, उपक्षयिता, अधार्मिक पुरुष का नाम दास है । वेद में ईश्वर की ओर से आज्ञा है कि ऐसे पुरुषों को निर्मूल करो, अपने वश में लाओ, इन्हें आर्य्य बनाओ इत्यादि । वेदों में लक्षण देख ऐसे दुष्टों को ऋषियों ने 'दास' नाम दिया । जब आर्य्य लोगों की उन्नति हुई उस समय इन दासों को पकड़ पकड़ के अपनी सेवा में रखने लगे । यह स्वाभाविक बात है कि विजयी पुरुष परास्त वा पराजित पुरुषों को अपने काम में लाया करते हैं । सेवक बनाने पर भी इन का नाम दास ही रक्खा । जब भारत वर्ष में ऐसे उपद्रवी आदमी नष्ट होने लगे अथवा आर्यों के आश्रित होगये, युद्ध करने वाले कोई न रहे । और जो रहे वे आर्यों के सेवक बन गये । इस अवस्था में धीरे २ इस शब्दके प्राचीन अर्थ भी भूलते गये । जिस हेतु वे दास सेवा में पहले से ही नियोजित किये गये थे अतः इसका अर्थ भी 'सेवक' हो गया * उस समय से इस शब्दका प्रधान अर्थ सेवक ही रह गया । सेवा नम्रता के साथ होती है । स्वामी के अधीन रहना पड़ता है । उस

* नोट—भृत्ये दासेर, दासेय, दास, गोप्यक, चेटकाः । नियोज्य, किंकर, प्रैष्य, भुजिष्य, परिचारकाः । अमर० । शूद्रवर्ग ।

की आज्ञा-पालन में तत्परता दिखानी होती है। इस हेतु सेवक के समान आज्ञाकारी सर्वसाधारण पुरुष में भी दास शब्द का प्रयोग होने लगा। जिस हेतु ईश्वर महान् स्वामी है उसकी सेवा में जो रहे वे भी अपना नाम 'दास, रखने लगे। और इस प्रकार जहां सेव्य सेवक की अति प्रीति वा अति भक्ति प्रदर्शित हुई है वहां वहां 'दास, शब्द का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार चोर डाकू नास्तिक अव्रती, असुर आदि अर्थ रखने वाला 'दास, शब्द अत्युत्तम अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। आहा! इस शब्द के अर्थ में कैसी प्रशंसनीय उन्नति हुई है। यह शब्द तुलसी दासादि महात्मा पुरुष के साथी बन पूज्य हो गया।

'दास शब्द से शूद्र शब्द का सम्बन्ध,

परन्तु इस शब्द के विचार के साथ २ मुझे अत्यन्त शोक भी होता है कि शूद्र के साथ इस का क्यों सम्बन्ध लगाया गया। मैं आगे दिखलाऊंगा कि शूद्र शब्द का अर्थ वेदानुसार निकृष्ट नहीं है। शूद्र शब्द बहुत उत्तम अर्थ रखता था। चारों वेदों में आप ढूंढ़ आइये एक भी वाक्य ऐसा नहीं मिलेगा कि जिस में दासवत् कहा गया हो कि शूद्रों को नष्ट करो वा शूद्रों को अपने वश करो, ये बड़े दुष्ट, पापी, नीच, कर्म्म हीन, अव्रती है इत्यादि। किन्तु इसके विरुद्ध हम आप लोगों को दिखला चुके हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के लिये समान ही प्रार्थना आशीर्वादादि आए हैं। शूद्र आर्य्य है। परन्तु दास अनार्य्य। शूद्र वर्ण। परन्तु दास कोई वर्ण नहीं। शूद्र व्यवसायी। परन्तु दास चोर डाकू। शूद्र पूज्य, मान्य, यज्ञार्ह। परन्तु दास हन्तव्य। व्यवहार चलाने के लिये शूद्र एकअंग है। परन्तु दास सब अंगों के नाश करने वाला। इत्यादि वेद के अध्ययन से इन दोनों शब्दों में महान् भेद प्रतीत होता है।

तथापि मैं नहीं कह सकता कि इतना भेद होने पर भी आज शूद्र शब्द का अर्थ इतना क्यों गिर गया। और एक आश्चर्य यह देखते हैं कि शूद्र शब्द के सुनने से जितनी घृणा उत्पन्न होती है उतनी दास शब्द के सुनने से नहीं। बल्कि दास शब्द के श्रवण से कुछ भी घृणा न उत्पन्न हो कर एक अच्छा भाव प्रतीत

होता है। जैसे विदुर आदि दासी पुत्र हैं। अब आप लोग विचार सकते हैं कि निस्सन्देह जो अर्थ दास शब्द का प्रथम था आज वही अर्थ प्रायः शूद्र शब्द का है और जगत् में इस प्रकार का परिवर्तन होता रहता है। कारण ये हैं कि बहुत समय के अनन्तर शूद्र शब्द का अर्थ सर्वथा विस्मृत हो गया और जिस कारण से बहुत से आर्य पुरुषों ने स्वयम् शूद्र का कार्य्य अपने शिर पर उठाया था वे कारण भी लोगों को स्मरण नहीं रहे और एक यह भी महान् परिवर्तन हुआ कि धीरे २ वे पराजित दास गण भी शूद्र के कार्य करने में तत्पर हो गये वा लगाए गए। इस प्रकार ये दोनों मिल कर एक ही शूद्र वर्ण बने रहे। जिस कारण दासापेक्षा प्रथम से शूद्र प्रधान थे अतः शूद्र नाम तो प्रधान और "दास" यह नाम गौण हो गया। जैसे ये दोनों बहुत दिनों के पीछे मिल कर एक हो गए वैसे ही शूद्र और दास शब्द के प्रयोग भी एक हो गए अर्थात् इन के प्रयोग में कुछ भी भेद नहीं रहा शास्त्र के कथनानुसार चार ही वर्ण हैं। शुश्रूषा करने वाले सेवक आजकल शूद्र हैं। परन्तु यथार्थ में शुश्रूषु दास ही थे। शूद्र नहीं। जिस शुश्रूषा के कारण दास शब्द का अर्थ सेवक हुआ था। परन्तु वे दास अब पृथक् नहीं रहे। सब शूद्र ही कहाने लगे। इन का विशेष कार्य सेवा थी। सेवा करने वाले के लिए 'दास, शब्द का प्रयोग खूब प्रचलित हो चुका था। आज भी सेवक को दास दासी कहते हैं इस कारण शूद्र वर्णों के नाम के साथ दास शब्द का प्रयोग करने लगे। परन्तु यह सब वेद विरुद्ध बात है अतः यह सर्वथा त्याज्य है। शूद्र वर्ण के साथ कदापि भी दास शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए। प्रयोग के विषय में मनुस्मृति का प्रमाण।

शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षा समन्वितम्।
वैश्यस्यपुष्टि संयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्य संयुतं। मनु० २।३२॥

ब्राह्मण के नाम के साथ शर्म्मा, राजा के वर्म्मा, वैश्य के पाल वा भूति और शूद्र के दास शब्द का प्रयोग होना चाहिए। ऐसा मनु जी कहते हैं इस की टीका में कुल्लूक भट्ट लिखते हैं यथाः—

तथाच यमः। शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्मा त्राता च भूभुजः। भूतिर्दत्तश्च वै-

श्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत् । विष्णु पुराणेप्युक्तम् शर्मवद् ब्राह्मणस्योक्तं वर्मे तिक्षत्र संयुतम् । गुप्त दासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्य शूद्रयोः ।

यमस्मृति में लिखा है कि विप्र के नाम के साथ शर्म्मा और देव । राजा के साथ वर्म्मा और त्राता । वैश्य के साथ भूति और दत्त । शूद्र के साथ दास। विष्णु पुराण में भी कहा है कि ब्राह्मण का नाम शर्म्म संयुक्त । क्षत्रिय का वर्म युक्त । वैश्य का गुप्त युक्त । और शूद्र का दास संयुक्त नाम रक्खे इति ।

अन्यान्य ग्रन्थों में आर्य्य शब्द ।

वेदों में 'आर्य्य' शब्द के श्रेष्ठ आस्तिकादि अर्थ देख ऋषियों ने अपने वंशजों के लिये 'आर्य्य' नाम रक्खा । ये ऋषि सन्तान जहां जहां गये वे इसी नाम से पुकारे जाते रहे । भारतवासी आर्य्यों में वेदों का पठन पाठन सदा बना रहा इस हेतु इन में इस नाम का लोप नहीं हुआ । जो आर्य्य योरोप प्रभृति महाद्वीपों में जा बसे उनमें संस्कृत न रहने से धीरे २ इस नाम को भूलगये यहां पर भी, मुसल्मान के समय से यहां के लोग आर्य्य के स्थान में हिन्दू कहाने लगे । आज कल योरोपनिवासी भारतवासियों को 'इण्डियन' कहते हैं इस प्रकार भारतवासी ऋषियों ने अपने को 'आर्य्य' और जिस देश में प्रथम आ बसे उसका नाम 'आर्य्यावर्त्त' रक्खा । वेद से लेकर अभी तक इस शब्द का अर्थ पूर्ववत् ही प्रायः चला आया है । संस्कृत में प्रायः कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं जहां आर्य्य शब्द के प्रयोग न हों इस के प्रयोग अनेक प्रकार के मिलते हैं । ये दो चार उदाहरण यहां दिये जाते हैं । वेदों से अनेक उदाहरण पूर्व में लिखे गये हैं ।

शवतिर्गतिकर्म्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते ।
विकार मस्याऽऽर्य्येषु भाषन्ते शव इति ॥ नि० २ । २ ॥

यास्काऽऽचार्य्य कहते हैं कि 'शव' धातु गत्यर्थक है । केवल धातु का प्रयोग कम्बोज लोगों में होता है । परन्तु इस धातु का विकार अर्थात् इस से बना हुआ 'शव' शब्द आर्य्यों में प्रयुक्त होता है । शव = मुर्दा ।

इससे सिद्ध है कि 'आर्य्य' यह सम्पूर्ण भारतवासियों का नाम है। क्योंकि कम्बोज के मुकाबिले में यहां आर्य्य-शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुनः—

जातो नार्य्यामनार्य्यायामार्य्यादार्य्यो भवेद्गुणैः।
जातोऽप्यनार्य्यादार्य्यायामनार्य्य इति निश्चयः॥ मनु० १०। ६७॥

जातः। नार्य्याम्। अनार्य्यायाम्। आर्य्याद्। आर्य्यः। भवेद्। गुणैः। जातः। अपि। अनार्य्यात्। आर्य्यायाम्। अनार्य्यः। इति। निश्चयः॥

(आर्य्यात्) आर्य्य से (अनार्य्यायाम्+नार्य्याम्) अनार्य्या नारी में अर्थात् दस्यु आदि की अनाड़ी स्त्री में (जातः) उत्पन्न हुआ बालक (गुणैः) गुणों से अर्थात् यदि उसमें अच्छे गुण होवें तो वह (आर्य्यः+भवेत्) आर्य्य कहलावेगा परन्तु (अनार्य्यात्) दस्यु वा दास से (आर्य्यायाम्+अपि) आर्य्या स्त्री में भी (जातः+) उत्पन्न हुआ बालक (अनार्य्यः+इति निश्चयः) अनार्य्य ही है। यह निश्चय है।

इस से भी सिद्ध होता है कि 'आर्य्य' शब्द पीछे जातिवाचक होगया। इस से यह भी स्पष्ट है कि आर्य्य लोग दस्यु वा दास की कन्या से विवाह करते थे और उन के सन्तान 'आर्य्य' ही कहलाते थे। किन्तु अपनी कन्या अनार्य्यों को नहीं देते थे। 'आर्य्यावर्त' शब्द भी सिद्ध करता है कि यहां के लोग अपने को 'आर्य्य' नाम से पुकारते थे क्योंकि आर्य्यों के निवासस्थान का नाम 'आर्य्यावर्त' है। मनुस्मृति में आर्य्यावर्त की सीमा इस प्रकार कही गई है।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्तं विदुर्बुधाः॥ मनु० २। २२॥

पूर्व और पश्चिम समुद्रों के और हिमालय और विन्ध्याचल के बीच की भूमि का नाम आर्य्यावर्त है। कुल्लूकभट्ट टीकाकार आर्य्यावर्त शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं यथा—"आर्य्या अत्रावर्तन्ते पुनःपुनरुद्भवन्तीत्यार्य्यावर्तः"। यहां पर आर्य्य लोग पुनः पुनः उत्पन्न होते हैं। अतः इस का नाम आर्य्यावर्त है। इस आर्य्यावर्त में रहने वाले को 'आर्य्यावर्तनिवासी' कहते हैं। यथाः—

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्म्मजीविनम् ।
कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्य्यावर्त-निवासिनः ॥ १० । ३४ ॥

शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न निषाद कहलाता है । वह निषाद अयोगवी स्त्री में 'दास' नामक नौका-कर्म्म-जीवी को उत्पन्न करता है । जिस को आर्य्यावर्त-निवासी 'कैवर्त्त' कहते हैं । कैवर्त्त=मल्लाह=मत्स्यघाती ॥

वाचस्पत्य कोश में 'आर्य्य शब्द' के ऊपर लिखा है कि स्वामी, गुरु, सुहृद्, श्रेष्ठकुलोत्पन्न, पूज्य, श्रेष्ठ आदि अनेक अर्थ में आर्य्य शब्द आता है। 'ऋ' धातु से ण्यत् प्रत्यय होने पर इस की सिद्धि होती है । "कर्तव्यमाचरन् कार्य्यमकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य्य इति स्मृतः" कर्तव्य कार्य्य को करता हुआ अकर्तव्य को न करता हुआ अपने प्रकृताचार में सदा स्थित पुरुष आर्य्य कहाता है ॥

'वृत्तेन हि भवत्यार्य्यो न धनेन न विद्यया' ।

उत्तम सदाचार से पुरुष 'आर्य्य' होता है । धन वा विद्या से नहीं ।

शाकुन्तल, उत्तर रामचरित, वेणीसंहार आदि नाटकों में आर्य्य शब्द के बहुत प्रयोग रहते हैं । नाटकों के लिये अनेक नियम बने हुए हैं कि 'आर्य्य' शब्द के प्रयोग कैसे करने चाहिये । इस के दो एक नियम ये हैं :—

राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः सोऽपत्यप्रत्ययेन च ।
स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्य्येति चेतरैः ।
वाच्यौ नटीसूत्रधारौ आर्य्यनाम्ना परस्परम् ।
वयस्येत्युत्तमैर्वाच्यो मध्यैरार्येति चाग्रजः । इत्यादि

ये सब साहित्य दर्पण के वचन हैं । राजा को हे राजन् ! हे राजन्य, हे महाराज इत्यादि शब्दों से ऋषि सम्बोधित करें । विप्र स्वच्छन्दतया विप्र को किसी नाम से पुकारें । अन्य मनुष्य ब्राह्मण को हे 'आर्य्य' यह कह कर पुकारें । नटी और सूत्रधार परस्पर 'आर्य्य' शब्द व्यवहार करें । इसी प्रकार अमात्य को भी 'आर्य्य' कह कर पुकारते हैं । निज पत्नी सदा अपने स्वामी को 'आर्य्य' वा आर्य्यपुत्र कहती है । इत्यादि अनेक नियम हैं ।

एक छन्द का भी नाम 'आर्य्या' है। आर्य्या छन्द में अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। प्रायः कारिकाएं आर्य्या छन्द में ही ग्रन्थकारों ने लिखी हैं। सांख्य कारिका आर्य्या छन्द में है। सिद्धान्तमुक्तावली भी इसी छन्द में है। इस का लक्षण यह है:—

**यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथातृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्य्या॥**

जिस के प्रथम और तृतीय पाद में १२ मात्राएं और द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १५ मात्राएं हों उसे 'आर्य्या' वृत्ति (छन्द) कहते हैं। 'आर्य्यागीति' भी एक वृत्ति का नाम है। इत्यादि छन्दः-शास्त्र देखिये।

तेषां पुरस्ताद्भवन्नार्य्यावर्त्ते नृपा नृप॥ भागवत ९।६।५॥

उन में से कुछ आर्य्यावर्त के पूर्व में राजा हुए।

आर्य्यां द्वैपायिनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः॥ भा० १०।७९।२०॥

आर्य्या द्वैपायिनी को देख बलराम जी शूर्पारक देश को चले।

आर्य्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥ वाल्मीकि १।१६॥

यहां रामचन्द्र के लिये आर्य्य शब्द आया है॥

**अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥ गीता॥
महाकुल कुलीनाऽऽर्य्य सभ्यसज्जनसाधवः॥ अमर॥
ग्रहीतुमार्य्यान् परिचर्य्ययामुहुः॥ माघ॥
आर्य्यो ब्राह्मणकुमारयोः॥ पाणिनि सूत्र॥
आर्य्यव्रतश्च पांचाल्यो न स राजा धनप्रियः॥ महाभारत॥
आर्य्य ईश्वरपुत्रः॥ निरुक्त ६।२६॥**

अनेक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं आप स्वयं विद्वान् हैं। अनेक ग्रन्थ देखे हैं। इस हेतु इस शब्द के ऊपर अधिक विचार न करके अन्य विषय की मीमांसा करें। इसके पहले यह मैं आवश्यक समझता हूं कि ऋग्वेद में आर्य्य

शब्द का पाठ कहां २ आया है उस को सुना दूं पहले भी आप लोगों से कह चुका हूं । ऋग्वेद में आर्य्य शब्द इस प्रकार आया है :—

क्रमशः मण्डल, सूक्त और मन्त्र की संख्या दी गई है ॥

आर्य्यः= ५-३४-६
८-५१-९
१०-३८-३
१-१३८-३
आर्यम्= १-१०३-३
१-१३०-८
१-१५६-५
३-३४-९
९-६३-५
१०-४३-४
१०-४९-३
१०-८३-१
१०-८६-१९
आर्य्यस्य= ७-१८-७
८-१०३-१
१०-१०२-३
आर्य्या= ४-३०-१८
६-३३-३

आर्य्या= ६-६०-६
९-६३-१४
१०-६५-११
१०-६९-६
आर्य्याः ७-३३-७
१०-११-४
आर्याणि= ६-२२-१०
७-८३-१
आर्य्यात्= ८-२४-२७
आर्य्यान्= १-५१-८
आर्य्यास= १-५९-२
१-११७-२१
२-११-१८
४-२६-२
६-१८-३
६-२५-२
७-५-६
आर्य्येण= २-११-१९

प्रथम प्रश्न का समाधान ॥

आप के प्रथम प्रश्न का बहुत कुछ उत्तर होगया है । अब शेष सुनिये ! पूर्वोक्त कथन से आप को अच्छे प्रकार विदित हो गया है कि आर्य्य और 'दस्यु' यथार्थ में दो जातिएं नहीं । आप ने यह कहा था कि आर्य्यों का

इन पर बड़ा क्रोध था। इन की स्त्री का भी वध करना पाप नहीं समझते थे और ये लोग बड़े धनाढ्य थे अतः ये सभ्य थे। इसी के प्रसंग में आपने कतिपय मन्त्र सुनाये थे। इन सब का समाधान अब सुनिये। प्रथम मैं आप लोगों से यह कहना चाहता हूं कि वेदों में कोई इतिहास नहीं। किसी व्यक्ति विशेष का नहीं किन्तु मनुष्य के स्वभाव का वर्णन है। (वेदों में किसी विशेष पुरुष का इतिहास नहीं है इस को अन्य निर्णय में निरूपण करूंगा) अच्छा बुरा होना मनुष्य का स्वभाव है।

अभी आप को विश्वामित्र और उन के पुत्रों की आख्यायिका ऐतरेय ब्राह्मण से सुनाई है। विश्वामित्र के पुत्र जब दस्यु होगए तब क्या सम्भव नहीं है कि वे लोग धनाढ्य हों। इन के निकट प्रत्येक युद्ध की सामग्री हो। विद्वानो ! बात यह है कि आर्य्य ही लोग अवैदिक होने के कारण 'दस्यु' वा अनार्य्य बन गये। इस कारण वे धन्याढ्य एवं दुर्गप्रभृति आयोजनाओं से युक्त थे इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। मनुष्यों का ऐसा स्वभाव होता है कि वह नास्तिक क्रूर दुष्टाचारी बन जाता है॥ इसी स्वभाव को लक्ष्य करके वेदों में सब कुछ वर्णन हैं। वेदों में जो दस्यु वा आर्यों की संख्या का वर्णन है उसका भाव केवल यह है कि मनुष्य प्रायः हिसाब के साथ सबकार्य करता है। जब एक बलिष्ठ पुरुष अपने शत्रु के अनेक दुर्ग सैन्य अश्वादि देखता है तो उससे मुकाबिला करने के लिये अपनी आयोजना को भी उसी के अनुसार बढ़ाता घटाता है। कोई १०००) कोई १००००) कोई १००००००) सेना रखना आरम्भ करता है उसका शत्रु भी उसी प्रकार अपनी आयोजना तयार करता है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में जानिये। अब उन मन्त्रों का अर्थ सुनिये उसके साथ २ उन सबों का भी निरूपण होता जायगा।

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्।
दिवोदासाय दाशुषे॥ ऋग्वेद ४। ३०। २०॥

दिवु धातु का अर्थ द्यूत (जुआ) खेलना भी होता है। दिव् जो द्यूत-क्रीडादि व्यसन उसका दास अर्थात् शत्रु उसे दिवोदास कहते हैं। द्यूतक्रीडा (जुआ खेल)

का निषेध वेदमें बहुत आया है । और इसका परिणाम बड़ा भयंकर दिखलाया गया है । ऋ० १० । ३४ सूक्त देखिये । अथवा दिव्=प्रकाश । अदास=अशत्रु 'दिवोऽदास' में दिवः+अदास भी पदच्छेद होता है । शुभ कर्म्म और ज्ञानादि प्रकाश का शत्रु नहीं किन्तु इन सबों का बढ़ाने वाला = अशत्रु । ऐसे पुरुष को 'दिवोदास' कहेंगे । अथवा । दिवः प्रकाशस्य दा दाता इति दिवोदाः परमेश्वरः। दिवोदां परमेश्वरं सनुते भजतेयः स दिवोदासः) दिव् जो प्रकाश उसे जो देवे वह दिवोदा अर्थात् परमेश्वर उसको जो भजे वह दिवोदास इत्यादि इसके अनेक अर्थ होंगे । दास का दाता भी अर्थ होता है । परन्तु वैदिक समय में यह अर्थ प्रायः नहीं था ।

(इद्रः) राजा (अश्मन्मयीनाम् पुराम्+शतम्) दुष्ट दस्युयों की पाषाण निर्मित सैकड़ों नगरों को (वि+आस्यत्) तोड़ कर फेंक देवें। ऐसा क्यों करें इस पर कहते हैं (दाशुषे) दाश्वान् अर्थात् विविध सुख देने वाले (दिवोदासाय) और द्यूतादि दुर्व्यसन के निवारण करने वाले पुरुष के हित के लिये। जब तक दुष्ट रहते हैं तब तक जगत् में सुख नहीं पहुंच सकता है और न ज्ञानादि का प्रकाश हो सकता है ।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि केवल बलिष्ठ वा दुर्गादि सामग्री सम्पन्न होने से ही पुरुष सभ्य नहीं कहाता। पूर्व समय का इतिहास सूचित करता है बड़े बड़े उपद्रवी हुए हैं । किसी किसी मनुष्य का यह संकल्प था कि मैं अपने वश में सम्पूर्ण पृथिवी को करलूं । ऐसे २ पुरुष से बड़ा बड़ा अनाचार और अकथनीय घोर पाप हुआ । लाखों देव मन्दिर तोड़े गये । लाखों सतीत्व नष्ट किये । लाखों सभ्य विद्वान् निरपराध मारे गये हैं । अतः केवल धनादि सम्पत्ति से आर्य्य नहीं कहा था ।

"राक्षस किसको कहते हैं"

अब आपने जो स्त्री बध की चर्चा की थी उसका समाधान सुनिये ।

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधान मुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासोमूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् सूर्य्यमुच्चरन्तम् ।७।१०४।२४

जहि=हनन करो। यातुधान=राक्षस। शासदाना=हिंसा करने वाली। विग्रीव=ग्रीवा रहित। मूरदेव=मूर+देव मूर=मारण, हिंसा। देव=क्रीडक। हिंसा को ही जो क्रीडा मानता है।

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! आप (पुमांसम्+यातुधानम्) पुरुष राक्षस को (उत+मायया+शासदानाम्) और छल कपट से हिंसा करने वाली (स्त्रियम्) स्त्री राक्षसी को भी (जहि) हनन करो (मूरदेवाः) हिंसा प्रिय राक्षस (विग्रीवासः+ऋदन्तु) ग्रीवा रहित होकर नष्ट भ्रष्ट होजांय। हे इन्द्र ! (ते) वे दुष्ट राक्षस (उच्चरन्तम्+सूर्यम्) उदित सूर्य को (मा+दृशन्) मत देखें।

यहां पर स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के राक्षसों के वध करने की आज्ञा पाई जाती है। राक्षस कौन हैं; । इसका पता इसी सूक्त से लगता है। दस्यु के बड़े भाई राक्षस हैं। जो लोग सदा रात्रि में मारना पीटना लूटना आदि कर्म करते हैं। जो कभी२ मनुष्य के मांस भी खाते हैं। जो सदा हिंसा करना ही परमधर्म समझते हैं वे राक्षस हैं। मनुष्यों के निवासस्थान पर आक्रमण करते हैं अतः ये 'यातुधान' कहाते हैं (यातु=आक्रमण करना। धान = धानी जैसे राजधानी) धान वा धानी शब्द एकार्थक है। कच्चे मांस तक खाजाते हैं अतएव इन को क्रव्याद (क्रव्य=मांस। आद्=भक्षक) कहते हैं। गदहे के समान चिल्लाते हैं अतः 'राक्षस' अथवा जिनसे अपनी रक्षा की जाय। इनके नामों से ही पता लगता है कि घृणित कर्म करने वाले को राक्षस पिसाच, आदि कहा करते हैं अब यहां कतिपय मन्त्र इस विषय में प्रथम सुनिये।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमपद्रुहा तन्वं गूहमाना। वव्राँ अनन्ताँ अवसा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥७।१०४।१७॥

प्र = ०। या = जो। जिगाति = जाती है। खर्गला = उलूकी = उल्लूपक्षी नक्त = रात्रि। तनू = शरीर,। वव्र = गर्त, खड्डा, खाई,। अनन्त = बहुत। पदीष्ट = गिरे। ग्रावा = पत्थर। उपब्द = उपशब्द = चिल्लाहट।

[या] जो राक्षसी [नक्तम्] रात्रि में [द्रुहा] द्रोह से युक्त हो [खर्गला+इव] उलूकी के समान [तन्वम्+अप+गूहमाना] शरीर को छिपाती

हुई [प्र+जिगाति] हिंसा करने के लिये निकलती है [सा] वह राक्षसी [अनन्तान्+वव्रान्] अनन्त खण्डकों में [अव+पदीष्ट] अवाङ्मुख होकर गिरे और [रक्षसः] राक्षसों को [अर्बुदैः] चिल्लाहटों के साथ [ग्रावाणः+घ्नन्तु] पत्थर हनन करें ॥

वितिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन। वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ ७ । १०४ । १७ ॥

मरुत्=बलवान् पुरुष । विट्=प्रजा । वि=पक्षी । रिप्=हिंसा ॥

[मरुतः] हे वायु समान बलवान् रक्षक पुरुषो ! आप लोग [विक्षु] प्रजाओं में [वि तिष्ठध्वम्] विविध प्रकार से रक्षार्थ स्थित होवें । तदनन्तर [इच्छत] दुष्टों के संहार के लिये इच्छा करें [रक्षसः+गृभायत] राक्षसों को पकड़ें । और पकड़ कर [संपिनष्टन] चूर्ण चूर्ण कर देवें [ये] जो [वयः+भूत्वी] उलूक पक्षी के समान होकर [नक्ताभिः] रात्रि में [पतयन्ति] इधर उधर हिंसा के लिये गिरते हैं [ये+वा] और जो [देवे+अध्वरे] प्रदीप्त यज्ञ में [रिपः+दधिरे] हिंसा किया करते हैं ।

यहां विस्पष्ट कहा गया है कि यज्ञ के विध्वंसकारी और रात्रि में आक्रमण करने वाले को राक्षस कहते हैं । अब आप विचार सकते हैं कि ऐसे नर नारी का वध क्यों कहा गया है ।

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथावनं पात्रेव भिन्दन् सत एति रक्षसः ॥ ७ । १०४ । २१ ॥

यातु = हिंसक । पराशर = पराशातयिता, हिंसक । आविवासन् = आता हुआ । परशु = एक प्रकार का शस्त्र, फरसा, (जो शस्त्र परशुराम जी का था)।

(इन्द्रः) परमैश्वर्यशाली राजा (यातूनाम्) उन हिंसक यातुधान राक्षसों का (पराशरः+अभवत) भी हिंसक है । जो राक्षस (हविः+मथीनाम्) यज्ञों के नाश करने वाले हैं और (अभि+आविवासताम्) सदा आमने

सामने आक्रमण करने वाले हैं उन का भी नाश करने वाला राजा ही होता है (परशुः+यथा+वनम्) जैसे वन को परशु-शस्त्र काटता है (पात्रा+इव) और जैसे मिट्टी के पात्रों को मुद्गर चूर्ण करता है तद्वत् (शक्रः) समर्थ वीर पुरुष (सतः+रक्षसः) प्राप्त = आगत राक्षसों को (भिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (अभि+इत्+उ+एति) चारों ओर जाता है । सत् = प्राप्त, । तिर और सत् ये दोनों प्राप्त के नाम हैं । निरुक्त ३ । २० ॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातु मुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातु मुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥७।१०४।२२॥

उलूकयातु = उलूक के समान गमन करने वाला । शुशुलूकयातु = शुशु = शिशु = बालक । छोटे बच्चे उलूकवत् गन्ता । श्वयातु=कुक्कुरवत् गन्ता कोक = चक्रवाक चकवा । सुपर्ण = श्येन, बाजपक्षी । गृध्र = गीध । दृषत् = पाषाण ।

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! उलूक, छोटे उलूक, कुत्ते, चकवा, बाज और गीध के समान आक्रमण करने वाले जो (रक्षः) राक्षस हैं उन्हें पाषाण से (प्र+मृण) हनन करो ।

इतने वर्णन से आप लोगों को अच्छे प्रकार विदित होगया होगा कि राक्षस वा राक्षसी कौन है । और क्यों इन के वध के लिये आज्ञा है । निःसन्देह महादुष्ट पुरुष को 'राक्षस' कहते हैं । अपने कर्म्म से ही मनुष्य राक्षस बनजाता है। लङ्काधिपति रावण यद्यपि ऋषिकुल का था । कुबेर उसके भ्राता थे । विभीषण समान जिस का भाई था। । वह राक्षस कहलाता था । वह हम ही लोगों के समान पुरुष था ; उसके बीस हाथ दश मुखादि का वर्णन केवल निन्दा सूचक है । यथार्थ में दो हाथ और एक ही मुख था । दुष्टता के कारण उस के भयङ्कर रूप का वर्णन किया गया है । परन्तु वह आर्य्य का ही सन्तान था । अपने घृणित कर्म से राक्षस बन गया था । ऐसा भयङ्कर जगत-विनाशक पुरुष वा स्त्री हों । सब को दण्ड देना चाहिये । इसी कारण श्रीरामचन्द्रने शूर्पनखा को दण्ड दिया । इसी सूक्त में दो मन्त्र और हैं जो हमें बतलाते हैं कि कभी भी राक्षस-कर्म्म नहीं करना चाहिये । प्रत्युत इस नाम से भी बड़ी घृणा रखनी चाहिये । यथाः—

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वाऽऽयु स्ततप पूरुषस्य। अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ ७। १०४। १५ ॥

(अद्य) आज (मुरीय) मैं मरजाऊं (यदि+यातुधानः+अस्मि) यदि मैं राक्षस हूं । (यदि+वा) और यदि मैं (पूरुषस्य+आयुः) किसी पुरुषकी आयु को (ततप) नष्ट करता हूं । यदि मैं ऐसा हूं तो हे भगवन् ! मैं आज ही मरजाऊं। परन्तु यदि मैं ऐसा नहीं हूं तो (यः) जो (मा) मुझ को (मोघम्) व्यर्थ ही (यातुधान+इति+आह) यातुधान = राक्षस कहता है (सः) वह मिथ्या-भाषी (अधा) तब (दशभिः+वीरैः) दशवीर अर्थात् अपने सब बन्धु बान्धवों के साथ (वि+यूयाः) वियुक्त होवे ।

यो माऽयातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह। इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तो रधमस्पदीष्ट ॥ ७। १०४। १६

(यः) जो (अयातुम्+मा) अराक्षस मुझ को (यातुधान+इति+आह) यातुधान = राक्षस कहता है (यः+वा) और जो (रक्षाः) राक्षस होने पर भी (शुचिः अस्मि+इति+आह) मैं पवित्र हूं ऐसा कहता है । (तस्य) उस दोनों प्रकार के मनुष्य को (महता+वधेन) महान् वध के साथ (इन्द्रः) राजा वा परमेश्वर (हन्तु) हनन करे । और (विश्वस्य+जन्तोः+अधमः) समस्त प्राणी में अधम वह पुरुष (पदीष्ट) पतित होवे । अब आप लोगों नें जो कहा था कि दस्यु के ऊपर आर्यों का इतना क्रोध था कि उसकी स्त्री का भी वध किया करते थे । उसका उत्तर आप लोगों को मिला । ऐसी दुष्टा रात्रि में छोटे छोटे बच्चों को भी मारकर खाने वाली स्त्री को क्यों नहीं दण्ड होवे। अब आप लोग स्वयं इस पर विचार करें ।

'नास्तिक वाचक कीकट और प्रमगन्द शब्द'

अब आपने प्रमगन्दका इतिहास जो सुनाया था उसका समाधान सुनिये। किन्ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्म्मम्।

आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ॥ ऋ० ३ । ५३ । १४ ।

यह भी दस्युयों का वर्णन है। प्रथम 'कीकट' और 'प्रमगन्द' इन दो शब्दों के ऊपर यास्क और सायण का जो अर्थ है वह दिखलाते हैं ॥

कीकटाः किंकृताः किं क्रियाभिरिति प्रेप्सावान् । मगन्दः कुसीदी मांगदो मा मा गमिष्यतीति च ददाति । तदपत्यं प्रमगन्दो ऽत्यन्तकुसीदिकुलीनः । प्रमदकोवा योऽयमेवास्ति लोको न पर इति प्रेप्सुः ॥

इसी की टीका सायण करते हैं यथाः—

कृताभियोगदानहोमलक्षणाभिः क्रियाभिः किं फलिष्यतीति अश्रद्दधानाः प्रत्युत पिवत खादतायमेव लोकोन पर इति वन्दन्तो नास्तिका कीकटाः इति । द्वैगुण्यादिलक्षणपरिमाणं गतोऽर्थो-मामेवा गमिष्यतीति बुद्ध्या परेषां ददातीति मगन्दो वार्धुषिकः। तस्यापत्यं पुत्रादिः प्रमगन्दः ॥

अर्थात् याग, दान, होमादिक्रिया से क्या फलेगा। खूब खाओ पीवो। यही लोक है परलोक कोई नहीं। ऐसे कहने वाले अविश्वासी नास्तिकों को 'कीकट' कहते हैं। और जो अत्यन्त सूदखोर है उसे प्रमगन्द कहते हैं। यही दोनों का भाव है। यास्काचार्य्य 'प्रमगन्द' का पक्षान्तर में भी नास्तिक अर्थकरते हैं। अब सम्पूर्ण मन्त्र का यह अर्थ हैः—

हे (मघवन्) अन्नादिकों से प्रजाओं के पोषक भगवन्! (कीकटेषु) नास्तिक मनुष्यों में (ते+गावः) तेरी गाएं (किम्+कृण्वन्ति) क्या करती हैं (न+आशिरम्+दुहे) न तो यज्ञार्थ आशिर अर्थात् दूध देती (न+घर्म्मम्+तपन्ति) और न आज्यादि पदार्थ को तपाती है। अर्थात् हे भगवन्! नास्तिक जगद्द्रोहकारी पुरुष को आपने धन किस लिये दिया है। (नः+आभर) वह धन हम लोगों को दो। पुनः (प्रमगन्दस्य) अन्त्यन्त सूद लेने वाले वा नास्तिक के

(नैचाशाखम्) नीचशाखा से प्राप्त अर्थात् नीचकर्म्म से प्राप्त (वेदः) धन (नः+) हमारे लिये (रन्धय) सिद्ध करो ॥

इस के अतिरिक्त 'वधीर्हिदस्युं' और 'अस्वापयत्' इन दोनों मन्त्रों का अर्थ पीछे कह चुके हैं ॥ अब आप विचार करें कि इस "किंते कृण्वन्ति" मन्त्र से जो अपने आर्य और दस्यु का इतिहास निकाला था और 'प्रमगन्द' एक व्यक्ति विशेष का नाम रक्खा था वह यास्कादि के प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है। इन सब प्रमाणोंसे यही सिद्ध होताहै कि आर्य्य और दस्यु दो भिन्न २ जातियां नहीं। जो आजकल नास्तिक 'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः। पाणिनि सू० ४-४-६१' शब्द का अर्थ है ठीक वही अर्थ कीकट शब्द का है। अतः नास्तिकों का संहार विधि वेद में कहा है।

रावणादिकों का इतिहास इस विषय में हमें क्या सूचित करता है ?

मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, पुराणादिकों में कहा गया है कि 'पुलस्त्य' सप्तर्षियों में से एक थे आज कल भी तर्पणीय ऋषियों में पुलस्त्य नाम आता है इसी पुलस्त्य के पुत्र वैश्रवा और वैश्रवा के पुत्र कुवेर, रावण, कुम्भकरण और विभीषण और शूर्पनखा नाम की एक कन्या। इस प्रकार रावण भी आर्य्य ही था। इसी प्रकार कंस क्षत्रिय कुलोद्भव था। दैत्य दानव भी कश्यप के सन्तान थे। इन सब कथाओं का तात्पर्य यही है कि आर्य्यसन्तान में से ही अनार्य्य वा दस्यु वा राक्षस वा दैत्यदानव वा असुर वा अन्यान्य जातियां निकली हैं। इस हेतु इनका धनाढ्य होना आश्चर्यजनक नहीं हैं। और जो कृष्णवर्ण, श्वेतवर्ण, दासवर्ण वा आर्य्य वर्ण आदि शब्द आते हैं वे केवल निन्दा और प्रशंसा सूचक हैं। रावण यद्यपि आर्य्यवंश और गौराङ्ग था तथापि पापी होने के कारण 'कृष्ण वर्ण' कहा जाता है। अतः कृष्णादिवर्ण पद से भी कुछ निर्णय नहीं कर सक्ते। यदि कहो कि अभी तक भारत वर्ष में कोल भील संथाल किरात प्रभृति वे ही अतिप्राचीन मनुष्य अत्यन्त-कृष्णवर्ण पाये जाते हैं और अभी तक काश्मीर प्रभृति देश में आर्य बड़े गौराङ्ग, बीच देश के भी द्विज

गौर वर्ण ही विद्यमान हैं। उन्हीं गौर कृष्ण दोनों के विषय में वेद कहता हो। तो यह कहना भी उचित नहीं। क्योंकि क्या कृष्ण-वर्ण आर्य नहीं होते हैं। काले आदमी को क्या ईश्वर ने नहीं उत्पन्न किया है। केवल वर्ण के ऊपर आर्यत्व निर्भर नहीं है। क्या विश्वामित्र के पुत्र कृष्ण थे जो 'दस्यु' होगये। वेद के कृष्णवर्ण वा दासवर्ण वा आर्य वर्ण आदि शब्द से कोई लौकिक इतिहास नहीं निकाल सकते। उष्ण प्रधान देश में चिरकाल निवास से मनुष्य का रँग कृष्ण होजाता है। इस देश में रहते रहते आर्य भी काले होगये। अथवा सृष्टि की आदि में अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए। काले गोरे सब रँग हुए। इससे क्या सिद्ध होता है। क्या काले वर्ण को ईश्वर ने ज्ञान नहीं दिया। यदि कहो कि काले वर्ण कोल भील अभी तक अज्ञानी हैं तो क्या गौरवर्ण उत्तर और दक्षिण भाग में महा अज्ञानी विद्यमान नहीं हैं। आज भी हिमालय के पार्श्व में बड़े बड़े अज्ञानी गौराङ्ग जङ्गली आदमी हैं। अंग्रेज़ का इतिहास कहता है कि क-रीब दो तीन सहस्र वर्ष पहिले ये भी महा अज्ञानी और जङ्गली थे। इससे सिद्ध होता है कि गौर, कृष्ण, दोनों आस्तिक नास्तिक हो सकते हैं। वेद में केवल अवैदिक को दस्यु वा दास वा राक्षस वा पिशाच आदि कहा है। इति

"जाति शब्द पर विचार"

प्रश्न—जाति किस को कहते हैं?

उत्तर—समानप्रसवात्मिका जातिः॥ न्याय सू०॥

हम अपने चारों तरफ़ विविध पदार्थों को देखतेहैं। जल में विविध मत्स्य, मकर, कूर्म, मण्डूक, शुक्ति, शङ्ख आदि जल जन्तु। स्थलभाग में विविध तृण, लता, ओषधि, वृक्षादि स्थावर। सरीसृप=ससर कर चलने वाले सर्प आदि, पिपीलिका=चींटी आदि। तथा बन में रहने वाले सिंह, व्याघ्र, शृगाल, शशक, हरिण आदि अरण्यपशु। ग्राम में मनुष्यों के साथ रहने वाले गौ, महिष, बकरे, भेड़, हय, गज, ऊंट, गदहे, कुत्ते, आदि। आकाश और पृथिवी दोनों पर विच-रण करने वाले विविध मक्षिकाएं, दंशक, शुक, पिक, काक, गृध्र, चिल्ह, पारा-वत, वक आदि। इत्यादि अनेक पदार्थों से यह हमारी पृथिवी भूषित और

परम सुशोभित है। इन सबों के रंग, रूप, आकृति, वेष, स्वभाव आदि परस्पर बहुत भिन्न २ हैं। इन सब पदार्थों को हमारे ऋषियों ने प्रथम उत्पत्तिके अनुसार चार हिस्सों में विभक्त किया है। उद्भिज्ज-जो पृथिवी को फोड़ कर निकते हैं जैसे तृण, लता और वृक्ष आदि। द्वितीय-अण्डज, जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं जैसे जलचर मत्स्य और विहग आदि। तृतीय—पिण्डज, जो माता के उदर में कुछ काल निवास कर जन्म लेते हैं जैसे पशु और मनुष्य। चतुर्थ—ऊष्मज=ऊष्मा=शीतोष्णता के योग से जो उत्पन्न होते हैं जैसे यूक, मत्कुण आदि।

सामान्य जाति ॥

अब आप किसी एक स्थान में सब पशुओं को इकट्ठे कर देखें। जब व्याघ्र शृगाल, गौ, भैंस, ऊंट, हाथी इन सबों को देखेंगे तो प्रथम सब में एकसमानता प्रतीत होगी। सबों के चार पैर देख कर कहेंगे कि ये "चतुष्पद" हैं चतुष्पदत्व सब में समान है। पुनः द्वितीय वार देखेंगे तो परस्पर भेद प्रतीत होने लगेगा। हाथी के समान ऊंट नहीं। ऊंट के समान घोड़े नहीं। घोड़े के समान गौ नहीं, इस प्रकार सब में भेद पावेंगे। पुनः तृतीय वार देखेंगे तो गायों में भी एक दूसरे से आकृतिएं भिन्न २ हैं ऐसा प्रतीत होगा। इसी प्रकार पक्षियों, जलचरों और वृक्षों में भी समानता और भिन्नता प्रतीत होगी। अब आप विचारें कि यद्यपि सब पशु चतुष्पद हैं तथापि आकृति और स्वभाव में एक एक झुण्ड परस्पर भिन्न २ हैं। जिन की एकसी आकृति अर्थात् स्वरूप है वे सब 'एक समान' कहलावेंगे। जैसे जितने हाथी हैं वे एक-समान हैं। जितने ऊंट हैं वे एक-समान हैं। उसी प्रकार अन्यान्य पशु। हाथी का झुण्ड ऊंट के झुण्ड से और ऊंट का झुण्ड हाथी के झुण्ड से भिन्न प्रकार प्रत्यक्ष प्रतीत होगा। एक बालक भी कह सकता है कि हाथी से ऊंट भिन्न प्रकार का है।

एक एक समुदाय में इस समानता के दर्शाने वाला जो पदार्थगत धर्म है अथवा स्वरूप अथवा आकृतिगत धर्म वा गुण है इसी का नाम लोगों ने 'जाति' रक्खा है। आप जब हाथियों का एक झुण्ड देखते हैं तो एकसमानता प्रतीत होती है। कोई आप से पूछे कि यह समानता कैसे वा किस ज़रिये से प्रतीत

होती है तो आप कहेंगे कि इन की आकृति अर्थात् शरीर की बनावट सब की एकसी है इसी से प्रतीत होता है कि यह सब समान है । इसी का नाम समानता अर्थात् 'सामान्य जाति' है । अब आप ध्यान से देखेंगे तो एक हाथी दूसरे से भिन्न प्रतीत होगा । जो भेड़ चराने वाला होता है वह अपनी सब भेड़ों को पृथक् २ पहचान लेता है । क्योंकि हर एक में यत्किञ्चित् अवयव का भेद है । इस का नाम 'व्यक्तिगत भेद' है । अब आप हाथी और ऊंट का एक एक झुण्ड देखें तो इन दोनों में बहुत भेद प्रतीत होगा । और आप कहेंगे कि इस झुण्ड से वह झुण्ड विलक्षण है । इसी का नाम परस्पर जातिगत भेद है । इस प्रकार परस्पर जातिभेद और परस्पर व्यक्तिभेद सर्वत्र विद्यमान है। इस प्रकार पशु, पक्षी और मत्स्य आदि जितने प्राणी हैं और तृण, लता ओषधि वीरुध और वृक्ष आदि जितने स्थावर हैं इन में से कोई छोटे से छोटा उदाहरण लेलीजिये एक जाति से दूसरी जाति पृथक् प्रतीत होगी । गृह में रहने वाली मक्खी और मच्छर देखिये । देखते ही मालूम हो जाता है कि ये दोनों दो प्रकार की जातियां हैं । आम्र और गूलर के वृक्ष के दर्शन मात्र से भिन्न भिन्न २ जातियां प्रतीत होने लगती हैं। इस के अतिरिक्त भिन्न भिन्न जाति के पहचान की एक यह भी कसौटी है कि आप को केवल एक हाथी वा एक गौ वा एक आम्रफल दिखला दिया गया और कहा गया कि यह हाथी है । अब आप के निकट जितने हाथी लाए जायंगे झट आप कह देंगे कि यह हाथी है । यह घोड़ा है, यह आम्र है । इत्यादि । अर्थात् एक के देखने से उस सब समुदाय का बोध हो जाता है । इस कारण गोजाति, अश्वजाति, गर्दभजाति, आम्रजाति, पिप्पल जाति इत्यादि भिन्न भिन्न जातियां हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी एक जाति है ।

'मनुष्य एकजाति है' ॥

जैसे पशु पक्षी वृक्ष आदि में अनेक जातियां हैं और यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है जैसा कि मैंने अभी कहा है वैसे मनुष्यों में अनेक जातियां नहीं हैं । अब इस की परीक्षा कीजिये ।

अब अपनी जाति की ओर आइये । किसी एक देश के बहुत से ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों को इकट्ठे कीजिये और इन के कृत्रिम वेष को पृथक् कर के खड़ा कीजिये। क्या प्रतीत होता है। सब में एक समानता ही प्रतीत होगी। यह ब्राह्मण है यह क्षत्रिय है ऐसा बोध देखने से कदापि प्रतीत नहीं होगा क्योंकि आकृति सब की समान है। इस हेतु यह सब ही एक मनुष्य जाति है। पशु आदिवत् भिन्न २ नहीं॥ अब दूसरी तरह से भी परीक्षा कीजिये। आप के सामने कृत्रिम-वेष-रहित एक ब्राह्मण को लाकर कहा गया कि यह ब्राह्मण है। अब दूसरा ब्राह्मण आपके समीप लाया गया। बिना पूछे हुए क्या आप कह सकते हैं कि यह भी ब्राह्मण है। कदापि नहीं। परन्तु पशुओं में जब एक हाथी को देख लेता है तो फिर दूसरे हाथी को देख कर पूछना नहीं पड़ता है कि यह कौनसा पशु है। देखते ही कह देता है कि यह हाथी है। परन्तु मनुष्यों में ऐसा नहींहै। इस हेतु मनुष्यों में ब्राह्मणादि भिन्न२ जाति नहीं। लोक में भी देखा जाता है कि जब कहीं मनुष्य दो चार इकट्ठे हुए तो पूछते हैं कि आप किस वर्ण के हैं। बतलाने पर मालूम होता है कि यह अमुक वर्ण का है।

हाथी और ऊंट अथवा गौ और घोड़े में जैसा परस्पर जातिगत भेद है। क्या वैसा ही भेद ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों में देखते हैं। कदापि नहीं। वैसा भेद इन चारों में नहीं। ये चारों एक समान ही देख पड़ते हैं। इस कारण पशु पक्षी आदि के समान इन चारों में परस्पर जातिगत भेद नहीं है ऐसा अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। अतः मनुष्य एकजाति है इस में सन्देह नहीं। यदि आप कहें कि यद्यपि हम लोगो को इन में भेद नहीं प्रतीत होता है परन्तु जो योगी हैं उन्हे इस सूक्ष्म भेद का पता लगता होगा। तो यह कहना ठीक नहीं। जिस में भेद है ही नहीं उस की प्रतीति क्या होगी। गदहे की सींग की प्रतीति किसी को नहीं हो सकती। जाति भेद के पहिचान के लिये अन्यान्य भी कारण हैं उन पर ध्यान दीजिये यथा।

जाति भेद पहिचान के अन्यान्य कारण।

१—जो यथार्थ में भिन्न जातियां हैं वे परस्पर एक दूसरे के कार्य को नक़ल नहीं कर सकती जैसे मकड़ी जैसा जाला बनाती है। वैसा अन्यान्य

कीट नहीं बना सकता। मधुमक्षिका के समान अन्यान्य मक्षिका मधु नहीं बना सकती। घोड़े की चाल और उसकी हिनहिनाहट का नकल गौ नहीं कर सकती। इत्यादि। परन्तु बाल्यावस्था से यदि एक शूद्रबालक अच्छे प्रकार शिक्षित हो तो ब्राह्मण के समान पूजा पाठ कर और करवा सकता है। आज कल भी बहुत से शूद्र साधु बन ब्राह्मणवत् ही कर्म्म करता है इस कारण मनुष्य में जाति भेद नहीं।

२—जो यथार्थ में भिन्न जातियां हैं वे परस्पर बदल नहीं सकती हैं जैसे लक्षों उपाय करने पर भी सहस्रों विद्वान् मिल कर हाथी को गदहा नहीं बना सकते। परन्तु मनुष्यों में देखा जाता है कि ब्राह्मण शूद्र ही नहीं किन्तु म्लेछ यवन तक बन गये हैं और बनते जातेहैं। इसके अनेक उदाहरण आगे लिखेंगे। अनेक ब्राह्मण मुसलमान और क्रिस्तान होगये हैं। इस देश में मुसल्मान के राज्यके समय अनेक ब्राह्मण क्षत्रियादि मुसल्मान बनालिये गये आज वे ब्राह्मणों से बड़ी शत्रुता कर रहे हैं। इस हेतु भी मनुष्यों में अनेक विध जाति भेद नहीं।

३—जो सच मुच भिन्न जातियां हैं उनमें परस्पर एक दूसरे से सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती है। हथिनी से घोड़े की वा घोड़ी से हाथीकी न तो प्रीति होगी और न सन्तान उत्पन्न कर सकेंगे इसीप्रकार शुकीसे काक प्रीति नहीं करेगा। परन्तु मनुष्यों में शूद्रा से ब्राह्मण और ब्राह्मणी से शूद्र प्रीति करता है और सन्तान भी उत्पन्न करलेता है। महाभारत में कथा बहुत सी हैं। व्यास से दासीशूद्री में विदुर उत्पन्न हुए। सहस्रों क्षत्रियाओं में ब्राह्मण से सन्तान उत्पन्न हुए हैं। और वे सब क्षत्रिय हुए हैं। आगे इनके उदाहरण महाभारत से देखेंगे। मनु जी ने भी कहा है कि ब्राह्मण का विवाह चारों वर्णों में हो सकता है। यदि ये चारों चार जातियें के होते तो ऐसा अनर्थ और विपरीत आज्ञा मन्वादि धर्म्म शास्त्रों में कैसी पाई जाती। अतः मनुष्य एक जाति है।

यदि कहो कि गर्दभ जाति और अश्वजाति ये दोनों भिन्न २ होने पर भी इन दोनों से सन्तान होता है जिस को अश्वतर वा खच्चर कहते हैं॥ ठीक है, परन्तु आप देखते हैं कि इन दोनों के योग से जो सन्तान होता है वह तीसरे

प्रकार का हो जाता है। और आगे इसका वंश नहीं चलता है। और जो अश्व-जाति यथार्थ में अश्व नहीं है परन्तु समान प्रतीत होती है उसी से सन्तान होते हैं। परन्तु मनुष्य में ब्राह्मण क्षत्रिय जाति के योग से जो सन्तान होता है वह तीसरे प्रकार का नहीं होता है। और आगे सन्तान भी चलता है अतः यह उदाहरण ठीक नहीं।

४—ईश्वर ने अश्वजाति, गजजाति, गोजाति आदि के प्राणियों को प्रायः सर्वत्र उत्पन्न किया। इसी प्रकार मनुष्य जाति भी सर्वत्र पाई जाती है। परन्तु जैसे गौ, भैंस आदि में सर्वत्र ही जाति-भेद विद्यमान है। वैसे ही योरोप अफ्रिका अमेरिका आदि सर्व द्वीपस्थ मनुष्य में भी आर्यावर्त के समान मनुष्य में जाति-भेद अन्यत्र कहीं नहीं है। अतः मनुष्य में जाति भेद नहीं यह सिद्ध होता है।

५—सब के बढ़ कर हमारा वेद और शास्त्र मनुष्य में एक ही जाति मानता है ब्राह्मणादि भिन्न २ जाति का स्वीकार नहीं करता है। पुराण भी इसी बात को मानता है इस हेतु मनुष्य में जाति-भेद मानना सर्वथा वेद शास्त्र विरुद्ध है। इस हेतु त्याज्य है। इस के उदाहरण आगे देवेंगें। हे विद्वानो! कैसा अन्धकार देश में फैला है कि वेद, शास्त्र और प्रत्यक्ष विरुद्ध विषय को अन्धाधुन्ध सब कोई मान रहे हैं।

६—ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों के चार लक्षण कहे गये हैं। यदि वे चार भिन्न भिन्न जातियां होतीं तो वैसे लक्षण नहीं कहे जाते। शमदमादि ब्राह्मण के, शौर्य तेज आदि क्षत्रिय के, कृषि गोरक्षा आदि वैश्य के, परिचर्य्या आदि शूद्र के लक्षण गीता बतलाती है। इस से सिद्ध है कि जिस में ये शम दम स्वभावतः पाया जाय वह ब्राह्मण। जिस में शूरता वह क्षत्रिय इत्यादि॥ ये गुण किसी खास जाति वा वंश के ऊपर निर्भर नहीं हैं। और इसप्रकार की व्यवस्था द्वीप द्वीपान्तरस्थ सर्व मनुष्य में संचारित हो सकती है। इस कारण से भी मनुष्य में जाति भेद नहीं।

७—यदि आप कहो कि गौर वर्ण ब्राह्मण, रक्तवर्ण क्षत्रिय, पीतवर्ण

वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र होते हैं अतः ये चारों भिन्न जातियां हैं। (१) तो यह भी कहना उचित नहीं क्योंकि क्या ब्राह्मण कृष्णवर्ण नहीं हैं ?। मद्रासी सब ही ब्राह्मण कृष्णवर्ण के हैं। और काश्मीरी सब ही शूद्र श्वेतवर्ण के हैं। इंगलैण्ड आदि शीतप्रधान द्वीप में सब ही श्वेतवर्ण और उष्णप्रधान देश में सबही कृष्णवर्ण के हैं इस हेतु यह लक्षण ठीक नहीं। "श्वेतवर्ण ब्राह्मण का" इसका अर्थ नहीं है कि जो रँग में श्वेत हो वह ब्राह्मण किन्तु जो श्वेत अर्थात् सात्त्विक गुण से युक्त हो वह ब्राह्मण इत्यादि वर्णन आगे देखिये।

८—इत्यादि अनेक कारण जाति भेद के होते हैं। इन चार वर्णों में इस प्रकार का एक भी भेद आप नहीं पावेंगे। फिर योगी को वह भेद कहां से प्रतीत हो सकता। यदि आप कहें कि जब कर्ण जी परशुराम से विद्याऽध्यन को गये और जब एक भयङ्कर कीट से व्यथित और रुधिराक्त-शरीर होने पर भी कर्ण ने गुरु की सेवा नहीं त्यागी और न गुरु को कुछ सूचना दी। परशुरामजी ने जब उठ कर इस भयानक व्यापार को देखा तो उन्हें झट प्रतीत हो गया कि यह कोई क्षत्रिय कुमार है ब्राह्मण नहीं ! इस से मालूम होता है कि योगी को सूक्ष्म भेद प्रतीत हो जाता है। उत्तर सुनिये—यदि योगी कोजाति प्रतीत होती तो प्रथम ही क्यों नहीं होगई जब इन्हों ने कर्म्म देखा तब उन्हें प्रतीत हुआ कि यह साहसी कोई क्षात्र कुमार है। इस में सन्देह नहीं जो जन्म से ही मारने काटने का पूरा निरन्तर अभ्यास करेगा वह अवश्य ही घोर साहसी बन जायगा। जो ऐसा साहसी बनेगा वह अवश्य कर्म्म से क्षत्रिय है। मैं भी इसको स्वीकार करता हूं। कहीं२ जो यह लिखा है कि कोई पुरुष हाथ में खड्ग, कोई लेखनी, कोई पुस्तक, कोई तुला आदि लेकर ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ सो यह सब मिथ्या कपोल कल्पित है। और वेद विरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य और अश्रद्धेय हैअतः मनुष्य में जाति भेद नहीं। इस कारण ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र को चार भिन्न भिन्न जाति मानना सर्वथा अज्ञानता की बात है।

(१)—ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां च लोहितः। वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा॥ महाभारत शान्तिपर्व॥ १८८। ५॥

'मनुष्य एक जाति है'

इस में

'साख्यशास्त्र का प्रमाण'

(१) अष्ट विकल्पो दैव स्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥ कारिका ॥५७॥

इस पर वाचस्पति मिश्र की व्याख्याः--

ब्राह्मः। प्राजापत्यः। ऐन्द्रः। पैत्रः। गान्धर्वः। याक्षः। राक्षसः। पैशाचः इत्यष्टविधो दैवः सर्गः। तैर्य्यग्योनश्च पञ्चधा भवति। पशु, मृग, पक्षि, सरीसृप, स्थावराः। मानुष्यश्चैकविधः। ब्राह्मणत्वाद्यवान्तरभेदाऽविवक्षा संस्थानस्य चतुर्ष्वपि वर्णेष्वविशेषादिति।

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकार देवयोनि हैं। तिर्यग्-योनि पांच प्रकार के हैं—पशु, मृग, पक्षी, सर्प और स्थावर। ब्राह्मणादि चार वर्णों में किसी प्रकार का पृथकत्व नहीं है इस हेतु ब्राह्मण आदि अवान्तर भेद न मान कर मनुष्ययोनि एक ही प्रकार का माना है।

इस सांख्यकारिका में 'मानुष्यश्चैकविधः' मनुष्य एकही प्रकार का है यह विस्पष्ट वर्णन है। पुनः "दैवादिभेदा" इस सांख्य ३।४६ सूत्र की व्याख्या में विज्ञानभिक्षुक कहते हैं कि "मानुष्यसर्गश्चैकप्रकारः" मनुष्य जाति एकही प्रकार की है।

'महाभारत का प्रमाण'

(२) न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥१०॥
काम-भोग-प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्त-स्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजा क्षत्रतां गताः ॥ ११ ॥

गोभ्योवृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः ।
स्वधर्म्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥१२॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्तेद्विजाः शूद्रतां गताः ॥१३॥
शान्तिपर्व ॥ अ० १८८ ॥

आदि सृष्टि में सब ब्राह्मण ही थे । कोई वर्ण विभाग नहीं था । कर्म्म से क्षत्रियादि वर्ण ब्राह्मण ही बनता गया । जो ब्राह्मण कामभोगप्रिय, तीक्ष्ण, क्रोधी, साहसप्रिय और युद्ध करने से सदा रक्ताङ्ग हुए वे क्षत्रिय गिने गये । जो ब्राह्मण गोवृत्ति का अवलम्बन कर कृषि-कर्म्म में निरत हुए वे वैश्य और जो हिंसा अनृतादि में संलग्न हुए वे शूद्र कहाये ।

इससे भी सिद्ध होता है कि मनुष्य एक जाति के हैं । कर्म्म के द्वारा भिन्न भिन्न वर्णों में विभक्त हुए ।

'बृहदारण्यकोपनिषद् का प्रमाण'

(३) ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत् । तच्छ्रेयोरूप मत्यसृजत क्षत्रम्॥११॥स नैव व्यभवत् स विशमसृजत ॥१२॥ स नैव व्यभवत् स शौद्रं वर्णमसृजत ॥ १३ ॥ बृ० उ० १ । ४ ॥

प्रथम एकही ब्राह्मण वर्ण था । एक होने के कारण उसकी वृद्धि नहीं हुई इस हेतु अपने से भी उत्तम क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया । उससे भी वृद्धि नहीं हुई तब वैश्य वर्ण बनाया । उस से भी उन्नति नहीं हुई तब शूद्र वर्ण बनाया । इससे भी यही सिद्ध होताहै कि प्रथम एक ही वर्ण था धीरे धीरे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण बनते गये ।

'वाल्मीकिरामायण का प्रमाण'

(४) अमरेन्द्र मया बुध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो ।
एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा॥ २०॥ उत्तरकाण्ड

हे अमरेन्द्र ! मैंने प्रथम बुद्धिपूर्वक प्रजाएं सृष्ट कीं। सब ही प्रजाएं एक वर्ण थीं। सब की एक भाषा थी। सब कोई एक-रूपा थीं। इनके दर्शन वा लक्षण में कोई विशेषता नहीं थी।

'भागवत का प्रमाण'

(९) सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषाञ्च यः॥ १८॥
वनस्पत्योषधिलताः त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः॥ १९॥
तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टविंशतिधा मतः।
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः॥ २०॥
गौरजो महिषः कृष्णः शूकरो गवयो रुरुः।
द्विशफा पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम॥ २१॥
खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरीतथा।
एते एकशफाः क्षत्तः शृणुपञ्चनखान् पशून्॥ २२॥
श्वा सृगालो वृकोव्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ।
सिंहःकपिर्गजः कूर्म्मो गोधा च मकरादयः॥ २३॥
कंक गृध्रवटश्येन भास भल्लूक वर्हिणः।
हंस सारस चक्राह्व काकोलूकादयः खगाः॥ २४॥

भागवत। ३। १०॥

अब सप्तम सर्ग का वर्णन करते हैं। स्थावर छः प्रकार के हैं। वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम॥ १९॥ अब अष्टम सर्ग कहते हैं। तिर्यग् जातियों के अट्ठाईस प्रकार हैं। ये सब अज्ञानी, तामसी, घ्राणज्ञ और इन के मन में सुख दुःख का परिणाम चिरकाल तक नहीं रहता है। वे ये हैं—बैल, बकरी, भैंस, हरिण, शूकर, नीलगौ, रुरु (एक प्रकारका मृग), मेंढ़ा और ऊंट। ये दो खुर वाले पशुओं की जाति हैं॥ २१॥ हे विदुर जी ! गर्दभ, घोड़ा, खच्चर, गौर (एक प्रकार का मृग) शरभ और चमरी (वनगौ)। यह एक खुर वाले पशुओं की जाति हैं। अब पांच नखवाले पशुओं का भेद कहता हूं सुनिये

॥ २२ ॥ कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलार, खरगोश, साही, सिंह, वानर, हाथी, कछुआ और गोह ये बारह पांच नख वाले पशु हैं । मगर आदि जलचर और कंक, गृध्र, बाज, शिकरा, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, काक, उल्लू आदि पक्षी यह जलचर और थलचर मिल कर तिर्यग् जाति का एक भेद है । इत्यादि अनेक विध सृष्टि कह कर अब मनुष्य सृष्टि कहते हैं । सुनिये !

अर्वाक् स्रोतस्तु नवमः चत्तरेव विधोऽन्नृणाम् ।
रजोऽधिकाः कर्म्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥ स्कन्ध ३।१०॥

हे विदुर ! मनुष्यों की एक ही प्रकार की सृष्टि है । यह नवम है । यह नीचे गति वाला है । रजोगुण इस में अधिक है । कर्म्मपरायण, और दुःख में सुख मानने वाला है ॥

यहां पर देखते हैं पुराण शिरोमणि भागवत भी मनुष्य की जाति एक प्रकार मानता है । यदि इस में चार वा अधिक प्रकार होते तो यहां इन को पश्वादिवत् गिनाते; परन्तु यहां नहीं गिनाया अतः इसके सिद्धान्त के अनुसार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये भिन्न जातिएं नहीं हैं । आगे इन ही विषयों का अधिक वर्णन रहेगा अतः यहां अधिक प्रमाण सुनाने की आवश्यकता नहीं । हे भारतवर्षीय विद्वानो ! हम लोगों को हठ, दुराग्रह, पक्षपात को छोड़ कर विचार करना चाहिये । वेदों से जो सिद्ध हो उसे शिर पर चढ़ाना चाहिये । आज कल की भयंकर रीति यह देखते हैं कि लौकिक व्यवहार देख कर शास्त्र का निर्णय करना चाहते हैं । लोक से डरते हैं । वेदों से नहीं । इस में सन्देह नहीं कि अज्ञानीजन नहीं समझते हैं । इन की संख्या अधिक है । परन्तु अज्ञानी पुरुषों से क्यों भय करना चाहिये । मनुष्यमात्र हम एक हैं । परस्पर प्रेम करें । परस्पर सम्बन्ध जोड़ें । एक दूसरे के लिये प्राण अर्पण करें । कर्म्म से मनुष्य नीच होता है । जन्म से कदापि नहीं । अतः हे विद्वानो ! वेदशास्त्र विरुद्ध सामाजिक नियम को अवश्य ही तोड़ देना चाहिये । इति ।

'अध्यारारोपित जाति'

शङ्का=तब महर्षि पाणिनि और मनुस्मृति आदि ग्रन्थ इन चारों को चार जातिएं कैसे मानते हैं।

उत्तर=जब अनेक प्रमाणों से और प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है कि मनुष्य एक जाति है तब हम कैसे कह सकते हैं कि ये चारों पशुवत् भिन्न भिन्न जातियों के हैं। अब बात यह रह गई कि पाणिनि प्रभृति आचार्य्यों ने इन में भिन्न जाति कैसे मानी। इस का उत्तर सुनिये—इन लोगों ने मनुष्यों में वास्तविक जाति-भेद नहीं माना है। अध्यारोपित जाति भेद माना है अर्थात् जैसे कोई कवि वृक्ष में चेतनपुरुषत्व का आरोप कर के कहता है कि हे वृक्ष! मेरी बात सुन! तू मुझे फल दे। तेरी सुन्दरता देख मैं मोहित हूं इत्यादि। यथार्थ में वृक्ष चेतन पुरुष नहीं; किन्तु इस में चेतनता का अध्यारोप अर्थात् कल्पना की गई है तद्वत् मनुष्य में जाति भेद नहीं; परन्तु कल्पित जाति भेद माना है।

कल्पित जाति भेद क्यों माना है? यह प्रश्न उत्थित हो सकता है। इस पर किञ्चित् ध्यान देने से इस के कारण का बोध हो सकता है। देश में जब अनेक प्रकार के व्यापार आवश्यकतानुसार फैलने लगता है तब एक एक कार्य्य को अनेक अनेक मनुष्य करने लगते हैं। जब भूषण की आवश्यकता बढ़ी तो सहस्रों मनुष्य भूषण बनाने लगे उन की यही वृत्ति (जीविका) हुई। जब लोहों को प्रयुक्त करने लगे और इस की आवश्यकता बढ़ी तो इसी कार्य को लाखों करने लगे, इसी प्रकार अन्यान्य व्यापार में समझिये। ये लोग स्वर्णकार, लोहकार आदि नाम से प्रसिद्ध हुए। अब कर्म्म के अनुसार जितने लोहकार एक स्थान में कार्य्य कर रहे हैं वे कर्म्मवश एकसमान प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार जो लोग कपड़े बुन रहे हैं वे तन्तुवाय एक समान प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार स्वर्णकार रथकार आदिकों को भी जानो। हम पीछे कह आए हैं कि समान बुद्धि के उत्पादक जो आकृतिगत-धर्म्म है वह 'जाति' कहलाती है। क्योंकि गौतमाचार्य्य कहते हैं—"समानप्रसवात्मिका जातिः" जैसे एक हाथी के देखने से सकल हाथी का बोध हो जाता है। वैसे ही कर्म्मवश मनुष्य में भी एक

समानता प्रतीत होती है। जब वह कार्य्य करता रहता है। उदाहरण के लिये लोहकार को ले लीजिये। एक आदमी को लोह का काम करते हुए देख "यह लोहकार है" यह मन में निश्चय कर जिस जिस को लोह सम्बन्धी कार्य्य करते हुए आप देखेंगे झट से आप कहेंगे कि यह लोहकार है। इस प्रकार सब लोहकार में समान बुद्धि का उत्पादक एक धर्म्म है अतः लोहकार भी एकजाति है। परन्तु अब लोहकार को कहीं आप ने अन्यत्र देखा जहां वह स्नान वा पूजापाठ कर रहा है वा गमन कर रहा है वहां उसे देख "यह लोहकार है" ऐसी बुद्धि आपको उत्पन्न नहीं होगी। इस से क्या सिद्ध हुआ ? मनुष्य में जो जाति है वह कर्म्मगत है। आकृतिगत नहीं जब कर्म्म करता रहता है तब वह लोहकार प्रतीत होता अन्यत्र नहीं। परन्तु पशु सर्वत्र एक समान ही प्रतीत होंगे। इस कारण मनुष्य में 'जाति' अध्यारोपित है। वास्तविक नहीं। इसी अध्यारोपित जाति को पाणिनिं प्रभृतियों ने मान कर शब्दों की सिद्धि की है॥

आज कल इसी अध्यारोपित-जाति शब्द का सर्वत्र प्रयोग होता है। बोलचाल में जैसा प्रयोग होजाता है वैसा बरतना ही पड़ता है। इसी नियम के अनुसार प्रत्येक-देश निवासियों में भी जाति शब्द का प्रयोग होने लगा। क्योंकि प्रत्येक देश के मनुष्यों में अशन, वसन, आचरण, बैठना, उठना सामाजिक व्यवहार आदि प्रायः सर्व कर्म कुछ कुछ भिन्न होगये हैं। अङ्गरेज़ो के जो धर्म्म, वस्त्रादि-परिधान, बिवाह रीति, भोजन की विधि आदि हैं भारतवासियों के वैसे नहीं। एवं देश भेद से रूप में भी बहुत भेद है। वे गौराङ्ग हैं। भारत में उष्णता की अधिकता के कारण अनेक वर्ण के हैं। कोई गौर, कोई श्याम इत्यादि। इस से भिन्न भिन्न जातीयता प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में भिन्न जातीयता नहीं।

'वर्ण शब्द का प्रयोग'

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार 'वर्ण' कहलाते हैं। जाति नहीं। क्योंकि चारों वेदों में इन चारों के लिये 'जाति' शब्द का प्रयोग नहीं है। वेदों के अनुसार मनुष्यमात्र प्रथम दो भागों में विभक्त हुए हैं। आर्य्य और दस्यु।

शुभ कर्म्म करने वाले आर्य्य और दुष्टकर्म करने वाले दस्यु वा दास । आर्य्य और दस्यु दोनों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग वेद में आया है ॥

"वर्ण शब्द और वेद"

ससानात्याँ उत सूर्य्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्। हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्राऽऽर्य्यं वर्णमावत् ॥ ऋ० ३ । ३४ । ६ ॥

इस जगत् में (इन्द्रः) परमात्मा ने मनुष्यों के लिये (अत्यान्) हय प्रभृति पशु (ससान) दिये हैं (उत+सूर्य्यम्) प्रकाश के लिये सूर्य्य (ससान) दिया है (पुरुभोजसम्+गाम्) अनेक भोज्य पदार्थ संयुक्त पृथिवी (ससान) दी है । इस के अतिरिक्त (उत+हिरण्ययम्+भोगम्) सुवर्णादि युक्त भोग्य वस्तु दी है और वह परमात्मा (दस्यून्) दुष्ट चोर डाकू को (हत्वी) हननकर (आर्य्यम्+वर्णम्) आर्य्य वर्ण को (प्र+आवत्) सदा रक्षा किया करता है । दानार्थक 'षणु' धातु से ,ससान' बनता है 'प्राऽऽर्य्यम्' में 'प्र+आर्य्यम्' दो शब्द हैं ॥

यहां 'आर्य्य, वर्ण' शब्द आया है । आर्य्य नाम श्रेष्ठ, याज्ञिय, वैदिक, व्रती आस्तिक आदि धार्मिक पुरुषका है । ऐसे 'आर्य पुरुष' के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग देखते हैं ।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः । श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्य्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ऋ० २ । १२ । ४ ॥

(येन) जिस ने (इमा+विश्वा) इस विश्व को (च्यवना+कृतानि) नम्र बनाया है । अर्थात् जिस राजा ने शिक्षा के द्वारा मनुष्यों को नम्रीभूत किया है । और जो शिक्षा के अधीन नहीं हुए ऐसे जो (दासम्+वर्णम्) जगत् में अशान्ति फैलाने वाले उपक्षयिता नास्तिक वर्ण हैं उन को (यः) जिसने (अधरम्) नीचे करके (गुहा+अकः) गह्वर में स्थापित किया और (यः) जो (श्वघ्नी+इव) मृग के मारने वाले व्याध के समान (लक्षम्) लक्ष्य को

(जिगीवान्) जीतता है । और (अर्यः) प्रजाओं का स्वामी वह राजेन्द्र (पुष्टानि) पुष्टकारी वस्तुओं को सदा (आदत्) प्रजा के सुख के लिये ग्रहण किया करता है जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र अर्थात् हम लोगों का राजा है ॥

यहां पर भी "दास" के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआहै। वर्ण शब्द का अर्थ 'चुनने वाला' है। अपनी अपनी मति से मनुष्य अपनी अपनी जीविको पाय चुना करता है। किसी ने अच्छा व्यवसाय चुना किसीने बुरा व्यवसाय। इन दोनों प्रकारकेमनुष्यों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग वेद में देखते है। परन्तु इनके लिये 'जाति' शब्द का प्रयोग कहीं भी उक्त नहीं हैं । अतः वेदानुसार मनुष्यों में भिन्न २ व्यवसायी को वर्ण शब्द द्वारा व्यवहार करना सर्वथा उचित है ।

'वर्ण शब्द और ब्राह्मण ग्रन्थ'

सर्वं ह्येदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम् । ऋग्भ्यो जातं वैश्य वर्णमाहुः ।
यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम् । तैत्तिरीय ब्रा० ३।१२।९।४॥
दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः । तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । २ । ६ । ७
स शौद्रं वर्ण मसृजत । शतपथ ब्राह्मण १४ । ४ । २ । २३ ॥

ब्राह्मण ग्रन्थों से यहां केवल तीन वचन उद्धृत किये हैं । ये वचन भी ब्राह्मणादिकों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग करते हैं । 'जाति' शब्द का नहीं ।

'वर्ण शब्द और महाभारत'

कृते युगे समभवन् स्वकर्म्म-निरताः प्रजाः ।
समाश्रयं समाचारं समज्ञानञ्च केवलम् ॥ १८ ॥
तदा हि समकर्म्माणो वर्णा धर्म्मानवाप्नुवन् ।
एकवेदसमायुक्ता एकमन्त्र विधिक्रियाः ॥ १९ ॥
कृते युगे चतुष्पादश्चातुर्वर्ण्यस्य शाश्वतः ।
एतत्कृतयुगं नाम त्रैगुण्य परिवर्जितम् ॥ २२ ॥
महाभारत वनपर्व ।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्म मिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥
शान्ति पर्व १८८ । १० ॥

इत्यादि अनेक स्थलों में ब्राह्मणादि मनुष्य के लिये 'वर्ण' शब्द का ही प्रयोग आता है । जाति शब्द का नहीं । आगे उद्धृत श्लोकों में वर्ण शब्द के अनेक प्रयोग देखेंगे । लोक में भी चार वर्ण और चार आश्रम कहते सुनते हैं। चार जाति और चार आश्रम कोई नहीं कहता ।

'वेद में अनेक वर्णों के नाम'

यजुर्वेद ३० वें अध्याय में ब्राह्मणादि अनेक नाम आए हैं उन का अर्थ सहित यहां लेख करते हैं । यथा:—

(५) १-ब्राह्मण=(१) ब्रह्मपुत्र अर्थात् वेद, ईश्वर, व्रत, तप, यज्ञादि के तत्त्व जानने वाला ।

२-राजन्य=राजपुत्र अर्थात् शौर्य्य, वीर्य्य, प्रतापादि से शोभायमान।

३-वैश्य=वैश्यपुत्र अर्थात् व्यवसाय के लिये सर्वत्र वायुवत् प्रवेश करने वाला ।

४-शूद्र=कठिन से कठिन दुःसाध्य शारीरिक कर्म्म में सदा तत्पर (तपसे शूद्रम्) ।

५-तस्कर=चोर ।

६-वीरहा=वीरों को मारने हारा ।

७-क्लीब=नपुंसक ।

८-अयोगू=लोहे के हथियारविशेष के साथ चलने हारा । अयस्= लोहा । गू = गन्ता ।

९-पुँश्चलू=पुरुषों के साथ चलायमानचित्तवाली व्यभिचारिणी स्त्री (पुंश्चली, स्वैरिणी) ।

(१) यजुर्वेद ३० वें अध्याय के पञ्चम मंत्र से नामों की गणना आती है । एक मंत्र को छोड़ प्रत्येक मंत्र में दश दश नाम आए हैं ।

(६) ११–सूत=विविध-प्रतिभा-युक्त, विचित्र काव्यरचयिता (सूते जनयति काव्यादिकं यः स सूतः)।
१२–शैलूष=गाने हारा नट।
१३–सभाचर=सभा में विचरने हारा सभापति।
१४–भीमल=भयङ्कर कार्य्य करने हारा।
१५–रेभ=स्तुति करने हारा।
१६–कारि=उपहासकर्ता।
१७–स्त्रीषख=स्त्री से मित्रता करने हारा (स्त्री+सखा)।
१८–कुमारीपुत्र=विवाह से पूर्व व्यभिचार से उत्पन्न बालक।
१९–रथकार=विमानादि बनाने हारा।
२०–तक्षा=महीन काम करने हारा बढ़ई।
(७) २१–कौलाल=कुम्हार का पुत्र अर्थात् मृत्तिकाओं के विविध पात्रों का निर्माता (कुं पृथिवीं लालयति, पात्रैर्मनुष्यकुलमलंकरोतीति वा)।
२२–कर्म्मार=उत्तम शोभित काम करने हारा (कर्म्माणि अरङ्करोतीति)
२३–मणिकार=मणि बनाने वाला।
२४–वप=विद्यादि शुभगुणों का बोने वाला (विप्र, मेधावी)।
२५–इषुकार=बाणकर्ता।
२६–धनुष्कार=धनुष्कर्ता।
२७–ज्याकार=प्रत्यञ्चा बनाने वाला।
२८–रज्जुसर्ज=रज्जु (रस्सी) बनाने वाला।
२९–मृगयु=व्याध, (मृगं कामयते मृगयुः)।
३०–श्वनी=कुत्ते पालने हारा (श्वानं कुक्कुरं नयतीति श्वनीः)।
(८) ३१–पौञ्जिष्ठ=धानुक।
३२–नैषाद=निषादपुत्र (निषीदति निषद्यकर्म्म करोति वा)।
३३–दुर्म्मद=दुष्ट, अभिमानी।
१०–मागध=अपनी कविता से लोगों के चित्त को मादक बनाने हारा (मादयतीति मागधः)।

३४–व्रात्य = संस्कार-रहित मनुष्य ।

३५–उन्मत्त = उन्माद रोग वाला ।

३६–अप्रतिपद = संशयात्मा ।

३७–कितव = ज्वारी, धूर्त्त ।

३८–अकितव = जुआ न करने हारा ।

३९–विदलकारी = पृथक् २ टुकड़ों को करने हारा ।

४०–कण्टकीकारी = कांटे बोने वाली स्त्री ।

(९) ४१–जार = व्यभिचारी (जारयति विनाशयति धर्म्मं यौवनम्वा)।

४२–उपपति = दूसरा व्यभिचारी पति ।

४३–परिवित्त = छोटे भाई के विवाह होने में विना विवाह का ज्येष्ठ भाई ।

४४–परि-विविदान = ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त होने में दाय को प्राप्त हुआ छोटा भाई ।

४५–एदिधिषुःपति = ज्येष्ठ पुत्री के विवाह के पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री का पति

४६–पेशस्कारी = शृङ्गार विशेष से रूप करने हारी व्यभिचारिणी।

४७–स्मरकारी = कामदेव को चेतन-करने हारी दूती ।

४८–उपसद = साथी ।

४९–अनुरुध = रोकने वाला ।

५०–उपदा = नज़र, भेट वा घूंस देने हारा ।

(१०) ५१–कुब्ज = कुबड़ा ।

५२–वामन = छोटा मनुष्य ।

५३–स्राम = जिसके नेत्र से निरन्तर जल निकलता हो ।

५४–अन्ध = अन्धा ।

५५–वधिर = बहिरा ।

५६–भिषज = वैद्य ।

५७–नक्षत्र-दर्श = नक्षत्र देखाने हारा गणितज्ञ ।

५८–प्रश्नी = प्रशंसित प्रश्नकर्ता ।

५९–अभिप्रश्नी = सब ओर से प्रश्न करने हारा ।
६०–प्रश्न-विवाक = प्रश्नों को विवेचन कर उत्तर देने वाला ।
(११) ६१–हस्ति-प = हाथियों का रक्षक (हस्ति+प)
६२–अश्व-प = घोड़ों का रक्षक (अश्व+प)
६३–गो-पाल = गौओं का रक्षक (गाः पालयतीति)
६४–अवि-पाल = गड़रिया (अविं मेषजातिं पालयतीति)
६५–अज-पाल = बकरे बकरियों का रक्षक (अजं पालयतीति)
६६–कीनाश = खितिहर
६७–सुराकार = सोमरस को निकालने वाला ।
६८–गृह-प = घरों का रक्षक (गृह+प)
६९–वित्त-ध = धन धारण करने हारा (वित्तं दधाति)
७०–अनुक्षत्ता = अनुकूल सारथी ।
(१२) ७१–दार्वाहार = काष्ठों को पहुंचाने वाला (दारु+आहार)
७२–अग्न्येध = अग्नि के दीप्ति करने हारा (अग्नि+इन्धी दीप्तौ)
७३–अभिषेक्ता = अभिषेक = राजतिलक करने वाला
७४–परिवेष्टा = परोसने वाला
७५–पेशिता = विद्या के अवयवों को जानने वाला
७६–प्रकरिता = फेंकने वाला
७७–उपसेक्ता = उपसेचन करने हारा ।
७८–उपमन्थिता = ताडनादि से पीड़ा देने हारा दुष्ट ।
७९–वासः पल्पूली = वस्त्रों की शुद्ध करने वाली धोबिन ।
८०–रजयित्री = उत्तम रँग करने वाली रँगरेजिन ।
(१३) ८१–स्तेनहृदय = चोर के तुल्य छली कपटी ।
८२–पिशुन = चुगिल ।
८३–क्षत्ता = सारथी वा ताड़ना से रक्षा करने हारा ।
८४–अनुक्षत्ता = अनुकूल सारथी ।
८५–अनुचर = सेवक ।
८६–परिस्कंद = सब ओर से वीर्य्य सेचने वाला ।

८७-प्रिय-वादी=प्रिय बोलने वाला ।
८८-अश्व-साद=घोड़ों को चलाने वाला ।
८९-भागदुघ=अंशों को पूर्ण करने हारा ।
९०-परिवेष्टा=परसोने वाला ।
(१४) ९१-अयस्ताप=लोह वा सुवर्णतपाने वाला (अयस्+ताप)
९२-निसर=निश्चित रूप से चलने वाला ।
९३-योक्ता=योग करने हारा ।
९४-अभिसर्ता=सम्मुख चलने वाला ।
९५-विमोक्ता=दुःख से छुड़ाने वाला ।
९६-त्रिष्ठी = जल, स्थल, आकाश, तीनों स्थानों में विमानादि के साथ रहने वाला ।
९७-मानस्कृत = मन से विचार करने में प्रवीण ।
९८-आञ्जनी-कारी = नेत्र में अंजन लगाने वाली स्त्री ।
९९-कोशकारी = करवालादि कोश करने वाली ।
१००-अस्रू = मृतवत्सा स्त्री ।
(१५) १०१-यमसू=यमल प्रसव करने वाली स्त्री (यमौसूते)
१०२-अवतोका=अपुत्रा स्त्री ।
१०३-पर्य्यायिणी=क्रम से पुत्र कन्या उत्पन्न करने वाली ।
१०४-अविजाता=ब्रह्मचारिणी कुमारी ।
१०५-अतित्वरी=असन्त चलने वाली (असन्त कुलटा)
१०६-अतिष्कद्वरी = अतिशय कर जानने वाली ।
१०७-विजर्जरा = वृद्धा स्त्री ।
१०८-पलिक्नी=श्वेत केश वाली स्त्री ।
१०९-अजिनसन्ध = नहीं जितने वाले पुरुषों से मेल रखने वाला ।
११०-चर्म्मम्न = चर्म्मकार (चर्म्माणि मनाति अभ्यस्यति, निर्माति) चर्म्म+म्न । म्नाअभ्यासे ।
(१६) १११-धैवर = धीवर का लडका (धिया बुद्धया वरः)
११२-दाश=सेवक, धीवर ।

११३-वैन्द=निषाद का पुत्र।
११४-शौष्कल=मछियों से जीने वाला।
११५-मार्गार=व्याध का पुत्र।
११६-कैवर्त=जल में नौका चलाने वाला।
११७-आन्द=बान्धने वाला।
११८-मैनाल=मीन ग्राहीसन्तान।
११९-पर्णक=भील।
१२०-किरात=किरात।
१२१-जम्भक=नाश करने वाला।
१२२-किम्पूरुष=छोटे जंगली मनुष्य। (१)
(१७) १२३-पौल्कस=भंगी का पुत्र।
१२४-हिरण्यकार=सुवर्ण बनाने हारा सुनार।
१२५-वाणिज=बनिया का पुत्र।
१२६-ग्लावी=हर्ष को नष्ट करने हारा।
१२७-सिध्मल=रोगी।
१२८-जागरण=जागने वाला।
१२९-स्वपन=सोने वाला।
१३०-जन-वादी=स्पष्टवक्ता।
१३१-अपगल्भ=प्रगल्भता शून्य।
१३२-प्रछिद=अधिक छेदन करने वाला।
(१८) १३३-कितव=जुआरी।
१३४-आदिनवदर्श=प्रारम्भ में ही नवीन दोष दर्शी (आदि+नव+दर्शी)
१३५-कल्पी=कल्पना वाला।
१३६-अधिकल्पी=अधिक कल्पना करने हारा।
१३७-सभास्थाणु=सभा में स्थिर रहने वाला सभ्य।

(१) इस मन्त्र में १२ नाम आए हैं।

१३८–गोव्यछ = गौ को ताडन करने हारा ।
१३९–गोघात = गौवों को मारने हारा ।
१४०–भिक्षमाण = भीख मांगता ।
१४१–चरकाचार्य्य = भक्षकों का आचार्य्य ।
१४२–सैलग = दुष्ट का पुत्र ।
(१९) १४३–अर्तन = प्रापक ।
१४४–भष = परिभाषक ।
१४५–वहु-वादी = वहुत वोलने वाला ।
१४६–मूक = गूंगा ।
१४७–आड़म्वराघात = हल्ला गुल्ला करने वाला ।
१४८–वीणावाद = वीणा बजाने वाला ।
१४९–तूणव-ध्म = तूणव बाजे बजाने वाला ।
१५०–शङ्ख-ध्म = शंख बजाने वाला ।
१५१–वन-प = वन रक्षक ।
१५२–दाव-प = वनदाह रक्षक ।
(२०) १५३–पुंश्चलू = व्यभिचारिणी स्त्री ।
१५४–कारी = विक्षेपक, फेंकने हारा ।
१५५–शावल्या = कवरे मनुष्य की कन्या ।
१५६–ग्रामणी = ग्रामनायक (ग्रामं नयति)
१५७–गणक=गणितविद् ।
१५८–अभिक्रोशक = पुकार ने हारा ।
१५९–वीणावाद = वीणा बजाने हारा ।
१६०–पाणिघ्न = हाथ से ताल बजाने वाला । (पाणिं हन्ति)
१६१–तूणव-ध्म = तूणव बजाने वाला ।
१६२–तल-व = हस्तादि ताल बजाने वाले ।
(२१) १६३–पीवा=स्थूल ।
१६४–पीठसर्पी=विना पगों का । हाथ में खड़ाऊं ले कर ससर कर चलने वाला ।

१६५-चाण्डाल=चाण्डाल।

१६६-वंशनर्त्ती=बांस पर नाचने वाला नट।

१६७-खलति=गंजा।

१६८-हर्य्यक्ष=वानर की सी छोटीआंख वाला।

१६९-किर्मिर=कबर-रंग वाला।

१७०-किलास=थोड़ा खोता वर्ण।

१७१-शुक्लपिङ्गाक्ष=पीतनेत्र।

१७२-कृष्णपिङ्गाक्ष=कृष्णनेत्र।

इति प्रथममार्य्यदस्युदासादि-शब्दनिर्णयप्रकरणं समाप्तम्।

अथ

'खेती करना आदि व्यवसाय प्रकरण'

देश में प्रायः लोग समझते हैं कि खेती करना, लोह से कुठार (कुल्हर) वाशी (वशला) कुद्दाल वगैरह गढ़ना, काठ से हल, युग (जूआ) गाड़ी, रथादि तैयार करना, मिट्टी से अनेक वर्त्तन गढ़ना, कांसे पीतल आदि से वर्त्तन बनाना, सूतों से कपड़ा बुनना, चमड़ों के विविध जूते वा वस्त्र वा युद्ध में पहनने के हेतु अनेक प्रकार के वर्म्म सीना और चमड़े के तन्तु से ज्या (प्रत्यञ्चा धनुष की रस्सी) सुसज्जित करना, चक्की पीसना, अपने कार्य्य के लिये ढोना, खाई, नहर, कूप, तालाब आदि खोदना, सड़क बांधना वगैरह कर्म्म नीच पुरुषों के हैं। और प्रत्यक्ष देखते हैं कि इन सब व्यवसायों के करने वाले आज नीच निकृष्ट अस्पृश्य अदृश्य माने जाते हैं। और सभ्य समाज में वे किसी प्रकार से सम्मिलित नहीं किए जाते। ये परिश्रम-शील पुरुष जिन के अधीन समाज के जीवन, शोभा, सुन्दरता है अति घृणित और नीच बना दिये गये हैं। इन से यज्ञोपवीत छीन लिया गया। कर्म्म-करना निषेध किया गया। इस प्रकार ज्यों ज्यों इन का सम्बन्ध उच्च वर्णों से छूटता गया त्यों त्यों ये गिरते गये। मद्यादि सेवन से, शौचादिक के त्याग से और विद्या के अध्ययन अध्यापन न

होने से ये सब निःसन्देह आज बहुत नीचे गिरे हुए हैं। इन के कर्म्म, धर्म्म, देव, पितर, भजन, बैठना उठना सब ही उच्च वर्णों से भिन्न २ हो गये। मैं इस प्रकरण में आप लोगों को सुनाना चाहता हूं कि कोई व्यवसाय वेदानुसार निकृष्ट नहीं। ब्राह्मण ऋत्विक् राजा प्रभृति भी इन व्यवसायों को बड़े आनन्द से किया करतेथे। आप यह समझें कि समाज की शोभा के निमित्त वा जीवन निर्वाहार्थ जिन जिन व्यवसायों की आवश्यकता थी उन को सब कोई कुछ न कुछ अवश्य किया करते थे। विशेष कर ब्राह्मण और राजा को आज्ञा थी कि उन व्यवसायोंको तुम कभी २ किया करो जिससे साधारण प्रजाओं में घृणा नहो। एवमस्तु अब आप वेदों की ऋचा सुन कर स्वयं मीमांसा करें।

'राजकर्त्तव्य हलचालन'

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेण धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्य्याय॥१।११७।२१॥

यवम्। वृकेण। अश्विना। वपन्ता। इषम्। दुहन्ता। मनुषाय। दस्रा। अभि। दस्युम्। बकुरेण, धमन्ता। उरु। ज्योतिः। चक्रथुः। आर्याय॥

अर्थ=(दस्रा+अश्विना) हे दर्शनीय राजन्! तथा मात्रिन्! आप दोनों (वृकेण) लाङ्गल=खेती करने के कर्षक यन्त्र से (यवम्+पवन्ता) यव (जौ) अनेक प्रकार के अन्नों को बोते हुए और उस बोनाई से (इषम्+दुहन्ता) अन्नों को पृथिवी से दुहते हुए तथा (बकुरेण) बकुरनामकअस्त्र से (दस्युम्+अभि+धमन्ता) दुष्टों को नाश करते हुए इस प्रकार इन तीन प्रकार के कर्म्मों से (आर्याय+मनुषाय) आर्य मनुष्य के लिये (उरु+ज्योतिः) बहुत प्रकाश (चक्रथुः) कर रहे हैं इस हेतु, आप दोनों परम प्रशंसनीय हैं।

यास्क 'बकुरो भास्करो भयङ्करो भासमानो द्रवतीतिवा' जो अस्त्र जलता हुआ दौड़े जैसे बन्दूक तोप आदि उसे बकुर कहते हैं। 'वृको लाङ्गलं भवति' 'लाङ्गल का नाम यहां वृक है। निरुक्त ६। २५। और २६॥

निरुक्तमें इस ऋचा का उदाहरण आया है । वृक नाम यहां हल के लांगल का है । इस में विस्पष्ट वर्णन है कि राजा और मन्त्री दोनों मिलकर कभी २ खेती करें ताकि प्रजाएं इस कर्म को नीच न समझें और इस व्यवसाय के करने वाले भी निकृष्ट न माने जांय । कदाचित् आप कहेंगे कि यहां 'अश्विनौ' पद से देवता का ग्रहण होता है राजा मन्त्री का नहीं । सुनिये 'अश्विनौ' किस को २ कहते हैं—"तत्काविश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके अहोरात्रावित्येके सूर्याचन्द्रमसावित्येके राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः" इस प्रमाण से सिद्ध है कि धर्मात्मा राजा मन्त्री जोड़े का भी नाम 'अश्विनौ' है । और देवता भी शुभ-गुण-सम्पन्न मनुष्य ही कहाते हैं । खेत करने वाले को देवता की पदवी दी गई है । यह इन की प्रशंसा है ।

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्रस्तुवीमहि ॥८।२२।६॥

(दिवि) द्युलोक में जैसे मनुष्य के सुख के लिये सूर्य्य चन्द्र कार्य्य कर रहे हैं तद्वत् आप दोनों राजा मन्त्री (मनवे) मनुष्य के लिये (पूर्व्यम्) नवीन वस्तु (दशस्यन्ता) देते हुए (यवम्) जौ अर्थात् सब प्रकार के धान्य (वृकेण) लाङ्गल से (कर्षथः) उत्पन्न करते हैं । इस हेतु (अश्विनौ) हे राजा ! तथा मन्त्री (अद्य) आज (शुभस्पती) शुभकर्म्म के पालन करने वाले अथवा जल के रक्षक (ता+वाम्) आप दोनों को (सुमतीभिः) शोभनमति अर्थात् स्तोत्रों से (प्रस्तुवीमहि) हम लोग स्तुति करते हैं । अर्थात् आपके गुण गाते हैं ॥

शुभः+पती = जल के रक्षक राजा को इस हेतु यहां कहा गया है कि खेत जल से ही होता है । यदि जल का प्रबन्ध राजा न करे तो खेती होना कठिन है । राजपूताने और पञ्जाब आदि देश में आज कल भी जलार्थ राजाओं का बड़ा प्रबन्ध देखा जाता है । अन्यान्य कर्म के साथ किसानी भी एक कर्त्तव्य कर्म्म राजा के लिये विहित था । पौराणिक समय में भी जनक और पृथु महाराज आदि की कथा कर्षणवृत्ति राजकर्त्तव्य सूचित करती है ।

'कृष्टि और चर्षणि'

मनुष्य के नाम में कृष्टि और चर्षणि ये दो नाम आते हैं 'कृष् विलखने' कृष् धातु से ये दोनों शब्द बने हैं। पृथिवी को हलादि यन्त्र से चीरना फाड़ना अर्थ 'कृष्' धातु का है इसी अर्थ में इस के प्रयोग बहुत आते हैं इसी हेतु खेत से जीने वाले किसान के नाम आज कल कर्षक, कृषक और कृषीवल आते हैं(१) जब मनुष्यमात्र के नाम (निघण्टु २-३) कृष्टि और 'चर्षणि' है। तो क्या राजा और ब्राह्मण मनुष्य में नहीं।

'कृषि कर्म्म प्रचारार्थ आज्ञा'

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहा दुत्तरा मुत्तरां समाम् ॥ ऋ० ४।५७।४ ॥

(इन्द्रः) जो राजा हो वह (सीताम्+निगृह्णातु) लांगल को पकड़े और (ताम्+अनु) पीछे उस सीता को अर्थात् हल सम्बन्धी खेती क्रिया को (पूषा) मन्त्री वगैरह (नि+यच्छतु) नियम में चलावें (उत्तराम्+उत्तराम्+समाम्) प्रत्येक आगामी वर्ष में। इस प्रकार (सा+पयस्वती+दुहात्) वह दूध देने वाली होवे ॥

भाव यह है कि प्रथम, वर्ष के आरम्भ में कम से कम एक आध दिन स्वयं राजा हल को पकड़ कर चलावें। पीछे मन्त्री आदि प्रबन्धकर्ता पुरुष प्रजाओं के बीच इस क्रिया को फैलाने के लिये पूरा यत्न करें। ऐसा न हो कि किसी हल बैल बीज पानी आदि के अभाव से खेती करना बन्द होजाय। खेती से ही गाय भैंस बकरी भेड़ी घास भूसे खातीहैं और सब दूध देतीहैं। मनुष्य मात्र का जीवन इसी के अधीन है इस प्रकार खेती दूध देने वाली प्रत्येक वर्ष हुआ करती है। इस ऋचा के द्वारा ईश्वर ने राजा को हल चलाने की आज्ञा देकर कृषि विद्या प्रचारार्थ आज्ञा दी है।

(१) क्षेत्राजीवः कर्षकश्च कृषिकश्च कृषीवलः ॥ अमर २।९।६॥

यदि कोई कहे कि इन्द्र नाम तो देवों के राजा का है। सुनिये मैं कहचुका हूं कि 'देव' मनुष्य भी होते हैं। और ऐसे २ स्थान में इन्द्र पद से 'राजेन्द्र' का ग्रहण होता है। जिस के पक्ष में देवराज ही अभीष्ट है। उस पक्ष में भी कोई क्षति नहीं। जब 'देवराज' खेती करतेहैं तो मनुष्य राजाओं की क्या गिनती है। इस से तो खेती की और भी प्रशंसा होती है।

खेती और जनक महाराज—'अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गला दुत्थिता ततः। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नम्ना सीतेति विश्रुता' ॥ रामायण' १। ६६। १४ वालकाण्ड रामायण में जनक महाराज स्वयं कहते हैं कि हल चलाते हुए मुझे यह सीता मिली, इस कथा का भाव जो कुछ हो परन्तु राजा को हल चला कर खेत करने का पता इससे अवश्य लगता है। यदि उस समय क्षेत्र-कर्षण राजा को निषेध रहता तो ऐसा इतिहास कभी नहीं लिखा जाता ॥ अतः 'सीता' यह नाम और सीता-जनक-चरित्र पूर्णतया दृढ़ करता है कि क्षेत्र-कर्षण और कृषीवल दोनों निकृष्ट नहीं माने जाते थे।

खेती और पृथु महाराज—पृथु महाराज के चरित्र में यद्यपि बहुत अन्तर पड़गया है। और इस के साथ बहुत ही अत्युक्ति की गई है। परन्तु यह इतिहास सूचित करता है कि पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करने के लिये राजा अनेक उपाय किया करते थे। ऋषि, ब्राह्मण, राजा प्रजा सब मिल कर खेती विद्या की बढ़ती में तत्पर थे। भागवत चतुर्थस्कन्ध सप्तदशाध्याय में लिखा है कि अन्न विना भूखों मरती हुई प्रजाएं पृथु के समीप आ जोर से चिल्ला उठीं कि आप हम सबों की रक्षा करें अन्न विना सब मरती जातीं हैं। तब पृथु महाराज धनुष् वाण ले पृथिवी के पीछे चले। पृथिवी वशी भूत हुई और उससे सारे खाद्य पदार्थ दुहे। भाव इसका केवल यह है कि खेती के लिये राजा प्रजा ऋषि मुनि सबही उद्यत रहते थे।

'खेती और विद्वान् आचार्य्य आदि'

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ऋ०। १०। १०१। ४॥

सीर = हल । युग = जुआ । सुम्न = सुख ।

(धीराः) धीमान् क्षेत्रविद्यावित् (कवयः) कृषिकर्म्म जानने वाले विद्वान् (सीरा+युञ्जन्ति) हल में बैल जोतते हैं और (युगा) युगों को (पृथक्+वितन्वते) पृथक् २ विस्तार करते हैं । किस हेतु ? (देवेषु+सुम्नया) मनुष्यों में सुख पहुंचाने के हेतु ॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्॥ १०।१०१।३

हे विद्वानो ! (सीरा+युनक्त) हलों को बैलों से युक्त करो (युगा+वि तनुध्वम्) युगों को विस्तार करो । [कृते०] हल से तैयार खेत में बीज बोओ। इत्यादि अनेक ऋचाएं विद्वान् आचार्य, कवि, धीर प्रभृतियों को भी हल चलाने की आज्ञा देती हैं । पीछे आचार्यों ने इसका अनुकरण भी किया है यथाः—

खेती और धौम्य ऋषिः—महाभारत-आदि पर्व तृतीयाध्याय में लिखा है कि कोई एक धौम्य नामक ऋषि थे । उनके उपमन्यु, आरुणि, और वेद तीन शिष्य थे। "स एकं शिष्य मारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास गच्छ केदारखण्डं बधानेति । 'आदिपर्व' ३ । २४ । उन्हों ने एक शिष्य पाञ्चाल्य आरुणि से कहा कि जा खेत के पानी को बांध आ । परन्तु वह वहां जाकर खेत न बाँध सका । इस हेतु पानी बहने के पनाले में पड़ रहा। गृह पर उसे न देख धौम्य ऋषि वहां जा शिष्य का चरित्र देख अति प्रसन्न हुए हैं। वह शिष्य पीछे "उद्दालक" नाम से जगत विख्यात हुआ । यह आख्यायिका धौम्य ऋषि का खेत करना सूचित करती है । इस के आगे कृषिकर्म्म सम्बन्धी एक सूक्त ही सुनाते हैं ।

'ऋग्वेद ४ । ५७ सम्पूर्ण सूक्त'

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळाती दृशे ॥ १ ॥

वामदेव ऋषि सब को उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो ! (वयम्) हम सब कोई (हितेन+इव) परम मित्र के समान (क्षेत्रस्य+पतिना) खेत के स्वामी

के साथ होकर ही (जयामसि) विजय पाते हैं । अर्थात् खेत करने वाले पुरुष हम लोगों को विविध अन्न पहुंचाते हैं तब ही हम लोग प्रत्येक कार्य्य को करने में समर्थ होते हैं । (सः) वह क्षेत्रपति (गाम्+अश्वम्) गौ, बैल और अश्व (पोषयित्नु) और पुष्टिकारक अन्यान्य पदार्थ (आ) सब तरह से हम लोगों को पहुंचाते हैं । जिस हेतु (ईदृशे) ऐसे ऐसे कार्य्यों में खेतिहर किसान (नः+मृळाति) हम को सुख पहुंचाते हैं इस कारण क्षेत्रपति सदा आदरणीय है ।

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥

अब क्षेत्रपति की ओर देख कर वामदेव ऋषि कहते हैं कि (क्षेत्रस्य+पते) हे क्षेत्रस्वामिन् ! (धेनुः+इव+पयः) जैसे गौ दूध देती है वैसे ही (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (मधुमन्तम्) मीठी (ऊर्मिम्) जल धारा (धुक्ष्व) दूहो अर्थात् मीठा जल के लिये भी उपाय किया करो (मधुश्चुतम्+घृतम्+इव+सुपूतम्) मधुस्रावी पवित्र घृत के समान (ऋतस्य+पतयः) खेत के मालिक (नः) हम लोगों को (मृळयन्तु) सुख पहुंचाया करें ॥

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥

पृथिवी पर (ओषधीः) जौ, गेहूं धान आदि अन्न (द्यावः) द्युलोकस्थ सूर्य्यादिपदार्थ (आपः) और मेघस्थजल ये (मधुमतीः) सब ही हमारे लिये मीठे होवें (नः) हमारे लिये (अन्तरिक्षम्) आकाशस्थ सब ही पदार्थ (मधुमत्+भवतु) मीठा होवे । (क्षेत्रस्यपतिः+मधुमान्+अस्तु) क्षेत्रपति भी मीठा होवे और हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी से द्रोह न करते हुए (एनम्+अनु+चरेम) क्षेत्रपति के अनुकरण करें । जैसे किसान बड़ी शान्ति और धैर्य्य के साथ खेती करता है । उसी प्रकार हम लोग सब कार्य्य करें ।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥

(वाहाः) बैल (शुनम्) सुख को प्राप्त होवें । (नरः) खेती करने वाले मनुष्य (शुनम्) सुख पावें (शुनम्+कृषतु+लाङ्गलम्) खेतों में सुख से लांगल चले (शुनम्+वरत्राः) सुख पूर्वक रस्सियां (बध्यन्ताम्) बांधी जांय। (अष्ट्राम्) कोद्दाल आदि खेत करने की सामग्री (शुनम् , सुख से (उद्+इङ्गय) चलायो ।

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रतुः पयः । तेनेमा मुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

हे [शुनासीरौ] सुख से खेती करने वाले नर नारियो ! [इमाम् वाचम्] इस उपदेश-मय वाणी को । [जुषेथाम्] प्रीति पूर्वक सुनो [यद्] जिस [पयः] पानी को [शुनासीरौ] सूर्य्य और वायु [दिवि] आकाश में [चक्रतुः] बनाते हैं [तेन] उस पानी से [इमाम्] इस भूमिको [सिञ्चतम्] सींचो।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथानः सुभगा ससि यथानः सुफलाससि ॥ ६ ॥

(सुभगे+सीते) हे सुभगे हल सामग्री (अर्वाची+भव) पृथिवी के नीचे चलने वाली होवो । (त्वा+वन्दामहे) तेरी कामना हम करते हैं (यथा) जैसे तू (नः) हमारे लिये (सुभगा+अससि) सुभगा है और (यथा+नः) जैसे हमारे लिये (सुफला) अच्छे अच्छे फल देने वाली (अससि) है । वैसे ही सदा बनी रहो ।

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहा मुत्तरा मुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥

(इन्द्रः) राजा (सीताम्+नि+गृह्णातु) हल के लाङ्गल को पकड़ कर चले (ताम्+अनु) पीछे उसका (पूषा) पोषण कर्ता मन्त्री (यछतु) चलावे अर्थात् राजा सीता अर्थात् खेती विद्या को खूब फैलावे और उसके पीछे मन्त्री आदि भी इसी का अनुकरण करें जिस से कि (सा) वह खेती (नः+पयस्वती+दुहाम्) हम लोगों को दूध देने वाली हो (उत्तराम्+उत्तराम्+समाम्) होने वाले वर्ष में वह हमको सुख देने वाली होवे ।

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥

(नः) हम लोगों के लिये (फालाः) लोहे से बनाई हुई भूमि खोदने के लिये फार (शुनम्) अच्छे प्रकार (भूमिम्) भूमि को (वि कृषन्तु) चीर फार करें (कीनाशाः) खेतिहर लोग (वाहैः) बैलों के द्वारा (अभि+यन्तु) खेती के सब काम करें [पर्जन्यः] मेघ [मधुना+पयोभिः] मधुरता से युक्त जल को [शुनम्] सुख से बरसावे [शुनासीरौ] सूर्य्य और वायु [अस्मासु] हमारे निमित्त [शुनम्+धत्तम्] सुख पहुंचावें ॥ ८ ॥

कृषि कर्म्म सम्बन्धी मैंने अनेक ऋचाएं यहां सुनाई हैं। मैं देखता हूं हल-ग्राही पुरुष देश में अतिनिकृष्ट समझे जाते हैं। मिथिला देश में द्विज यदि अपने हाथ से हल चलावें तो वे जाति से निष्काशित होजांय। खेत के सब काम करेंगे। दिन भर खेत खोदेंगे। किरोनी करेंगे। काटना बोना दवाना खलियाना वगैरह में अपना सम्पूर्ण समय लगावेंगे। परन्तु अपने हाथ से हल नहीं चला सकते। इतना मैं अवश्य कहूंगा कि इन कामों में सदा लिप्त रहने से मनुष्य नीच बनजाता है। परन्तु क्या केवल एक ही हल को न छूने से कोई ब्राह्मण बना रह सकता है। नहीं। हल चलाने से क्या होता। बात यह है कि पठन पाठन स्वाध्याय आदि सब शुभ कर्म्म को छोड़ रात दिन केवल भूमि के खोदने में लगा रहना सर्वथा अनुचित है॥ खेती करवानी अवश्य चाहिये। तिरहुत में अभी तक एक विधि चली आती है कि माघ शुक्ल पञ्चमी को ब्राह्मण लोग भी अढ़ाई मोर हल स्वयं अपने हाथ से चलाते हैं। यह सूचित करता है कि यों हल चलाना अनुचित नहीं।

'चीन देश का राजा और हल चलाना'

"चीन देश में किसनई के काम का बड़ा आदर सम्मान किया जाता है। पीकिङ्ग नगर के समीप एक विशेष खेत है जहां बरस में एक बार महाराज और प्रधान लोग एकट्ठे हो के बड़ा सोहार करते हैं। एक बहुत विभूषित हल महाराज के हाथ में दिया जाता है जिस के द्वारा वह तीन कुड़ बनाता है

और हर एक राजकुमार पांच और बड़े २ राजमन्त्री नौकुड़ बनाते हैं। उस स्थान पर एक गाय की बड़ी मूर्ति मट्टी की बनी हुई और उस के पास मट्टी की ऐसी सैकड़ों छोटी २ मूर्ति रक्खी जाती हैं। जब खेत जोता गया तब भीड़ गाय की बड़ी मूर्ति को टुकरा २ कर के और छोटी मूर्ति को लूट कर ले जाती है और उन की मिट्टी को पीस कर अपने २ खेतों में डालती है" । चीन देश चित्रमाला पृ० ४४

'वस्त्रवयन (कपड़ा बुनना)'

वस्त्र निर्माण कर्म्म को आज कल लोग बहुत निन्दनीय मानते हैं। परन्तु मैं पूछता हूं कि भारत वर्ष भर में सब वर्णों के पुरुष कपास पैदा करते हैं। प्रायः सब वर्णों की स्त्रियां चरखा कातती हैं इस प्रकार उत्तम से उत्तम सूत बनालेती हैं। जब इतने काम करलेती हैं तो वस्त्र बुनने में क्या दोष आगया है। अति शोक की बात है कि बुनाई को बुरी और कताई को अच्छी मानें। हां इतनी बात अवश्य है कि बुनाई के हेतु अनेक सामग्री की आवश्यकता है। जो प्रत्येक मनुष्य नहीं रख सकता है यह सत्य है। परन्तु जो धनिक समर्थ हैं वे रक्खें और इस का व्यापार भी करें इस में क्या क्षति। परन्तु मैं देखता हूं वस्त्र-वयनकर्ता तन्तुवाय (जुलाहे) की एक पृथक् जाति ही भारत में बनी हुई है। और सभ्य समाज में नीच मानी जाती है। इस श्रमजीवी को नीच मानना बहुत ही अनुचित है। यदि यह वस्त्र न बनाये तो शोभा सुन्दरतादि सब ही जाती रहे सब जङ्गली बन जांय।

मैं इस प्रकरण में दिखलाऊंगा कि ऋषि लोगों को भी वस्त्र बनाने की आज्ञा है। और पूर्व समय में रूई कातना बनाना आदि के समान प्रत्येक गृह में देविएं विविध प्रकार के वस्त्र भी अपने हाथ से बुनलेती थीं। यह कर्म्म अनुचित नहीं माना जाता था। जैसे आज कल द्विज भी कम्बल, शाल, दुशाल, पीताम्बर, अनेक प्रकार के कौशेयवस्त्र, खाटिया चारपाय, पर्यङ्क वगैरह बना लेते हैं और इस कर्म्म को अनुचित नहीं मानते हैं। वैसे ही पूर्व समय में सब वर्णों के नर नारिएं सब प्रकार के वस्त्र बुन लिया करते थे।

'ऋषि और मेषलोम से वस्त्र वयन'

प्रत्यर्धिर्यज्ञाना मश्वहयो रथानाम् । ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥ ५ ॥ आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्यच । वासोवायोऽवीना मावासांसि मर्मृजत् ॥६. ऋ० १०।२६॥

ऋषि कौन कौन कार्य्य करते हैं इस का संक्षेप वर्णन है । [ऋषिः] ऋषि [यज्ञानाम्+प्रत्यर्धिः] यज्ञों के फैलाने वाले हैं । [रथानाम्+अश्वहयः] रथ सम्बन्धी अश्व विद्या के ज्ञाता । ऐसे [यः] जो ऋषि हैं [सः] [मनुर्हितः] वे मनुष्य हितकारी होते हैं और [विप्रस्य+यावयत्सखः] मेधावी विद्वानों के दुःखों के नाश करने वाले सखा हैं ॥ ५ ॥ पुनः (आधीषमाणायाः) बच्चा देने वाली भेंडी [शुचायाः] लोमों से देदीप्यमान भेडी और (शुचस्यच) शुद्ध भेड़ का (पतिः) पालक हैं और (अवीनाम्) भेडियों के बालों से (वासोवायः) वस्त्र बुनने वाले हैं और [वासांसि] बुने हुए अनेक वस्त्रों की [आ+मर्मृजत्] परिशोधन करने हारे हैं ।

अवि=भेंड़ भेड़ी । वास=वस्त्र । यहां विस्पष्ट कहा गया है कि लोभ वस्त्र ऋषि लोग निर्माण करते हैं । अनेक ऋचाओं से पता लगता है कि मनुष्यमात्र को बकरी, भेंड़ आदि पशु रखने की आज्ञा है । जब ऋषियों को वस्त्र बुनने की आज्ञा है तब जुलहे को हम क्यों कर घृणित मान सकते हैं ।

'विद्वान् को वस्त्र वयन करना'

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति । यजु० । १९ । ८० ॥

[मनीषिणः] मननशील पुरुष [सीसेन+तन्त्रम्] सीस = सीसा धातु से [तन्त्रम्] अंगद=भूषणविशेष [वयन्ति] बनाते हैं और [कवयः] विद्वान् पुरुष [ऊर्णासूत्रेण] ऊनी सूत से [तन्त्रम्+वयन्ति+मनसा] विचार पूर्वक पट बनाते हैं ।—'तन्त्रं राष्ट्रेच सिद्धान्ते परच्छन्दाप्रधानयोः । अंगदे कुटुम्बकृत्ये

तन्तुवाने परिच्छदे ॥ इति ॥ 'तन्त्र' शब्द अनेकार्थ है। यहां विस्पष्ट कहा है कि मनीषी और कवि लोग परिधेयभूषण और ऊनीवस्त्रवयन करते हैं। वैदिक और आज कल के सिद्धान्त में कितना भेद होगया है।

"जुलहे का व्यवसाय"

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। १०। ५३। ६।

तन्तुम्। तन्वन्। रजसः। भानुम्। अन्विहि। ज्योतिष्मतः। पथः। रक्ष। धिया। कृतान्। अनुल्वणम्। जोगुवाम्। अपः। मनुः। भव। जनय। दैव्यम्। जनम्।

हे मनुष्यो! (रजसः+भानुम्) अनेक रंग के प्रकाशक किरण के समान देदीप्यमान (तन्तुम्+तन्वन्) सूत को बनाते हुए आप (अनु+इहि) पूर्वजों का अनुकरण किया करें और इस प्रकार (धिया+कृतान्) ज्ञान के द्वारा निर्मित [ज्योतिष्मतः पथः] उत्तम पथ अर्थात् वस्त्रादिकनिर्माणकर्म को [रक्ष] रक्षा कीजिये। और [अनुल्वणम्] शान्ति पूर्वक [जोगुवाम्] जोगू = जुलहों के [अपः] कार्य्य को [वयत] करो। इस प्रकार [मनुः+भवः] मननशील मनुष्य बनो और सदा [दैव्यम्+जनम्] उत्तम स्वभाव के मनुष्य को [जनय] उत्पन्न करो।

"अप" नाम कर्म्म का है। [नि० २-१-] 'धी' यह नाम भी कर्म्म का है! "वयत" वेञ् तन्तुसन्ताने 'वे' धातु का प्रयोग बुनाने अर्थ में सदा आता है। इसी हेतु जुलहे को 'तन्तुवाय' कहते हैं, [तन्तुम्+वयतीति] यहां 'जोगू' नाम जुलहे का है॥ इसी शब्द से 'जुलहा' पद निकला है।

'स्त्री और वस्त्र निर्म्माण'

पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्मधीरः। २। ३८। ४

पुनः = पुनः पुनः। समव्यत् समिटती है। वितत+विस्तीर्ण। वयन्ती =

कातती हुए सूत बनाती हुई नारी। मध्या = मध्य। कर्तोः = कर्म्म। न्यधात। रखता है। शक्म = शक्य। धीर।

रात्री [वयन्ती] वस्त्र बुनती हुई नारी के समान [विततम्] विस्तीर्ण आलोक को [पुनः समव्यद्] पुनः पुनः पूर्ववत् समिटती है। और [धीरः] धीर पुरुष [कर्तोः] कर्म्म [शक्म] जो करने योग्य था उस कर्म्म को [मध्या] बीच में ही [न्यधात्] छोड देते हैं। क्योंकि सन्ध्योपासन का समय उपस्थित हुआ। यह सन्ध्याकाल का वर्णन है।

'वयन्ती वस्त्रं वयन्ती नारीव' सायण। इस से सिद्ध है कि स्त्रियां वस्त्र बुनती थीं। वेदों में विविध प्रकार से वर्णन आते हैं। कहीं साक्षात् कहीं परम्परा से। यहां उपमामात्र से दिखलाया गया है कि सब नारी को भी वस्त्र वयन करना वेद विहित है। ऐसी उपमा प्रायः वेद आती रहती है यथा—

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषसानक्ता वय्येव रण्विते तन्तुं ततं संव्ययन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती। २। ३। ६

यहां 'वयी' शब्द का प्रयोग ही कहता है कि स्त्री को कपडा बुनना चाहिये। क्योंकि यह शब्द स्त्री लिङ्ग है।

विवाह पद्धति में स्त्री को वस्त्र देने के समय एक ऋचा पढ़ी जाती है। इस का यही भाव है कि कातना बुनना सीना पिरोना किनारे में झालर आदि लगाने का कार्य्य स्त्रियां करें। वह यह है।

या अकृन्तन्नवयन् याश्चतन्विरे या देवीरन्ताँ अभितो ददन्त। तास्त्वा जरसे संव्ययन्त्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः। अथर्ववेद। १४। १। ४५।

[याः+देवीः] जिन देवियों ने [अकृन्तन्] प्रथम रूई को चरखे में काता है। [अवयन्] पीछे वस्त्र वयन किया है और [याश्च] जिन देवियों ने [तन्विरे] उस वस्त्र में अन्य सूत लगा लगा कर (जैसे कि कपडों पर बेल, बूटे लगाये जाते है) विस्तृत किया है [याः] और जिन्हों ने [अभितःअ-

न्तान्+अददन्त] वस्त्र के चारों कोरों में अन्त अर्थात् झालर आदि दिये हैं [ताः] वे सब देविएं [जरसे] पूर्णायुःप्राप्त्यर्थ । [त्वा+संव्ययन्तु] तुम को कपड़े से ढाकें [आयुष्मति] हे आयुष्मति कन्ये [इदं+वासः] यह वस्त्र [परि+धत्स्व] पहनो।

यह अथर्ववेदी ऋचा क्या उपदेश देती है यह विचारने की बात है। मन्त्र में 'देवी' पद आया है शुभ गुणों से युक्त विदुषी धीरा कुलीना स्त्री को देवी कहते हैं। जब कुलीना स्त्री वस्त्र वयन करती है तो अन्यान्य स्त्री की बात ही क्या रही है विद्वानो! निःसन्देह वेद को त्याग चलने से ही भारत की यह दुर्दशा प्राप्त हुई है।

विवाह पद्धति में इस प्रकार पाठ है यथा—

या अकृन्तन्नवयन् याश्चतन्वत याश्च देवी स्तन्तू नभितोतत- न्थ। ता स्त्वा देवीर्जरसे संव्ययस्वाऽऽयुष्मतीदं परिधत्स्ववासः। अत्र गदाधरकृत भाष्यम्। या देवीः देव्यः इदं वासः अकृन्तन् कर्तितवत्यः। या अवयन् वीतवत्यः वेम् तन्तुसन्ताने ओतवत्य इत्यर्थः। यास्तन्तून् सूत्राणि अतन्वत प्रोतवत्यः तिर्यग् तन्तून् विस्तारितवत्य इत्यर्थः। चकाराद्या ओतान् प्रोतांश्च तन्तूनभित उभयपार्श्वयो रपि ततन्थ तेनुः। तुरीवेमादि व्यापारेण ग्रथित- वत्यः। ताः तत्तत्सामर्थ्यदात्र्यो देव्यः स्वकार्यरूपवादिदं वासः त्वा त्वां जरसे दीर्घकालनिर्दुष्ट जीवनाय संव्ययस्व परिधाप- यन्तु। पुरुषादि व्यत्ययश्छन्दसः। अतो हेनोः आयुष्मति! इदं एतादृशं वासः परिधत्स्व। उत्तरीयत्वेन वृणीष्व॥ पुनः—

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः।
वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात्॥ १४।२।५१॥

अन्त = किनारे के झालर आदि। सिच = छींटें, कपड़े के ऊपर वेल बूटे। ओतु = तिरछे सूत। तन्तु = सूत। वास = वस्त्र। पत्नी = पतिव्रता स्त्री। उत = बुना है। स्योन = सुख। उपस्पृश = स्पर्श॥

(ये+अन्ताः) जो ये अन्त = झालरें हैं । (यावतीः+सिचः) जितनी ये छींटें = वेल बूंटे हैं (ये+ओतवः+ये+च+तन्तवः) जो ये ओतु और तन्तु हैं और (यत्+वासः+पत्नीभिः+उतम्) जिस वस्त्र को कुलीना स्त्रियों ने बुना है (तत्+नः+स्योनम्+उपस्पृशात्) वह सब ही हमारे सुखस्पर्शी होवें अर्थात् सुन्दर और कोमल होवें ।

अब क्या सन्देह हो सकता है ?

'वस्त्रवयन-विद्या-प्रचारार्थ पाठशाला'

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥६।९।२॥

तन्तु=सूत । ओतु = टेढ़े सूत । वयन्ति=बनाते हैं । समर = स्थान । अतमान= चेष्टमान ॥

(अहं+तन्तुम्+न+वि+जानामि) मैं सूत नहीं जानता हूं और (न+ओतुम्) वस्त्र बुनने में जो टेढ़े सूत दिये जाते हैं उन्हें भी मैं नहीं जानता हूं और (यम्) तन्तु और ओतु से जिस पट को (समरे+अतमानाः) अपने २ स्थान में परिश्रम करते हुए मनुष्य (वयन्ति) बुनते हैं उसे भी नहीं जानता हूं इस प्रकार (इह) यहां (कस्य+स्वित्+परः पुत्रः) किसी का चतुर पुत्र (अवरेण+पित्रा) अपने अज्ञानी पिता से (वक्त्वानि+वदाति) वचन कहता है ।

अभिप्राय यह है कि कोई श्रमजीवी पुरुष अपने पिता से पूरी शिक्षा न पाकर कहता है कि मैं वस्त्रनिर्माण विद्या भी नहीं; जानता जीविकोपाय कैसे करूं । इस प्रकार जीविका का सहज उपाय वस्त्र-निर्माण है यह उपदेश इस ऋचा से दियाजाता है । यदि पिता अपने पुत्र को शिक्षा न दे सके तो अन्यत्र भेजकर इस विद्या का अध्ययन अपने पुत्र को करवावे ! इसकी शिक्षा आगे के मन्त्र में दी जाती है ।

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥३॥

(सः+इत्+तन्तु+विजानाति) वही आचार्य्य तन्तु को जानता है (ओतुम्) ओतु को भी जानता है। केवल वह जानता ही नहीं किन्तु (सः) वह (ऋतुथा) प्रत्येक ऋतु में (वक्तानि+ददाति) वस्त्रनिर्माण-सम्बन्धी वक्तृता भी देता है। क्योंकि (यः+ईं+चिकेत) जो ही इस कर्म को जानता है (तत्) वही अमृतस्य) इस अमृत विद्या वा कर्म्म का (गोपाः) रक्षक होता है पुनः (अवः) वह अवश्य रक्षक होता है (परः) परोपकारी चतुर वह अध्यापक (अन्येन) अन्य दूसरे ज्ञान से (पश्यन्) सबको देखता हुआ (चरन्) व्यवहार करता है। अर्थात् इस के लिये पाठशाला बनी हुई है। वहां इस की वक्तृता ऋतु ऋतु में होती है। जो इस विद्या को जानता है। वही अवश्य इसका रक्षक भी होता है। क्योंकि ज्ञान से सब को वह बराबर देखता हुआ इस विद्या को देने के लिये सब के साथ समान व्यवहार रखता है।

इन दो ऋचाओं से पता लगता है कि वस्त्रनिर्माणविद्या कठिन है परन्तु इसकी इतनी आवश्यकता है कि इसके लिये पृथक् पाठशाला होनी चाहिये जिस में अध्यापक इसकी पूरी शिक्षा दे देश में कल्याण का मार्ग खोलें। २८ कोटि मनुष्य इस भारतवर्ष में आज कल विद्यमान हैं। दरिद्र से दरिद्र पुरुष भी वर्ष में दो चार वस्त्र अवश्य खरीदता है। इस विद्या से रहित देश को भाग्यहीन समझना चाहिये। यह व्यवसाय निर्दोष है। सब को करना करवाना उचित है हे विद्वानो ! मैंने अनेक मन्त्र वेद से सुनायेहैं। किसी में क्या इस व्यवसाय की निन्दा है ?। यज्ञ में वस्त्र देने के समय मन्त्र क्यों पढ़े जाते हैं ?। बृहस्पति देवी आदि पद क्यों आए हैं ?। इस सब का यही भाव है कि यह व्यवसाय बड़े बड़े कुलीन पुरुष भी किया करें। क्या आज के लोग ऋषियों से भी बढ़ गए? फिर इस को करते हुए क्यों अपने को नीच मानते हैं अथवा कुलीन पुरुष भी इस को क्यों नहीं आरम्भ करते हैं ?।

चीन देश की महारानी और वस्त्र बुनना।

" चीनी कहते हैं कि कौशाम्बर का बनाना हमारे देश का एक बहुत ही

पुराना उद्यम है। वे यह भी कहते हैं पहिले पहिल किसी महारानी ने कौशाम्बर को काता और उस से कपड़ा विना था। और इसी लिये नवें मास का एक दिन स्थापित हुआ जिस में उसकी पूजा की जाती है और जैसे ऊपर वर्णन हुआ है कि महाराजा खेत में जाके हल जोतता है उसी रीति से महारानी अपनी सहेलियों सहित उस दिन को जाती हैं और तूत की पत्तियों को बटोरती और तन्तु-कीटों को खिलाती और उनके कितने कोषों को खोल कर उन से सूत लपेटती हैं। चीन देश चित्रमाला पृ० ५०

"रथकार, स्वर्णकार, कुम्भकार आदि"

अब मैं आप लोगों को रथकार आदि के विषय में कुछ कहना चाहता हूं काष्ठ, धातु, मृत्तिका और चर्म्म आदि पदार्थों से जो लोग विविध गाड़ी, रथ, भाजन, ज्या, धनुष, वर्म्म, यज्ञ पात्रादि निर्माण करते हैं उनका प्राचीन एक नाम 'तक्षा' है। क्योंकि (तक्षूत्वक्षू तनूकरणे) किसी पदार्थ से काट २ कर वस्तु बनाने वाले का नाम 'तक्षा' है। यद्यपि आज कल तक्षा शब्द की प्रवृत्ति केवल 'बढ़ई' में है। परन्तु प्राचीन काल में लोहकार, स्वर्णकार, कुम्भकार, चर्म्म कार प्रभृति को भी यही नाम दिया जाता था। आगे के वर्णन से यह प्रतीत होगा। आप लोग इस प्रकरण में देखेंगे कि इन श्रमजीवी व्यवसायी रथकार कुम्भकारादिकों की कितनी प्रतिष्ठा वेद में विहित है। इनके लिये धीर, विद्वान् विपश्चित, देव, निपुण, सुन्दर, प्रशंसार्ह, यज्ञिय आदि शब्द आए हैं। इनको ऋषि लोग स्वयं शिक्षा दिया करते हैं। यहां तक एक मन्त्र में (१) इनकी प्रशंसा आई है कि वे ही ऋषि हैं। वे ही शूर हैं। वे ही बाण के चलानेवाले हैं। जिसको वे बचाते हैं वे ही विजयी होते हैं। इत्यादि। क्यों? इसमें क्या सन्देह है कि ये ऋषि हैं। क्योंकि वेदों के मन्त्रों को देख कर ही उन्हों ने अनेक परमोपयोगी युद्ध की सामग्री से लेकर खाने पीने तक के सारे भाजन-वर्तन आविष्कृत किये। नवीन २ वस्तु बना कर दीं। यही तो ऋषियों का आदिसृष्टि में मुख्य

(१) स वाज्यर्वा सऋषि र्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥४।३६।६॥

कार्य्य था। अतः इन श्रमजीवी मनुष्यों का वेदानुकूल बड़ा आदर होना चाहिये। आज कल ये भी स्वयं कुछ गिर गये हैं इस का कारण मैं यही समझता हूं कि ये सभासमाज से जितने ही पृथक् किये गये उतने ही गिरते गये। इनकी बड़ी उन्नति करनी चाहिये। अब ऋचाओं पर ध्यान दीजिये।

'तक्षा का आश्चर्यजनक कार्य'

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥
मण्डल ४। सू० ३६ ॥

(ऋभवः) हे रथबनाने वाले मनुष्यो! आपकाकाम परम प्रशंसनीय है क्योंकि (रथः) आपका बनाया हुआ रथ (रजः+परिवर्तते) आकाश में भ्रमण करता है। वह रथ कैसा है (अनश्वः जातः) विना घोड़े का। पुनः (अनभीशुः) प्रग्रहरहित अर्थात् लगाम रहित (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (त्रिचक्रः) तीन पहिया युक्त ईदृग् रथ आपने तैय्यार किया है इस हेतु (वः) आप लोगों का (देव्यस्य+प्रवाचनम्) दिव्य आश्चर्ययुक्त कर्म्म के प्रख्यात करने वाला (तत्+महत्) वह महान् कर्म्म है (यत्) जिस कर्म्म से (द्याम्+पृथिवीं+पुष्यथ) अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों को पुष्ट करते हैं। अर्थात् आप के बनाए विविध प्रकार के रथ पृथिवी ओ आकाश दोनों में व्यापक हो रहे हैं। इस हेतु आप पूज्य हैं ॥१॥ यहां 'अनश्व' 'अनभीशु' आदि शब्द सूचित करता है कि ऐसे रथ बनाए जा सकते हैं जो आकाश में अच्छे प्रकार चल सकें।

रथनिर्माण करना और यज्ञ में भाग लेना।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया।
ताँऊन्वस्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२॥

(ये+सुचेतसः) जो बढ़ई शुद्ध चित्त हो कर (मनसः परि+ध्यया) मन के ध्यान से (सुवृतम्) सुन्दर गोल (अविह्वरन्तम्) टेढ़ा नहीं किन्तु सीधा

(रथम्+चक्रुः) रथ बनाते हैं (वाजाः+ऋभवः) हे विज्ञानी तक्षाओ ! (तान् +ऊ+वः) उन सब लोगों को (अस्य+सोमस्य+पीतये) इस सोम यज्ञ में खाने पीने के लिये (आवेदयामसि) निमन्त्रण देते हैं ॥२॥

'बृद्ध पिता माता को युवा बनाना'

तदूवो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् । जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३॥

हे (वाजाः+ऋभवः) हे विज्ञानी तक्षाओ ! आप लोग (विभ्वः) विभू=बड़े शक्तिमान् हैं इस हेतु (वः) आप लोगों को (तत्+महित्वनम्) वह माहात्म्य (देवेषु) परम विज्ञानी पुरुषों में (सुप्रवाचनम्+अभवत्) कथन योग्य हुआ । अर्थात् परम विज्ञानी पुरुषों के समाज में भी आप के गुणों की चर्चा होती रहती है । कौन वह कर्म्म है सो कहते हैं । आप के (पितरौ) पिता माता (जिव्री) वृद्ध और (सनाजुरा+सन्ता) अत्यन्त जीर्ण होने पर भी (चरथाय) स्वच्छन्द विचरण करने को (पुनःयुवानौ+तक्षथ) उन को पुनः आप युवा बनाते हैं । (यत्) यह जो आप का कार्य्य है वह प्रशंसनीय है । ३

प्रायः इस वर्णन को सुन कर आप को आश्चर्य लगा होगा कि वृद्ध और जीर्ण पुरुष को कोई युवा कैसे बना सकता है । ठीक है । परन्तु सुनिये यह तक्षा अर्थात् खाती का वर्णन है । ये लोग विविध प्रकार के रथ बनाते हैं जो पृथिवी और आकाश दोनों स्थानों में अच्छे प्रकार चलते हैं । अब आप विचार सकते हैं कि खाती अपने पिता माता को कैसे युवा बनाते हैं । परम वृद्ध होने पर भी युवा पुरुष के समान पृथिवी आकाश में खाती के पिता माता रथ पर चढ़ विचरण करते हैं । प्रत्युत युवा पुरुष से भी बढ़ कर सर्वत्र भ्रमण करते हैं । यह केवल खाती विद्या की प्रशंसा दिखलाई गई है ।

'तक्षा का आश्चर्य्य कार्य्य और चमड़े से गौ बनाना'

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गा मरिणीत धीतिभिः । अथा देवेष्व मृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४॥

हे तक्षाओ ! (एकम्+चमसम्) एक ही पानपात्र को (चतुर्वयम्) चार अवयव वाला (रिचक्र) बनाओ । और जिस की माता मर गई हो ऐसे वत्स (बच्चे) के लिये (धीतिभिः) अपनी बुद्धि से (गाम्+) नूतन गौमाता को (निः—अरिणीत) अच्छे प्रकार बनाओ । (अथ) तब (देवेषु) देवों में (अमृतत्वम्+आनश) अमरत्व को लाभ करो (वाजाः+ऋभवः) हे विज्ञानी खातिओ ! (श्रुष्टी) शीघ्र (वः) आप का (तव्+उक्थ्यम्) वह कर्म्म प्रशंसनीय होवे ।

वर्तन बनाने की किसी विशेष रीति का वर्णन है कि वह पात्र देखनेमें एक प्रतीत हो परन्तु उस में चार हों । अर्थात् एक ही वर्तनको जब चाहें तब दो तीन चार पांच छः सात आठ नौ कार्य्य एकसाथ ले सकें । और चाहें तो उससे एक ही कार्य्य लें । ऐसा वर्तन बनाओ ॥ और चमड़े की माता ऐसी बनाओ कि मृतमातृक बालकों को यह प्रतीत न हो कि यह मेरी माता नहीं है । और उसी माता से उन बालकों को स्तन्यपान भी मिला करे । इत्यादि वस्तु बनाने की शिक्षा यहां पाई जाती है ॥ यहां देखते हैं कि चमड़े का कार्य्य भी तक्षा के ही लिये कहा हैं ।

'तक्षा की प्रशंसा'

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥६॥

(सः+वाजी+अर्वा) वही वेगवान् अश्व है (सः+वचस्यया+ऋषिः) वही स्तुतिसमन्वित ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानी है (सः शूरः+अस्ता) वही अस्त्र फेंकने वाला शूर है (पृतनासु+दुस्तरः) संग्राम भूमि में वही दुस्तर है (सः+रायस्पोषम्+धत्ते) वही धन सम्पत्ति रखता है (सः+सुवीर्य्यम्) वही सुवीर्य्य रखता है (यम्) जिस पुरुष को (वाजाः) ज्ञानी (विभ्वान्) समर्थ और (ऋभवः) काटने में निपुण तक्षागण (आविषुः) रक्षा करते हैं ।

वेद का एक ऐसा नियम देखा जाता है कि जो पुरुष जिस कर्म्म को

करता है वह कर्म्म ही साक्षात् उस में अध्यारोप किया जाता है । जैसे अग्नि से पाक और अस्त्र बनाता है । अतः अग्नि को कहेंगे कि तू पाचक है । तू अस्त्र बनाने वाला है । इत्यादि । इसी प्रकार तक्षा उत्तम उत्तम रथ आकाश पृथिवीपर विना घोडे के चलने वाला बनता है अतः तक्षाऽनुगृहीत पुरुष मानों साक्षात घोडा ही है क्योंकि घोडे के समान दौडता है इत्यादि ।

'तक्षा के लिये धीर, कवि, और विपश्चित् शब्द'

श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चित स्तानूव एना ब्रह्मणा वेदयामसि॥७॥

हे (वाजाः+ऋभवः) विज्ञानी तक्षाओ ! (वः) आप का (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (दर्शतम्) दर्शनीय (पेशः) रूप (अधि+धायि) सर्वत्र प्रसिद्ध है । इस कारण (स्तोमः) यह हमारा स्तव है (तम्+जुजुष्टन) इसे सेविये । आप लोग (धीरासः) धीर (कवयः) कवि और (विपश्चितः) विपश्चित=विद्वान् (हि+स्थः) प्रसिद्ध हैं (तान्+वः) उन प्रसिद्ध आप लोगों को (एना+ब्रह्मणा इस वाणी से (आवेदयामसि) आवेदन करते हैं । निपुण तक्षा की प्रशंसा करनी चाहिये । उस के यश को बढ़ा चढ़ा कर गाना चाहिये जिस से कि वह उत्साहित हो नवीन कला कौशल और शिल्प विद्या निकाला करे । यह इस से उपदेश है ।

एतं वां स्तोम मश्विनावकर्म्मा तक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्य्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः१०।३९।१४

(भृगवः+न+रथम्) जैसे भृगुगण अर्थात् बुद्धिमान् तक्षागण सुन्दर सुगठित रथ प्रस्तुत करते हैं तद्वत् (अश्विनौ) हे अश्विनौ हे राजन् ! तथा राज्ञि ! (वाम्) आप दोनों के निमित्त (एतम्+स्तोमम्) इस स्तोम को (अकर्म) बनाया है (अतक्षाम) अछे प्रकार ग्रथित किया है और (मर्य+न+योषणाम) जैसे विवाह के समय जामाता को देने के हेतु कन्या को भूषणालंकृत करते है और जैसे (तनयम्+सूनुम्+न) वंशवृद्धिकर पुत्र को संस्कृत करते हैं तद्वत्

(रथकाराः) यज्ञ कर्म्म करते हुए हम लोग (नि+अनुशान) आप के लिये यह स्तोत्र संस्कृत करते हैं उसे सुनें । सायण—'रथकारा भृगवः' भृगु का अर्थ रथकार करते हैं । इस से सिद्ध है कि बुद्धिमान् पुरुष का यह कार्य्य है ।

'विद्वान् तक्षा को वाशी और किला वगैरह बनाना'

सतो नूनं कवयः संशिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्व मानशुः ॥
१० । ५३ । १० ।

(कवयः+विद्वांसः) हे मेधावी विद्वानो ! (नूनम्+सतः) निश्चिन्त होकर वाशी नामक अस्त्र शस्त्रों को (संशिशीत) अच्छे प्रकार तीक्ष्ण करें (याभिः-वाशीभिः) जिन वाशियों से आप लोग (अमृताय) अमृत के योग्य होवें (तक्षथ) उस प्रकार इस कार्य्य को सम्पादन करें हे विद्वानों ! (गुह्यानि+पदा) गुह्य निवास स्थानों किला वगैरह को (कर्तन) बनाओ (येन) जिस से (देवासः) आर्य्य लोग (अमृतत्वम्+आनशुः) अमरत्व को प्राप्त होवें । सायण—संशिशीत=अत्यर्थं तीक्ष्णीकुरुत । सतः=सन्तः ।

यहां भी कवि और विद्वान् शब्द तक्षा के लिये आया है । और गुह्य भवन बनाना भी तक्षा ही का कर्तव्य देखते हैं उस से प्रतीत होता है कि जो मकान बनाने वाले स्थपति अर्थात् राज नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी पूर्व समय में तक्षा कहलाते थे ।

'तक्षा को लोहे का परशु और खाने पीने को वर्तन बनाना'

त्वष्टा माया वेदपसा मपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा । शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चा देतशो ब्रह्मणस्पतिः
१० । ५३ । ९

यह [त्वष्टा] बढ़ई=खाती, तखान (१) [मायाः] पात्र निर्म्माण के

(१) तक्षा तु वर्द्धकिस्त्वष्टा रथकारस्तु काष्ठतट् । तक्षा, वर्द्धकि त्वष्टा, रथकार और काष्ठतट् ये पांच नाम खाती के हैं ।

विध कर्म्मों को [वेद] जानता है। इसी हेतु [अपस्तमः] कर्म्म करने वालों में अति प्रशंसनीय है। और अपनी दूकानों पर [शन्तमा] अतिशय सुखकारी [देवपानानि] विद्वान् लोग जिस में खा पी सकें ऐसे [पात्रा] विविध पात्रों को [बिभ्रत्] रखते हुए [नूनम्] निश्चिन्त होकर [परशुम्] 'परशु' नामक शस्त्र को [शिशीते] तीक्ष्ण कर रहा है। वह पात्र कैसा है [स्वायसम्] सु+आयस=सुन्दर लोहे से बना हुआ। [येन] जिस परशु से [एतशः+ब्रह्मणस्पतिः] यह मन्त्रवित् याज्ञिक पुरुष [वृश्चात्] पात्रों को छेदते हैं। सायण=मायाः कर्म्माणि। शिशीते तीक्ष्णयति।

यहां तक्षा के अनेक कर्म्म देखते हैं। थाली, लोटा आदि, देवपानपात्र अर्थात् खाने पीने के पात्र और कुल्हारी, कुदाल, कुठार, वाशी [वसूला] रुखान आदि परशु अर्थात् काटने के विविध लोह निर्मित वस्तुएं बनाने की आज्ञा तक्षा को है। अतः लोहार, कसेरा आदि को भी तक्षा कह सकते हैं।

'तक्ष कर्तृक वस्त्र वयन'

त्वष्टा वासो व्यदधात् शुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्य्यामिव परि धत्तां प्रजया॥
अथर्व० १४। १। ५३॥

(शुभे+कम्) कल्याण के हेतु (बृहस्पतेः) आचार्य्य और (कवीनाम्) इस विद्या में निपुण विद्वानों की (प्रशिषा) उत्तम शिक्षा से (त्वष्टा) खाती (वासः+व्यदधात्) वस्त्र बनाता है। (तेन) उस त्वष्टृकृत वस्त्र से (सूर्य्याम्+इव) उषा के समान (इमाम्+नारीम्) इस परिणीत नारी को (सविता) पुत्रोत्पादक स्वामी और (भगः+च) सेवा करने वाले देवर ये दोनों (प्रजया) प्रजा=सन्तति सहित (परि+धत्ताम्) संवृत=अर्थात् ढांका करें।

भाव इसका यह है कि जैसे आज कल भी किसी किसी कारीगर की वस्तु सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है वैसे ही जिस तन्तुवाय के कपड़े अच्छे सुघर चिकने सुन्दर बनते हो यथाशक्ति यहां से लाकर पत्नी को कपड़ा देवें। इस से लाभ यह है कि उस विद्वान् परिश्रमी तन्तुवाय को लाभ पहुंचने से उसका उत्साह

दिन द्विगुणित होता जायगा और भी उत्साह से विद्वानों की शिक्षाग्रहण कर उस विद्या में तरक्की करता रहेगा इसी हेतु यहां 'बृहस्पति' और 'कवि' दो पद आए हैं। और स्त्री जाति की शोभा भी बढ़ती है।

सविता=सूञ्=प्रसवे। स्वामी। भग=भज सेवायाम्। सेवा करने वाले देवर आदि। यहां वस्त्र उपलक्षणमात्र है प्रत्येक आवश्यकीय और प्रयोजनीय पदार्थ से स्त्री का सत्कार किया करें।

'शिशुक्रीडनक' (खिलौने)

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षु र्मनसा हरी।
शमीभिर्यज्ञ माशत। ऋ० १। २०। २॥

(ये) जो खाती (मनसा) मन से अर्थात् प्रीति से (इन्द्राय) क्रीड़ाशील बच्चों के लिये (वचोयुजा) वाणी युक्त (हरी) दो घोड़े (शमीभिः) शमी नामक लकड़ियों से (ततक्षुः) बनाते हैं। वे खाती [यज्ञम्+आशत] यज्ञ में आवें।

वचोयुक्=वाणी से युक्त। घोड़े का खिलौना ऐसा बनावे कि जो ठीक घोड़े के समान हिन हिनावे। 'हरी' यह द्विवचन पद है। प्रायः गाड़ी में दो २ घोड़े जोते जाते हैं। अतः द्विवचन है। जोड़े से तात्पर्य्य है। ऐसी २ जगह में 'इन्द्र' शब्दार्थ शिशु है " अस्मिन्+रमते " जो खिलौने में रत हो।

'पुनः पूर्वोक्त कर्म्मों की चर्चा'

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। तक्षन् धेनुं सबर्दुधाम्॥३॥
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्ट्यक्रत॥४॥
उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः॥५॥
ऋ० १। २०॥

उन्हों ने राजा रानी के लिये सर्वतोगामी सुखकर रथ निर्माण किया है एवं क्षीर दोग्धी एक गौ बनाया है॥३॥ जिनका विचार सत्य है जो ऋजु हैं ऐसे खातियों ने अपने माता पिता पुनः युवा बनाए॥४॥ विज्ञानी त्वष्टा से निर्मित

नूतन चमस को चार बनाए ॥ ५ ॥ इत्यादि चर्चा १। २०; । १।१११ और ४।३६ इत्यादि सूक्तों में बराबर आती है। ऐसे ऐसे विद्वान् खाती वंशजों का जब से भारत में निरादर होना आरम्भ हुआ तब से ही सारी शिल्प विद्याएं लुप्त हुईं।

'कुम्भ (घड़ा) की चर्चा'

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः॥
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः॥ अथर्व०। १। ६४॥

धन्वनी अर्थात् मरुदेशीय जल। अनूप्य अर्थात् अनूपदेशोद्भव जल, खनित्रिम अर्थात् कूपादिक का जल (जो खोदने से निकले) और नदी तड़ागादि से लाया हुआ कुम्भस्थजल और वर्षा सम्बन्धी जल। ये सब प्रकार के जल सुखदायक होवें।

अपूपपिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ॥ अथर्व० १८।३।६८॥

अपूप के समान मुख वाले घड़े जिन को विद्वान् लोग रखते हैं।

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना।
अ० ४। २४। ७॥

दूध, दही और जल से पूर्ण चार कुम्भ (घड़े) चार भाग कर देता हूं

'कूप की चर्चा'

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम् ॥ अथर्व० ५।३१।८॥

उन अज्ञानी जनों ने जिस मलिनता को कूप में स्थापित किया है जिसको श्मशान में गाड़ा है। या भवन में किया है। उन सबों को मैं साफ करता हूं। अर्थात् कूप का जल बहुत साफ रखना चाहिये। उसमें कपड़े वगैरह धोना नहीं चाहिये। श्मशान को भी साफ रखना चाहिये। घर की सफाई तो आवश्यक है। पुनः—

कूप्याभ्यः स्वाहा । यजुः २२-२५ नमः कूप्याय चावट्यायच । यजु० १६ । ३८ । इत्यादि अनेक स्थल में कूप की चर्चा आई है ।

'चर्म की चर्चा'

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥
अ० १४ । २ । २२ ॥

जिस बल्बज को आप लोगोंने रक्खा है । और जिस चर्म्म को बिछाया है उस पर सुसन्तति वाली कन्या जिस ने पति प्राप्त किया है बैठ जाय ।

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इम मग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥

रोहित चर्म्म के ऊपर बाल्वज को बिछाओ । उस पर बैठ कर यह सुप्रजावती कन्या इस अग्नि को घृतादिक से सत्कार करे । अर्थात् हवन करे ।

आरोह चर्म्मोप सीदाग्नि मेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ॥२४॥

हे नारि ! इस चर्म्म पर आरोहण करो । अग्नि के निकट बैठो । यह अग्नि देव सब विघ्नों का नाश करता है ।

'कम्बल की चर्चा'

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ॥ १४ । २ । ६७ ॥

उत्तम कम्बल के मैल को साफ कर उस पर बैठें ।

आसन्दी (कुर्सी) आदि की चर्चा ॥

यदाऽऽसन्द्या मुपधाने यद्वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रु रास्नाने तां नि दध्मसि ॥१४ । २ । ६५॥

आसन्दी (Cushion) उपधान (Chair) और उपवासन (Canopy) आदि में मैल हो तो विवाह के निमित्त इन सबों को जल में साफ करो ।

सहस्र खंभों से युक्त अट्टालिका [भवन]

राजाना वनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते।२।४१।५।

(राजानौ) राजा तथा अमात्य ये दोनों (अनभिद्रुहा) प्रजाओं से न द्रोह रखते हुए (ध्रुवे) खूब मजबूत (उत्तमे) उत्तम (सहस्रस्थूणे) सहस्रों खंभ वाले (सदसि) सभा भवन में (आसाते) बैठते हैं । राजाच राजाच=राजानौ यह द्विवचन है । अमात्य की भी राजपदवी है । सहस्रस्थूण=स्थूण=स्तम्भ= खंभा । जिस में सहस्रों खंभे हों उसे सहस्रस्थूण कहते हैं । आस उपवेशने । आस=बैठना ।

'प्रस्तर निर्मित शत पुर'

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ।

(दिवः+दासाय) दिव्=द्यूतक्रीडा । दास=उपक्षयिता अर्थात् द्यूतादि व्यसन के निवारक और (दाशुषे) विद्यादि शुभ गुण प्रदायक (इन्द्रः) राजा शिष्यों को पढ़ाने वाले आचार्यों के लिये (अश्मन्मयीनाम्+पुरां शतम्) प्रस्तर निर्मित शतशः नगर (व्यास्यत) बनवा कर देवें । जिसमें सुविधा से ब्रह्मचारी गण शिक्षा पा सकें (व्यास्यत+वि+असु=क्षेपणे (दाश्वान्=दाशृ दाने) इस ऋचा का अर्थ पूर्व में भी किया है । देखिये । उपसर्ग से धातु का अर्थ परिवर्तित भी होजाता है । यहां पर प्रस्तर निर्मित सैकड़ों पुरी का वर्णन है

लोह निर्मित अनेक नगर ।

तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भि रायसीभिर्नि पाहि।७।३।७।

अमित=बहुत । महत्=तेजोयुक्त । आयसी=लोहनिर्मित । अयस्=लोह अयस् से बना हुआ आयस [अग्ने] हे अग्रगामी सेनाध्यक्ष वा महेन्द्र ! आप [आयसीभिः पूर्भिः] अनेक लोह निर्मित नगरों से [नः+नि+पाहि] हमारी रक्षा कीजिये । अर्थात अनेक शहर लोहों के बनवाइये जिसमें शत्रु का डर

किञ्चित् भी न रहे। और न वे नगर किसी प्रकार से भग्न हो सकें। अयस्= नाम सुवर्ण का भी है।

अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये।
पूर्भवा शतभुजिः ॥ ७। १५। १४ ॥

[अध] अब हे अग्रगामी सेनापते। आप [अनाधृष्टः] अप्रधर्षणीय होकर [नः+नृपीतये] हमारे मनुष्यों की रक्षा के लिये [मही] महती [शत-भुजिः] शतगुणा [आयसी+पूः] लोह निर्मित पुरी के समान [भव] हूजिये।

'समुद्र यात्रा'

आज कल कतिपय अज्ञानी जन कहा करते हैं कि समुद्रयात्रा शास्त्र विहित नहीं है ऐसा कह कर देश में अन्धकार फैलाते हैं और अज्ञानता का बीज बो कल्याण का घात करते हैं। मैं पूछता हूं कि समुद्र-यात्रा क्यों नहीं करनी चाहिये। श्री रामचन्द्र समुद्र में सेतु बांधकर लंका गये थे। अनेक राजा सम्पूर्ण पृथिवी के सम्राट् हुए। समुद्र लंघन किये विना सम्पूर्ण पृथिवी का विजय कैसे होसकता है। सप्तद्वीपा वसुमती का राज्य कैसे करते थे। यदि कहो कि इसका जल खाड़ होने से लोग मरजाते हैं तो यह कहना उचित नहीं। आज समुद्र में सैकड़ों जहाज चल रहे हैं। पानी को पृथिवी बना रक्खा है। वे लोग कैसे जीते हैं। ऐ मनुष्यो! परिश्रमी और शूर वीर बनो। समुद्र से मत डरो। यह तुम्हारा बड़ा धन है। यह तुम्हें लाखों को रोटी देगा। तुम्हें पुकार रहा है। आओ मुझसे धन लो। क्यों नहीं देखते हो। देखो वेद भी आज्ञा देते हैं। यथा—

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥
१। ११६। ३।

तुग्र=उपद्रुत, हत। उग्र=व्यापारशील पुरुष। ह=निश्चय। अश्वी=रात और दिन। उदमेघ=समुद्र। रयि=धन। न=जैसे। कः चित=कोई। ममृवा-

त्=मुमूर्षु=मरने वाला । अवाहाः=सागता है । अन्तरिक्षमुद्=जल के ऊपर ऊपर चलने वाली । अपोदका=जिस में जल प्रविष्ट नहीं हुआ है ।

(तुग्रः+कश्चित्) रोगादिकों से उपद्रुत कोई (ममृवान्) मुमूर्षु पुरुष (रयिम्+न) जैसे धन सागता है वैसे ही (तुग्रः) अन्यान्य राजाओं से उपद्रुत कोई राजा (ह) निश्चय कर (भुज्युम्) पालन में समर्थ अपने पुत्र वा सेनाध्यक्षक को विजयार्थ (उदमेघे) समुद्र में (अवाहाः) सागता है अर्थात् समुद्र की यात्रा से उन दुष्टों को दण्ड देने के लिये भेजता है । (तम्) उस सेनाध्यक्ष को सेना सहित (अश्विनौ) रात दिन अर्थात् रात दिन कार्य्य करने वाले मल्लाह लोग (नौभिः+ऊहथुः) सहस्रों नौकाओं से पहुंचाते हैं । नौकाएं कैसी हैं (आत्मन्वतीभिः) आत्मवान् अर्थात् अतिप्रयत्न शील पुरुषों से युक्त । पुनः (अन्तरिक्ष प्रुद्भिः) अतिस्वच्छ होने के कारण जल के ऊपर २ चलने वाली । और (अपोदकाभिः) अच्छी बनावट होने के कारण जिस के भीतर जल नहीं जा सकता है ! ऐसी । अश्विनौ=रात दिन (निरुक्त ६ । १) जैसे 'मंच चिल्लाता है' कहने से मंचस्थ पुरुष का ग्रहण होता है । वैसे ही रात दिन से रात दिन कार्य्य करने वाले पुरुषों का ग्रहण है । (अवाहाः) ओहाक् सागे । ममृवान् मृङ् प्राणत्यागे अन्तरिक्षप्रुत=प्रुङ्गतौ ।

तिस्रः पक्षस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वनार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः ॥१।११६।४

(तिस्रः+पक्षः) तीन पक्ष (त्रिः+अह) तीन दिन में (अतिव्रजद्भिः) अत्यन्त गमनशील (पतङ्गैः) नौकाओं से (नासत्या) रात दिन परिश्रमी कैवर्तगण (भुजुम्+ऊहथुः) जगत्पालक सेनाध्यक्ष को तीर पर लेजाते हैं । और वहां से (शतपद्भिः) सौ पैर वाले अर्थात् शतचक्रयुक्त (षडश्वैः) छः घोडों से संयुक्त (त्रिभिः+रथैः) तीन रथों से (आर्द्रस्य+समुद्रस्य) आर्द्र समुद्र के (धन्वन्+पारे) जल वर्जित पार में पहुंचाते है ।

अनारम्भणे तदवीरयेथा मनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥५॥

हे [अश्विनौ] रात दिन परिश्रम शील पुरुषो ? आप लोगों ने [समुद्रे] समुद्र में [तत्+अवीरयेथाम्] उस कार्य्य को बड़ी वीरता के साथ किया है अतः आप सब धन्यवादार्थ हैं । समुद्र कैसा है [अनारम्भणे] आलम्बन रहित [अनास्थाने] आस्थान=रहने की जगह, उस से शून्य पुनः [अग्रभणे] हाथ से ग्रहण करने के लिये वृक्षादि शाखा से भी रहित । कौन वह कर्म्म है सो कहते है । [यत्] जो [शतारित्राम्] सैकड़ों अरित्रों से युक्त [नावम्+आतस्थिवासम्] नौका के ऊपर अपनी सेना सहित स्थिर पूर्वक बैठे हुए [भुज्युम्] सेनाध्यक्ष को [अस्तम्] अपने गृह [ऊहथुः] आपने पहुंचाया । यह प्रशंसनीय कार्य्य आप लोगों का है ।

आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ७।८८।३॥

यहां समुद्र के बीच की क्रीड़ा का वर्णन है । सामुद्रिक जहाज के साथ साथ छोटी छोटी नौकाएं भी लगी रहती हैं । जब खेल करने वा मन बहलाने की इच्छा होती है तब उस नौका पर चढ़कर विविध जलक्रीड़ा करते हैं । एक विषय यहां स्मरण रखना चाहिये कि जैसे 'देवदत्त यज्ञदत्त' काल्पनिक नाम आते हैं वैसे ही वर्णन के लिये वेद में यौगिक वरुण, इन्द्र, वसिष्ठ, अत्रि आदि नाम आते हैं । क्योंकि उदाहरण के साथ वर्णन करने से बोध होता है । कल्पना करो कि समुद्र में कई एक मनुष्यों की क्रीड़ा वर्णन करनी है । एक उस में कहता है मुझे बड़ा आनन्द आया । दूसरा कहता है कि आओ मेरी नौका पर चढ़ो । तीसरा कहता है कि तू डूब रहा है तेरी मैं रक्षा करता हूं इत्यादि । जैसा मनुष्य का स्वभाव है । वेद भी ठीक वैसा ही निरूपण करता है । ऐसी जगह में नाम की कल्पना होती है । यहां यह विषय नहीं कि मैं इस को विस्तार से दिखलाऊं परन्तु आप यहां इतना समझें कि वसिष्ठ वरुणादि यौगिक काल्पनिक नाम से वेद में वर्णन है । इस से कोई इतिहास नहीं सिद्ध होता है । इस में मीमांसा शास्त्र का प्रमाण देखिये ।

कोई कहता है कि (यद्) जब मैं (वरुणश्च) और मेरा साथी वरुण (नावम्+आरुहाव) दोनों नौका पर आरूढ़ होते हैं और (यद्) जब

समुद्रम्+मध्यम्) समुद्र के बीच (प्र+ईरयाव) नौका को ले जाते हैं और (यद्+अपां+अधि) जब पानी के ऊपर (स्नुभिः+चराव) चलती हुई अन्यान्य नौकाओं के साथ चलते हैं तब उस समय में (प्रेङ्ख) नौकारूप दोला के ऊपर तरङ्गों से ऊंचे नीचे जाते हुए हम दोनों (शुभे+कम्) सुख पूर्वक (प्र+ईङ्खयावहे) बड़ी २ लीला देखते हैं ।

जिन्हों ने सामुद्रिक यात्रा की है उन्हें मालूम है कि कैसे नौका ऊपर नीचे जाती है । हिंडोले से भी बढ़कर आनन्द प्रतीत होता है । बहुत वाक्य उद्धृत कर सुनाने का प्रयोजन नहीं । आप को मालूम होगया कि वेद स्वयं समुद्रयात्रा के लिये आज्ञा देते हैं फिर इस को कौन काट सकता है । अतः समुद्रयात्रा-निवारक अज्ञ हैं इस में सन्देह नहीं । इसी हेतु उनकी बात अमाननीय है ।

वाणिज्य की चर्चा ।

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः । यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग् वङ्कुरापा पुरीषम् ॥५।४५।६॥

[सखायः] हे समान-कर्म्म-साधक मित्रो ! [एत] आओ । आकर [धियम्+कृणवाम] कर्म्म, व्यापार, उद्यम, करें [या+माता] जो उद्योग माता है । अर्थात् माता के समान सुख पहुंचाने वाला है । [यया+मनुः] जिस धी से मनन शील पुरुष [विशिशिप्रम्] हनुरहित शत्रु को [जिगाय] जीतते हैं और [यया+वङ्कुः+वणिक्] जिस से अभिलाषी उत्कण्ठावान् वणिक्=बनिया [पुरीषम्] उदक [आप] प्राप्त करते हैं । कौन कर्म्म वा उद्यम करें सो कहते हैं । [गोः+व्रजम्] गौ के निमित्त गोष्ठ [अप+ऋणुत] घेरें । ....

धी=अपः । अप्नः । दंसः । वेषः । वेपः । विष्टी । व्रत । कर्वर ...... धी । शची । शमी, शिमी, शक्ति, शिल्प इत्यादि २६ नाम कर्म्म के हैं निघण्टु २ । १ । अतः वेदोंमें 'धी' शब्दार्थ प्रायः 'कर्म्म' होता है । पुरीष=अर्णाः । क्षोदः । क्षद्म...... घृत, मधु, पुरीष आदि एक शत नाम जल के हैं निघं० १ । १२ । सायण भी 'पुरीषं पूरक मुदकम्' जल ही अर्थ करते हैं । "वणिक उदक

प्राप्त करता है" इस का भाव यह है कि अपने उद्योग से पृथिवी के अभ्यन्तर से खोद कर पानी निकलता है अथवा जहां २ नदी वा समुद्र है वहां २ जाकर अपने विक्रेय वस्तु को इधर उधर भेजता है। इत्यादि। 'गौप्रधान धन' है अतः इस की प्रशंसा की गई है।

वाणिज्य के निमित्त राजरक्षा।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्। कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभि रू षु ऊतिभि रश्विनाऽऽगतम् ॥ १। ११२। ११ ॥

[अश्विना] हे राजन् और सेनाध्यक्ष ! आप दोनों [सुदानू] प्रत्येक प्रकार के सहायता रूप दान देने वाले हैं आप दोनों ने [याभिः] जिन विविध रक्षाओं से [दीर्घश्रवसे] दिग्दिगन्तव्याप्त यशस्वी [औशिजाय+वणिजे] इच्छा पुत्र वणिक् के लिये। [मधुकोशः+अक्षरत्] मधुकोश बरसाया है [याभिः] जिन से [स्तोतारम्+कक्षीवन्तम्] स्तुति करने वाले कक्षीवान् अर्थात् 'सार्थ' को [आवतम्] रक्षा की है [ताभिः+ऊ+सु] उसी रक्षाओं से [आगतम्] मेरे निकट भी आवें।

औशिज='वश' कांतौ। इच्छार्थक 'वश' धातुसे 'उशिक्' बनताहै। अर्थात् इच्छा। उशिजः पुत्र औशिजः। इच्छापुत्र को 'औशिज' कहते हैं। जो वणिक् वास्तव में इच्छापुत्र है उस का कोश [खजाना] निःसन्देह मधुमय रहता है। कक्षीवान्=जो एक प्रयोजन के लिये मिल मिल कर व्यापार करते हैं उन्हें 'कक्षीवान्' वा 'सार्थ' कहते हैं। राजा और सेनाध्यक्ष के उद्योग से प्रजाओं की परमवृद्धि होती रहती है। वैश्यों के लिये अनेक स्थल में कहा गया है कि ये लोग कई मनुष्य मिल २ कर वाणिज्य करें। आगे वैश्य प्रकरण में सूचित करूंगा। इसी हेतु यहां 'कक्षीवान्' शब्द का प्रयोग है। शोक की बात यह है कि आज कल के भाष्यकारों ने समस्त वैदिक मन्त्रों को केवल याज्ञिक कर्म्म में लगा कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया है।

मल्लाह का पेशा।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥
॥ १० । ५३ । ८ ॥

सखायः=हे मित्रो ! अश्मन्वती+रीयते=नदी चल रही है । संरभध्वम्=कार्य्य आरम्भ करो । उत्तिष्ठत=उठो । प्रतरत=नदी में तैरो । अत्र=इस नदी में ये+अशेवाः=जो असुखकारी पदार्थ । असन्=हैं । उन्हे । जहाम=छोड़ दें और जो । शिवान्+वाजान्=जो सुखकारी पदार्थ हैं उन्हे लाने के लिये । वयम्+अभि+उत्तरेम । हम सब मिल कर चारों तरफ पार उतरें । सायण=रीयते गच्छति । री गतिरेषणयोः । अशेवाः शेवमिति सुखनाम ये असुखभूताः । अश्मन्वती=नदी ।

दिव्य नौका की चर्चा।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्म्माण मदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥
यजुः २१ । ६ ॥

हम लोग [स्वस्तये] कल्याणार्थ [दैवीम्+नावम्] दिव्य नौका पर [आ रुहेम] चढ़ें । कैसी नौका है [सुत्रामाणम्] अच्छे प्रकार से रक्षा करने हारी [पृथिवीम्] बहुत विशाल [द्याम्] जिस में बहुत प्रकाश और अवकाश=जगह है [अनेहसम्] जिस में किसी प्रकार का खतरा नहीं है [सुशर्म्माणम्] जिसके अभ्यन्तर मकान बने हुए हैं । [अदितिम्] अखण्डनीय [सुप्रणीतिम्] सुन्दर चलने वाली [स्वरित्राम्] अच्छी डांड़ों [चप्पे] से युक्त [अनागसम्] दोष रहित [अस्रवन्तीम्] छिद्र रहित । ऐसी नौका है । इस हेतु यह दैवी है । और इसपर चढ़ कर यदि व्यापार के लिये हम लोग प्रस्थान करें तो टूटने डूबने आदि का भय नहीं हो सकता ।

सुत्रामा=सुष्ठुत्रायते रक्षति सुत्रामा । सुशर्म्मा=शर्मा=गृह । स्वरित्र=सु+अरित्र=डांड़ । पुनः—

शतारित्रा=१०० डांड़ [चप्पा] युक्त नौका ।

सुनाव मारुहेयमस्रवंती मनागसम् ।
शतारित्रां स्वस्तये ॥ यजुः । २१ । ७ ॥

मैं (सु+नावम्) सुन्दर नौका पर (आ+रुहेयम्) चढूं । कैसी नौका है (अस्रवन्ती) छिद्र रहित (अनागसम्) दोष रहित (शतारित्राम्) १०० शत संख्यक अरित्र अर्थात् डांड़ों=चप्पों से युक्त । किस लिये (स्वस्तये) व्यापारादि कल्याण साधन के लिये ॥ ७ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवा कुष्ठ मवन्वत ॥ अथर्व ५ । ४ । ४ ॥
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययी रासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५॥

हिरण्य नाम सोने और लोहे दोनों का है । 'कुष्ठ' नाम एक जड़ी का है । उसे कुट वा कुटकी कहते हैं यह बहुत लाभ दायक जड़ी (Plant) है । इस की चर्चा अथर्व में अधिक है । समुद्र में हिरण्यबन्धनयुक्त और हिरण्यरचित नौका जारही है । अथवा यह विमान का वर्णन है । आकाश में सुवर्ण रचित नौका रूप विमान जा रहा है । जिस के ऊपर देव अर्थात् वैद्यगण अमृत का पुष्प कुष्ठ नामक औषध लाते हैं ॥ ४ ॥

जिन नौकाओं में मार्ग भी हिरण्य रचित है । अरित्र डांड़ (Oars) भी हिरण्यमय है । नौकाएं (Ship) भी सुवर्ण मय है । जिनसे कुष्ठ को लाते हैं । (१)

(१) नोट—कुष्ठ औषध का वर्णन इस प्रकार अथर्ववेद में है ।

यो गिरिष्व जायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठे हि तक्मनाशन तक्मानं नाशयन्नितः ॥ १ ॥

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौ रिव बन्धनात् । अथर्व० ३।६।७॥

बन्धन रहित नौका के समान प्रवाह के ऊपर २ वे तैरें ।

इस प्रकार 'नाविक' का भी व्यवसाय बहुत देखते हैं । आज कल नौका चलाने वाले 'कैवर्त' 'मल्लाह' धीवर वगैरह भी निकृष्ट माने जाते हैं । ये लोग नदियों से मछली बहुधा निकाला करते हैं । अतः इन को 'मल्लुआ' भी कहते हैं । विहार बंगाल में ये अधिक हैं । इसी नौका के ऊपर पूर्व समय वाणिज्य निर्भर था अब भी है । आज भी जहाज के ऊपर सहस्रों पदार्थ एक द्वीप से दूसरे द्वीप में जाते हैं । प्रथम यह व्यवसाय भी आर्य्यों के हाथ में था तब तक उसकी बड़ी उन्नति भी रही । १०० सौ सौ जिसमें डांड़ हों । जो लोहे और सोने से बनाई जाती हों । और जब विलक्षण विलक्षण दैवी नौकाएं रचित हों । जब तक लोगों में पूर्णतया इसकी चाह न हो और इससे अन्यन्त लाभ न होता हो तब तक सुवर्ण आदिक नौकाएं नहीं बनसकती हैं । और न वेद में ऐसी आज्ञा ही हो सकती है ॥ परन्तु जब इस व्यवसाय से मुख मोड़ और गमार अज्ञानी के हाथ में दे यहां के लोग इससे घृणा करने लगे तब ही जानो इन का शिर फूटा और ये भिखमंगे हुए । कैसी अज्ञानता छागई है कि प्रत्येक व्यवसा-यात्मिका लक्ष्मी को लात मार कर इन्हों ने देश से निकाला ।

सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि ।
धनैरपि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम् ॥ २ ॥
उदङ्जातो हिमवतः स प्राच्यां नीयते जनम् ।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि विभेजिरे ॥ ३ ॥

जो 'कुष्ठ' नाम की जड़ी पर्वतों पर होती है । सब पौधे में जो अति बलवान होती है । जो ज्वर नाशक है । हिममय प्रदेश के ऊपर वा परे पर्वत के ऊपर होती है । जो इस को ज्वर नाशक जानते है वे धन के लिये वेचते हैं । जो प्रायः हिमप्रदेश के उत्तर भाग में हुआ करती है । जो प्राची दिशा के लोग के निकट प्रापित होती है । इस के लोग अनेक गुण गाते है । इत्यादि अथर्ववेद में इस महौषधि का वर्णन है ।
कुष्ठ=a medicinal plant, costus speciosus or aradicus,

मनुष्यो ! पुनः वैदिक आज्ञा पर चलो और उसी उत्साह से सुवर्णमयी नौका बनाओ ।

नापित (बारबर) का व्यवसाय

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ अथर्व० ८ । २ । १२ ॥

हे नापित ! [यत्] जब [वप्ता] तू केशों के छेदन करने वाले हो कर [मर्चयता] व्यापार वाली [सुतेजसा] शोभनतेजो युक्त [क्षुरेण] छुरी से [केशश्मश्रु] शिर और मुख के रोमों को [वपसि] काटता है उस समय [मुखम्+शुभम्] मुख को शुभ बना [नः+आयुः+मा+प्र मोषीः] हमारे आयु को नष्ट मत कर । सायण=मर्चयता व्यापारयता ।

स्वर्णकार और माल्लाकार का व्यवसाय

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो ॥
व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः । ८ । ४७ । १५

[दिवः+दुहितः] सूर्य्य की कन्या के समान अर्थात् उषा के समान सब को सुख पहुंचाने वाली हे युवती ब्रह्मचारिणी [निष्कम्+वा+कृण्वते] कनक आदि धातु के निष्क अर्थात् कण्ठ भूषण बनाने वाला स्वर्णकार [वा+घ+स्रजम्] और माला बनाने वाले माली के निमित्त जो आपने [दुःस्वप्न्यम्] दुष्ट स्वप्न देखा है अर्थात् जो आप उस से विवाह करना चाहती हैं [सर्वम्] इस सब विषय को [आप्त्ये+त्रिते] तीन आप्त पुरुषों से युक्त सभा में निर्णयार्थ [परि+दद्मसि] पेश करता हूं [वः] आप सभाध्यक्षों की [ऊतयः] रक्षाएं [अनेहसः] निष्पाप होवें, निश्चय ही निष्पाप होवें ।

'लोहकार का व्यवसाय और भस्त्रायन्त्र'

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः । यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरि यथा ॥ ५ । ९ । ५ ॥

[अध+स्म] और [यस्य+अर्चयः] जिस अग्नि की ज्वाला [धूमिनः-सम्यक्+संयन्ति] धूम युक्त हो सर्वत्र विस्तृत होती है । इस प्रकार सर्वत्र फैल कर [यद्+ई+त्रितः] जब तीनों स्थान में व्याप्त हो जाती है तब [दिवि+उप+धमति] आकाश में जाकर बहुत अपने को बढ़ाती है । इसमें उपमा देते हैं [ध्माता+इव] जैसे कर्म्मार=लोहकार भस्त्राऽऽदि यन्त्र से [उप+धमति] अग्नि को धौंक कर बढ़ाता है । और [यथा] जैसे [ध्मातरि] ध्माता=लोहकार के निकट ध्मायमान होने पर अग्नि [शिशीते] अपने को स्वयं तीक्ष्ण करता है । यन्ति इण=गतौ । धमति=ध्माशब्दाग्निसंयोगयोः । शिशीते शोतनूकरणे ।

'एक ही मन्त्र में अनेक धातुओं के नाम'

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यञ्च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपुच मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ यजुः १८ । १३ ॥

हे विद्वानो ! इस प्रकार आप देखते हैं कि मनुष्य के सुखकारी सब ही व्यवसाय की आज्ञा वेद में पाई जाती है । सैकड़ों यज्ञपात्र सैकड़ों आयुध अस्त्र शस्त्र सैकड़ों खाने पीने के पात्र इत्यादि प्रयोजनीय सब ही पदार्थ वेद में पाये जाते है । मुझे यहां केवल आप लोगों को यह सूचित करना है कि जो लोग यह कहते हैं कि वैदिक समय में इतना झंझट नहीं था वेद तो केवल यज्ञ ही बतलाता है इस हेतु जाति पांति का उस समय बखेड़ा नहीं था वेद का इस से क्या प्रयोजन इत्यादि । परन्तु आप देखते हैं कि मनुष्य जीवन के हेतु सब व्यवसाय की चर्चा है । किसी व्यवसायी की निन्दा नहीं । प्रत्युत बड़ी प्रशंसा है । प्रत्येक व्यवसाय-कविसाध्य विद्वत्कर्तव्य कहा गया है । और इन कामों के करने वाले बहुत उच्च समझे जाते थे । अतः वैसे कहने वालों की भूल है आगे अब कुछ पोष्य पशु के बारे में भी कथ्य है । सो सुनिये ।

अथ पोष्य पशु वर्णन प्रकरण ।

वेद में गोपशु की प्रशंसा ।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन् सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ।६।२८।१

[गावः+आ+अग्मन्] मेरे गृह में गायें आवें । [उत+भद्रम्+अक्रन्] और शुभ करें [गोष्ठे+सीदन्तु] गोष्ठ में बैठें [अस्मे+रणयन्तु] हमारे बीच रत होवें अथवा अपने दुग्ध से हमें वीर बनावें । [इह] यहां [पुरुरूपाः+प्रजावतीः+स्युः] विविध वर्ण की गायें प्रजापती होवें [इन्द्राय] यज्ञ के लिये [पूर्वीः+उषसः] पूर्व उषामें अर्थात् प्रातःकाल [दुहानाः] दूध देने वाली होवें ।

गावो भगो गाव इन्द्रं मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ।५

(मे) मेरी (गावः) गौ ही (भगः) धन है (गावः इन्द्रः+अच्छान्) गौही ऐश्वर्य वा इन्द्र है (प्रथमस्य+सोमस्य+भक्षः+गावः) प्रथम सोमरस का भक्ष गौ ही है। अर्थात् सोमरस में प्रथम घृत ही मिलाया जाता है । (जनासः) हे मनुष्यो ! (याः गावः) ये जो गौवें हैं (सः) वे गौवें ही (इन्द्रः) इन्द्र हैं । (इन्द्रम् चित) इसी इन्द्र को (हृदा+मनसा×इत्) श्रद्धायुक्त मनसे (इच्छामि) इच्छा करता हूं ।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ।६।

(यूयं गावः+मेदयथा) हे गोवो ! आप वृद्धि करें । (कृशम्+चित) कृशभी (अश्रीरम्+चित्) अमंगल भी शरीर को (सुप्रतीकम्+कृणुथ) दृढाङ्ग बनावें । दूध के कृश स्थूल और कुरूप सुन्दर हो जाता है (गृह०) गृह को भद्र करें (भद्रवाचः) हे मङ्गल ध्वनि गावो (वः×बृहत×वयः) तुम्हारा महान् यश (सभासु+उच्यते) सभा में वर्णित होता है ६। यह सम्पूर्ण सूक्त गोवर्णन परक है । देखिये ।

गौ पशु चारण

आ निवर्त निवर्तय पुनर्नइन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ १० । १९ । ६ ।

हे भगवन् ! आप मेरे गृह में आवें । प्रत्येक कार्य में सहायता करें । बार-म्बार गायें देवें । जीवनप्रद गौवों से विविध भोगों को आपकी कृपा से भोगें ।

ऋग्वेद १० दशम मण्डल ऊनविंश १९ सूक्त सम्पूर्ण गौ के विषय में वर्णित है । यहां गो-चारणादि का वर्णन है पुनः

अवध्या गौ ।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गा मनागा मादितिं वधिष्ठ ।
८ । १०१ । १५ ॥

स्वयं भगवान् कहते हैं । (चिकितुषे+जनाय+प्रवोचम) चेतन पुरुष से अर्थात् समझदार जन से मैं कहता हूं कि (अनागाम्) निरपराधी (अदि-तिम्) अहिंसनीय पृथिवी के सदृश (गाम्) गौ को (मा+ वधिष्ठ) मत हनन करो ।

इस प्रकार देखते हैं कि गोधन की अतिप्रशंसा है । यजमान का नाम ही 'गोपति' है । यजुर्वेद की प्रथम ही कण्डिका में गौ की प्रशंसा आई है । और अघ्न्या कहा है । 'गोत्र' यह शब्द ही सूचित करता है कि ऋषि गोरक्षा पर बहुत ही तत्पर थे ।

ऋषि कर्तृक गो-पोषण ।

प्राचीन काल में ऋषि, आचार्य, अध्यापक, गुरु प्रभृति सबही गौवों को अपने २ गृह पर पालन पोषण करते थे इसकी चर्चा सर्वत्र पाई जाती है ।

छान्दोग्योपनिषद् चतुर्थ प्रपाठक में लिखा है कि हारिद्रुमत गौतम ऋषि को ४०० सौ तो दुर्बल गौएं थीं । और मोटी ताज़ी कितनी थीं उस का कुछ

हिसाब ही नहीं और उन के शिष्य सत्यकाम जाबाल उन कृशा गौवों को चराया करते थे। (१) जानश्रुति पौत्रायणने १०० एक सहस्र गौवें विद्याप्राप्ति के हेतु रैक मुनि को दी थीं। (२) बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है वैदेह जनक महाराज ने ब्रह्मिष्ठ पुरुष को देनेके लिये सुवर्णादि से सुभूषित कर १००० एक सहस्र गौवें एकट्ठी की थीं (३) और कई स्थल में याज्ञवल्क्य ऋषि से जनक महाराज ने कहा है कि मैं आप को एक १००० सहस्र गौएं देता हूं (४) इत्यादि गोवों की चर्चा ब्राह्मण और उपनिषदों में बहुत आती है।

'गौ के कारण वसिष्ठ और विश्वामित्र का युद्ध'

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ५२ अध्याय से कथा चलती है कि वसिष्ठ के आश्रम में एक समय विश्वामित्र आए। यथा योग्य सत्कृत होने पर चलने के समय विश्वामित्र महाराज ने ऋषि वसिष्ठ से शबला गौ मांगी और कहा कि इस के बदले में आप को बहुत से हाथी घोड़े रथ आदि पदार्थ देता हूं। इस रत्न को मुझे दीजिये। वसिष्ठ ने नहीं दी। इसी कारण परस्पर महा युद्ध हुआ (१) अन्यान्य पुराणों में भी इस का वर्णन आता है।

महाभारत आदिपर्व ३ तृतीयाध्याय में लिखा है कि (२) आयोद-धौम्य

---

(१) तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाच। इमाः सोम्यानुव्रज। छान्दोग्य० ४। ३॥

(२) इदं सहस्रं गवाम्॥ छान्दोग्य ४। ३॥

(३) स ह गवां सहस्रमवरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः श्रृङ्गयोराबद्धा बभूवुः। बृहदारण्यक उ० ३। १।

(४) सोऽहं भगवते सहस्रं ददामि। ४। २॥

(१) गवां शतसहस्रेण दीयतां शबला मम। रत्नं हि भगवन्नेतद् रत्नहारी च पार्थिवः। ९। ददामि कुञ्जराणां ते सहस्राणि चतुर्दश। हैरण्यानां रथानां च श्वेताश्वानां चतुर्युजाम्। १८। इत्यादि बालकाण्ड॥ ५३॥

तं चोपाध्यायः प्रेषयामास वत्सोपमन्यो गा रक्षस्वेति। इत्यादि।

आचार्य के निकट बहुत गौएं थीं। अपने एक शिष्य उपमन्यु को कहा कि हे उपमन्यो! तुम गौओं को चराया करो। वह वैसा ही करने लगा। एकदिन उस शिष्य को मोटा ताज़ा देख कहा कि हे उपमन्यो! तुम अपनी जीविका कैसे करते तुम बड़े पीवान् (मोटे) दीखते हो। भिक्षाकर मैं भोजन करता हूं। शिष्य ने कहा। मुझे बिना दिए हुए भिक्षा से जीविका कैसे करते हो। अब से ऐसा मत करना (गुरु ने कहा) तब उस ने भिक्षा मांग गुरु के सामने रखदी। गुरु ने सब ही भिक्षा रखली। पुनः उसे पीवान् देख गुरु ने कहा कि तुम फिर भी पूर्ववत् ही स्थूल हो, कैसे खाते पीते हो। उस ने कहा कि आपको निवेदन करके मैं पुनः भिक्षा मांग लेता हूं। गुरु ने उस को भी निषेध किया। इस प्रकार यहां गुरु और शिष्य की भक्ति का वर्णन है। इत्यादि कथा से सिद्ध है कि पहले ऋषि आदिक भी गाएं रखते थे।

महाभारत विराटपर्व में गोहरण कथा सूचित करती है कि राजा भी बहुत गौएं रखते थे और राजपुत्र भी कभी कभी गोचारण किया करते थे। गुरु वसिष्ठ की गौवों को सूर्य्यवंशी राजपुत्र चराया करते थे यह वार्ता श्रीमद् भागवत नवमस्कन्ध में आती हैं (१) श्रीकृष्णजी की कथाको सब जानते ही हैं।

इस वर्णन से मेरा अभिप्राय यह है कि जो लोग कहते हैं कि गोपालन केवल वैश्यों का कर्म्म है। सो सर्वथा वेद-शास्त्र-विरुद्ध है। और आज कल गोपालक अहीर जाति को लोगों ने इसी हेतु 'शूद्र' बना रखा है यह भी शास्त्र विरुद्ध वार्ता है। गोपालक आभीर 'द्विज' हैं और इन के यज्ञोपवीत आदि कर्म्म होने चाहिये। इति।

'गौ आदि पशुओं के लिये प्रार्थना'

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्।
सुखम्मेषाय मेष्यै॥ यजुः ३। ५९

एक ऋषि कहते हैं कि हे परमात्मन्! आप [भेषजम्+असि] सर्वोपद्रव

(१) पृषध्रस्तु मनोः पुत्रः गोपालो गुरुणा कृतः।

निवारक औषध के समान हैं इस हेतु हमारे [गवे+अश्वाय] गौ और अश्व के लिये और [पुरुषाय] मनुष्य के लिये [भेषजम्] सर्वव्याधिनिवारक औषध देवें। [मेषाय+मेष्यै] मेष और मेषी=भेंड, मेंढी के लिये [सुखम्] सुख देवें।

यह मन्त्र शिक्षा देता है कि सब को गौ, बैल, मेष और मेषी रखने चाहियें।

'घोड़े ऊंट आदि'

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता। दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥ ऋ० ८।४६।२२ ॥

षष्टिम्। सहस्रा। अश्व्यस्य। अयुता। असनम्। उष्ट्राणाम्। विंशतिम्। शता। दश। श्यावीनाम्। शता। दश। त्रिअरुषीणाम्। दश। गवाम्। सहस्रा॥

कोई ऋषि कहते हैं कि मैंने (अश्व्यस्य) अश्व सम्बन्धी धन (षष्टिम्+सहस्रा+अयुता) ६००० साठ सहस्र अयुत (असनम्) प्राप्त किये हैं। और (उष्ट्राणाम्+विंशतिम्+शता) २००० बीससौ उष्ट्र (ऊंट) (श्यावीनाम्+दश-शता) कृष्णवर्ण १००० दशशत बड़वाएं। (त्र्यरुषीनाम्+गवाम्+दशसहस्रा) तीन स्थानों में श्वेत वर्ण वाली १००० दशशत गायें मुझे प्राप्त हैं॥

अर्थात् घोडे ६००००। ऊंट २०००। बड़वाएं १०००। और गायें १००। इससे सिद्ध होता है कि घोडे ऊंट और गायें बहुत रक्खें। और सब कोई रक्खें।

ऊंट की चर्चा

ता मेऽश्विना सनीनां विद्यातं नवानां यथा चिच्चैद्यः कशुः। शतमुष्ट्राणां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ॥ ८। ५। ३७ ॥

(ता+अश्विनौ+मे) मेरे परिश्रमी रात दिन कार्य्य करने वाले पुत्र पौत्र भ्राता आदि जन (नवानाम्+सनीनाम्) नवीन नवीन धनों को (विद्यातम्) जाने=उपार्जन करें (यथा+चित्) जिस परिश्रम से (चैद्यः+कशुः) हृदय व्यापी सर्व द्रष्टा ईश्वर (उष्ट्राणाम्+शतम्) एक सौ १०० ऊंट (ददत्) देवें और (गोनाम्+दश+सहस्रा) दश सहस्र गौवें देवें॥

गदर्भ प्राप्ति के निमित्त प्राथना।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम्। शतं दासाँ अति स्रजः॥ ऋ० ८। ५६। ३॥

अर्थः—हे सर्वेश्वर! (गर्दभानाम्+शतम्) एक सौ १०० गदहे (मे) मुझे आप ने दिये हैं (शतम्+ऊर्णावतीनाम्) प्रशस्तलोम वाली एक सौ १०० मेषिएं (भेड़ें) आप ने दी हैं (शतम्+दासान्) एक सौ १०० दास दिये हैं। (अति) इन सबों से बढ़ कर (स्रजः) मालाएं अर्थात् अनेक भोग वस्तुएं दी हैं।

'महाभारत और गदहे'

चत्वारस्त्वां गर्दभाः संवहन्तु श्रेष्ठाश्वतर्य्यो हरयो वातरंहाः तैस्त्व याहि क्षत्रियस्यैष वाहो ममैव वाम्यौ न तवैतौ हि विद्धि महाभारत वनपर्व अ० ॥ ९२। ९३॥

राजा:शल और वामदेव का सम्वाद है। राजा वामदेव से कहते हैं कि हे वामदेव! आप के रथ में चार गदहे, अच्छी श्रेष्ठ खचरिएं और वात के समान चलने वाले घोड़े सदा वर्तमान रहैं। इन से युक्त हो कर आप जांय। ये दोनों घोडिएं मेरी वाहन रहें।

अनुशासन पर्व महाभारत मातङ्ग की कथा में आता है कि मातङ्ग एक ऋषि के पुत्र थे। इन की गाड़ी में गदहे जोते जाते थे। इस से सिद्ध है कि पिछले समय में भी गदहे को अपवित्र नहीं मानते थे।

रासभ-वाहन।

युञ्जाथां रासभं रथे वील्वङ्गे वृषण्वसू।
मध्वः सोमस्य पीतये॥ ८। ८५। ७॥

[वृषण्वसू] धन देने वाले [अश्विनौ] हे राजा और रानी! आप दोनों [वील्वङ्गे] दृढाङ्ग [रथे] रथ में [रासभम्] गदहे को [युञ्जाथाम्] जोतैं और जोत कर यज्ञों में [मध्वः+सोमस्य] मधुर सोमरस [पीतये] पीने के

लिये प्रस्थान करें। अथवा मधु उत्तम पदार्थ की रक्षा के लिये प्रस्थान करें। निरुक्त में राजा और राज्ञी का 'अश्वी' कहा है। यदि अश्विनी देवता ही आप मानते हैं तब भी, जब देवता ही अपने रथ में गदहे जोतते हैं तो मनुष्य किस गणना में है कि वह गदहे से घृणा करे। अब इससे बढ़कर कौन प्रमाण हो सकता है।

पारस्कर गृह्यसूत्र और ऊँट गदहे।

उष्ट्रमारोक्ष्यन् अभिमन्त्रयते "त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्टृदेवत्यः स्वस्ति मां संपारयेति" रासभ मारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोऽसि शूद्रजन्माग्नेयो वैद्विरेताः स्वस्ति मा संपारयेति॥
(पारस्कर गृह्यसूत्र तृतीय काण्ड)

ऊंट पर जब चढ़ने लगे तब यह (त्वाष्ट्रोसि) इत्यादि मन्त्र पढ़े। और जब गदहे पर चढ़ने लगे तब " शूद्रोऽसि " इत्यादि पढ़े! यहां रासभ पद का अर्थ " खच्चर " भी कहते हैं।

खच्चर की चर्चा।

पूर्व समय में राजा महाराज और ऋषि मुनि आदि भी खच्चरों की सवारी किया करते थे। इसकी चर्चा भी आती है। यथाः-

रयिक इदं सहस्रं गवाम्। अयं निष्कः। अयम् अश्वतरीरथः। इयं जाया। अयं ग्रामः॥ छा० उ०। ४। २॥

जानश्रुति पौत्रायण 'रयिक' ऋषिसे कहते हैं कि ऋषे! आपके लिये यह १००० गौएं हैं। यह कण्ठ भूषण। यह खच्चर संयुक्त रथ है, यह जाया। यह ग्राम है ये सब लीजिये और मुझे ब्रह्मज्ञान सिखलावें॥ इति॥

मैं नहीं कह सकता कि जब पूर्व समय में राजा और मुनि लोग खच्चर बरताव में रखते थे तो इस को पिछले समय में क्यों बुरा मानने लगे। गदहे का रेंकना (चिल्लाहट) निःसन्देह कुछ कर्कश सुनने में लगता है और इसका रूप भी कुरूप है। इसी हेतु पिछले समय में इसका प्रयोग करना लोगों ने छोड़

दिया हो और इससे काम लेने वाले धोबी अथवा कुम्हार को नीच समझने लगे हों। परन्तु मैं पूछता हूं जब वेद इसके लिये घृणा प्रकट नहीं करता है और ऊपर के वाक्य से सिद्ध है कि धनाढ्य पुरुष गदहे रखते तो किसकी शक्ति है कि इसको अपवित्र और इससे व्यवसाय करने वाले को नीच माने। पुनः मैं पूछता हूं कि भला गदहे का रूप कुत्सित है अतः यह त्याज्य होवे। परन्तु अश्वतर क्योंकर त्याज्य हो सकता। यह देखने में भी सुन्दर और बड़े काम का है आज कल भी राज दरबार में यह बहुत काम देता है। पुनः एक उपनिषद् का नाम ही श्वेताश्वतर है। एक ऋषि भी श्वेताश्वतर थे। अतः इससे घृणा की चर्चा नहीं हो सकती है। बिहार बंगाल में धोबी गदहे को रखते। परन्तु राजपुताना आदि स्थान में कुम्हार गदहों से काम करते हैं।

'चर्म की चर्चा'

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्म्माणि म्लातानि। शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुः शतम्॥

अर्थः—(शतम्+वेणून्) एकसौ वांस अर्थात् अनेक प्रकार के गृह बनाने के लिये वांस (शतम्+शुनः) सौ कुत्ते (शतम्+म्लातानि+चर्म्माणि) सौ उत्तम चर्म्म (शतम्+बल्वजस्तुकाः) सौ बल्व से बने हुए पात्र और (चतुः शतम्+अरुषीणाम्) ४०० चार सौ घोड़िएं (मे) मुझ ईश्वरने कृपाकर दिये हैं।

'चर्म्मरचित-वर्म्मधारी वीर'

यो मे हिरण्यसन्दृशो दशराज्ञोऽअमंहत।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्म्मम्ना अभितोजनाः॥
ऋ० ८। ५। ३८॥

अर्थः—कोई राजा कहता है कि (यः) जिस बलवान् सेनापति ने (हिरण्यसन्दृशः) सुवर्णतुल्य (दश+राज्ञः) दशो दिशाओं में वर्तमान राजाओं को (मे) मेरे अधीन (अमंहत) किया है। निःसन्देह उस (चैद्यस्य) वीरपुत्र नायक की (कृष्टयः) सब प्रजाएं (अधस्पदाः+इव) नीचे वर्तमान

हैं। और (अभितः) चारों तरफ वर्तमान जितने (जनाः) सिपाही आदि उसके सहायक जन हैं। वे सदा (चर्म्मम्नाः) चर्म्म के अभ्यास करने वाले हैं। अर्थात् सदा चर्म्म रचित कवच धारण करने वाले हैं।

'संवाहक [बोझ ढोनेवाला] कुत्ते की चर्चा'

उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदंनुतम् ॥८।४६।२८॥

(वायो) हे वायुवत् सतत कार्य शील पुरुष ! (घृतस्नाः) घृतवत् पिघलने वाला (यः स्वराट्) जो स्वयं विराजमान राजा है अर्थात् प्रजा के परिश्रम जानने वाला जो राजा है वह (उचथ्ये+वपुषि) परिश्रमी शरीर के निकट (अश्वेषितम्) अश्व से प्रेषित (रजेषितम्) गदहे से प्रेषित (शुना+ईषितम्) कुत्ते से प्रेषित करके (प्र+अज्म) धन भेजा करता है (तद्-इदम्+नु+तत्) वह यह सब धन है।

सायण=अश्वेषितं अश्वैः प्रापितम्। रजेषितम् रजःशब्देनोष्ट्रो गर्दभो वोच्यते तेनाप्यानीतम्।

भाव इसका यह है कि विज्ञानी राजा कर्म्मचारी प्रजाके परिश्रम देख यथा योग्य पुरस्कार दिया करे। जो शत्रुओं को परास्त करता है दुष्टों को संहार कर प्रजाओं में शान्ति फैलाता है अथवा अपनी विद्या द्वारा उपकार करता है उस पुरुष के निकट राजा घोड़े गदहे और कुत्ते आदि वाहन पर लादकर धन पहुंचाया करे। इस से सिद्ध है कि कुत्ते पर भी लदनी हो सकती है।

'मन्त्री आदि सहित गजस्कंधारूढ़ राजा'

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥

हे सेनाध्यक्ष ! आप (पाजः+कृणुष्व) सेनादि बल को बढ़ाओ। यहां दृष्टान्त देते हैं (न) जैसे व्याध वन में। (पृथ्वीम्+प्रसितिम्) विशाल जाल को विस्तीर्ण करता है तत्समान आप भी सब प्रकार के बल को बढ़ावें। और

(अवमान्+राजा+इव+इभेन) जैसे अमात्य मन्त्री आदि से परिवेष्टित हाथी पर आरूढ़ होकर राजा चढ़ाई करता है। वैसे ही आप भी सेनादि से युक्त हो शत्रुओं पर आक्रमण करें और (तृष्वीम्) शीघ्रगामिनी (प्रसितिम्) सेना के (अनुद्रुणानः) पीछे पीछे गमन करते हुए अथवा क्षिप्रकारी सेनारूप जाल से शत्रुओं को मारते हुए। हे सेनाध्यक्ष! (अस्ता+असि) आप अस्त्र शस्त्र प्रहर्ता हैं। अतः (तपिष्ठैः) तापक आयुध से (रक्षसः+विध्य) राक्षसों को विद्ध करो। पाज=बल (निघण्टु २-९) प्रसिति=जाल, प्रसितिः प्रसयनात्तन्तुर्वा जालं वा (निरुक्त ६-१२) षिञ् बन्धने। जिस में अच्छी तरह से पक्षी बांधे जांय उसे प्रसिति' कहते हैं। पृथ्वी=विशाल। अवमान्=अमगतौ भजने शब्दे च। अमन्ति भजन्ति स्वामिनः इति अमाःसेवकास्तेऽस्य सन्तीत्यमवान् (महीधरः) अमा राज्ञा सह वर्तत इत्यमोऽमात्यः। तद्वान्। (सा०) इभ=गज, हाथी। तृष्वी=शीघ्र। द्रुणानः=द्रू हिंसायां। इस मन्त्र को यास्काचार्य्य ने भी निरुक्त में दिया है।

ऋग्वेद मण्डल १० । सू० १०१ के १० मन्त्रोंका अर्थ ।

उद् बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्नि मिन्ध्वं बहवः सनीडाः।
दधिक्रामग्नि मुषसं च देवी मिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ॥१॥

अर्थः—परस्पर परिश्रमीजन कहते हैं कि (सखायः) हे मेरे प्यारे मनुष्यो! (उद्बुध्यध्वम्) उठो! (बहवः) बहुत (सनीडाः) समान-निवासी होकर अर्थात् किसी एक ही शाला में बहुत पुरुष इकट्ठे हो और (समनसः) एक मन हो (अग्निम्) अग्निहोत्र के लिये अग्नि को (सम्+इन्ध्वम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करो। मैं (वः) तुम्हारे कल्याणार्थ (इन्द्रावतः) सूर्य्य वा वायु के सहित (दधिक्राम्) ब्राह्म मुहूर्त (अग्निम्) अग्नि (च) और (देवीम्+उषसम्) उषा देवी को (अवसे) रक्षा के लिये (नि+ह्वये) आमन्त्रित करता हूं।

पृथिवी पर प्रायः पशु पक्षी एवं अन्यान्य प्राणी अपने समय पर सोते और जागते हैं। कुक्कुट ठीक अपने समय पर जाग बैठता है। ब्राह्म मुहूर्त होते ही पक्षिगण कोलाहल मचाने लगते हैं। परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है

जो अपने नियम को नहीं पाल सकता अतः इसके लिये बारम्बार सर्व-हितकारी सर्वसुहृद भगवान् वेदद्वारा चेताते हैं कि तुम अपने समय पर उठकर मेरी प्रार्थना उपासना पूजा किया करो। इस प्रकार इतना उपदेश देकर आगे अब प्रात्याहिक कर्तव्य बतलाते हैं।

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आतनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्रणयता सखायः ॥२॥

(सखायः) हे मेरे प्यारे समान-व्यवसायी मनुष्यो ! (मन्द्रा+कृणुध्वम्) उत्तम उत्तम बुद्धि वर्धक ग्रन्थ बनाओ (धियः+आतनुध्वम्) इस प्रकार अपनी २ बुद्धियों का प्रथम विस्तार करो तब (अरित्रपरणीम्) अरित्र (डांड़ oar) की सहायता से पार जाने वाली (नावम्+कृणुध्वम्) नौका बनाओ। (इष्कृणुध्वम्) विविध प्रकार के नौका सम्बन्धी पदार्थ बनाओ (आयुधा+अरं कृणुध्वम्) आयुधों को शाणित और अलङ्कृत करो। हे सखायो ! (प्राञ्चम्) परम प्रशंसनीय (यज्ञम्) संग्राम रूप महायज्ञ को (प्रणयत) रचो ॥ २ ॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥३॥

हे सखायो ! (सीरा+युनक्त) खेती के लिये लाङ्गल योजना करो (युगा+वितनुध्वम्) युगों (जुओं) का विस्तारित करो (इह+कृते+योनौ) यहां प्रस्तुत क्षेत्र में (बीजम्+वपत) बीज बोओ (गिरा) वाणी से प्रशंसनीय (श्रुष्टिः+च) अन्न (सभरा+असत्) फल फूल से भरजाय। (नः) हमारे (सृण्यः) अन्न के सींस (नेदीयः+इत्) शीघ्र ही (पक्वम्+एयात्) पक्व जांय। ऐसी आशा करो और इसके लिये ईश्वर से प्रार्थना करो।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ४ ॥

(कवयः) कविगण (सीरा+युञ्जन्ति) लाङ्गल योजना करते हैं (युगा पृथक्+वितन्वते) युगों (जुओं) की पृथक् २ विस्तारित करते हैं (देवेषु+धीराः)

विद्वानों में भी जो धीर कवि हैं वे (सुम्नया) सुख पूर्वक सर्वगृहस्थ कार्य सम्पादन कर रहे हैं। अथवा सुख के लिये विद्वद्गण भी इस कार्य्य का सम्पादन कर रहे हैं।

निराहावान् कृणोतन संवरत्रा दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेक मनुपक्षितम्॥ ५॥

हे सखायो ! (आहावान्) आहाव अर्थात् पशुओं के जल पान स्थानों को (निः+कृणोतन) अच्छे प्रकार बनाओ (वरत्रा+संदधातन) मोटी मोटी रस्सियों का आयोजन करो (उद्रिणम्) पूर्ण (सुषेकम) सींचने योग्य (अनुपक्षितम्) क्षय रहित (अवतम्) गर्त को (वयं+सिञ्चामहे) हम सब सींचें अर्थात् इस अगाधजलपरिपूर्ण 'अवत' (कृत्रिमनदी) से जल लेकर भूमि का सेचन किया करें। ऐसा उत्साह करें॥

इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम्॥ ६॥

(इष्कृताहावम्) जिसमें पशुओं के लिये जल-पान-स्थान बनाया गया है (सुवरत्रम्) सुन्दररज्जुसंयुक्त (सुषेचनम्) शोभनोदकोपेत (उद्रिणम्) पूर्ण (अक्षितम्) अक्षीण ऐसा जो (अवतम्) कृत्रिम नदी है उस से मैं (सिंचे) पानी लेकर सींचता हूं। अथवा द्रोण को सींचता हूं। ऐसा परिश्रम तुम भी किया करो।

प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम्॥ ७॥

हे सखायो ! [अश्वान्+प्रीणीत] घोटकों को अच्छे प्रकार तृप्त करो [हितम्+जयाथ] क्षेत्र में संस्थापित धान्यादिकों का ग्रहण करो [स्वस्तिवाहम्+रथम्] जो निरुपद्रव धान्यवहन करे एतादृश रथ [इत् कृणुध्वम्] प्रस्तुत करो। [द्रोणाहावम्] एक द्रोण परिमित पशु निमित्त जलाधार [अवतम्] कृत्रिम नदी [अश्मचक्रम] प्रस्तरनिर्मितचक्र और [नृपाणम्] मनुष्य के पीने योग्य [अंसत्रकोशम्] जलाधार पात्र इन सबों को [सिञ्चत] सींचो॥ ७॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥८॥

हे सखायो! [व्रजम्+कृणुध्वम्] गोष्ठ बनाओ [सः+हि+वः] वही व्रज आप मनुष्यों के लिये [नृपाणः] मनुष्यपानयोग्य स्थान होगा। हे सखायो! [बहुला] बहुत [पृथूनि] और स्थूल [वर्म्म+सीव्यध्वम्] वर्म्म सीवन करो। और [अधृष्टाः] अधर्षणीय दृढ़तर [आयसीः+पुरः] लोहमय अनेक नगर [कृणुध्वम्] बनाओ [वः+चमसः] तुम्हारे खाने पीने के चमस पात्र [मा-सुस्रोत] स्रवित न होवे उस से पानी न चूवे वैसा [तम्+दृंहत] उसे दृढ़तर करो।

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः॥९॥

[देवाः] अब गृहस्थ लोग परस्पर कहें और विद्वानों से निवेदन करें कि हे विद्वानो! [वः] आप लोगों की [यज्ञियाम्+धियम्] प्रशंसार्ह बुद्धि को [ऊतये] अपनी रक्षार्थ [आवर्ते] अपनी ओर खींचता हूं। जो बुद्धि [यज्ञियाम्+देवीं+यजताम्] जो बुद्धि आप लोगों को भी प्रशंसनीय यज्ञिय भाग देती है हे विद्वानो! जैसे [यवसा+इव+गत्वी] अच्छे प्रकार घास खा गोष्ठ में जा [मही+गौः] अच्छी गौ [पयसा+सहस्रधारा] सहस्रधार दूध देती हैं। वैसे ही [सा] आप लोगों की भी वह बुद्धि [नः दुहीयत] हम को दूध देवें। अर्थात् आप लोग अपनी बुद्धि से ऐसे ऐसी परमोपयोगिनी विद्या निकाला करें जिस से हम प्रजाओं का बहुत कुछ लाभ हो।

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त॥१०॥

पुनः कोई कहता है कि हे मित्रो! आप (द्रोः+उपस्थे) इस काष्ठ के ऊपर (हरिम्+ईम्) इस हरे काष्ठ को (आ+सिञ्च) रक्खो तब (अश्मन्मयीभिः वाशीभिः) लोह निर्मित कुठारों से (तक्षत) तुम सब इसको चीरो फाड़ो। और कोई आप में से (उभे+धुरौ) दोनों धुरों को (दश+कक्ष्याभिः)

दश रस्सियों से (परि+स्त्रजध्वम्) बांधो । तब (वह्नौ) ढोने वाले दो बैलों की गाड़ी में (युनक्त) संयुक्त करो ॥ १० ॥

अन्त में एक मन्त्र कह कर इस प्रकरण को समाप्त करता हूं ।

अक्षैर्मा दिव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्य्यः ॥
॥ १० । ३४ । ११ ॥

स्वयं सर्वेश्वर कहता है (कितव०) हे द्यूतादिव्यसनी पुरुषो ! व्यसन को त्यागो । गार्हस्थ्यादि शुभ वृत्ति को धारण करो इसी से निखिल धन तुम्हें प्राप्त होगा । इति संक्षेपतः ॥

यहां वेदों से ब्राह्मण रथकारादि अनेक नाम, विविध व्यवसाय और विविध पोष्य-पशुओं का वर्णन दिखलाये हैं । इस विषय में अर्थ और टिप्पणिका सहित बहुत सी ऋचायें सुनाई हैं । इन सबों के निरूपण करने का प्रयोजन यहां यह है कि वेद का उद्देश अच्छे प्रकार सब पर प्रकट होजाय । चिन्ता की बात है कि आज कल के संस्कृतज्ञ पण्डित भी वेदों के विषयों से परिचित नहीं हैं । वेद क्या क्या सिखलाते हैं, उन में कौन २ से पदार्थ निरूपित हैं । हमारे व्यवहार, रीति, सदाचार, प्रबन्ध इत्यादि ऐहलौकिक पारलौकिक विषयों में वेद क्या कहते हैं । इत्यादि वार्ताओं से विद्वद्गण भी आज कल सुपरिचित नहीं हैं । साधारण जनों की तो बात ही क्या । वे लोग, इस में सन्देह नहीं कि वेदों को पूज्य, ईश्वरीय वाक्य और पवित्र मानते हैं और समझते हैं कि जो वेद पढ़ते पढ़ाते वे हम से श्रेष्ठ, शुद्ध, पवित्र और ज्ञानी हैं इसी हेतु पण्डितों से साधारण जन व्यवस्था पूछा करते हैं । परन्तु यदि कभी किसी पण्डित के निकट जा कोई पुरुष पूछता है कि पण्डित जी महाराज ! कृपाकर इस विषय में वेद क्या कहता है मुझे समझा देवें । इस पर पण्डित लोग इधर उधर की बात कह के उसे सन्तोष देदेते हैं परन्तु वेद की एक भी बात नहीं बतलाते हैं । क्यों कि स्वयं इसको नहीं जानते । परन्तु इसको वे विस्पष्ट नहीं कहेंगे कि मैं वेदार्थ नहीं जानता अतः तेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देसकता । प्रत्युत उसे सूचित कर देवेंगे कि मैं वेद के ही वचन कहता हूं । यदि कोई सरल-भाव से पूछे कि

किस वेद का यह वचन और कहां पर है तो पण्डित महाशय प्रथम अत्यन्त क्रुद्ध होंगे । शान्त होने पर मुखविनिःसृत वचन कहीं का क्यों न हो उसे किसी वेद का नाम ले लेंगे और "इति माध्यन्दिनी श्रुतिः" "इति छन्दोगश्रुति" "इति सामवेदे" इत्यादि पद उच्चारण कर अपने हठ को बढ़ाना आरम्भ करेंगे । इस पर यदि किसी जिज्ञासु ने कुछ और पूछा तो कहेंगे कि तुम क्या जानते हो वेद अनन्त हैं । सहस्रों लक्षों इसकी शाखाएं हैं । किसी शाखा में यह होगी इत्यादि अनर्गल प्रलाप करते जायंगे परन्तु न सत्य पर स्वयं आवेंगे न मानेंगे और न किसी को अपने पुरुषार्थ भर सत्य ग्रहण करने देवेंगे । यह अजीब दशा आज भारत की होरही है । इन बातों से देश में बड़ी हानि हुई । वैदिक सिद्धान्त वेदों के पुस्तक में ही रह गये । प्रजाएं विचरी वंचित हुईं । वे समझतीं रहीं कि हम लोग वेदों के सिद्धान्त पर ही चल रहीं हैं । परन्तु शोक कि वैदिक पथ से सहस्रों कोश दूर वे करदी गईं । आज वे इतनी अज्ञानी और अपरिचित हो गईं हैं कि वारम्बार समझाने पर भी न तो समझतीं और न विश्वास ही करतीं । कुछ दिनों से जो धर्म्माभास उनके ग्राम वा देश में चले आरहे हैं उनको ही विश्वास पूर्वक वैदिक धर्म्म मान रहीं हैं । इस प्रकार देशदशा पर यत् किञ्चित निरीक्षण करने से महान् अन्याय प्रचलित देख पड़ते हैं । इन अन्यायों को रोकने के अभिप्राय से यहां अनेक मन्त्र उद्धृत किये हैं । आप लोगों ने अच्छे प्रकार मन्त्रों को सुना है । आप स्वयं विचारें कि किसी व्यवसाय वा किसी व्यवसायी की कहीं निन्दा वा किसी को व्यवसाय के कारण निन्दित वा नीच कहा गया है । किसी मन्त्र में किसी प्रकार की भिन्नता प्रदर्शित हुई है ? आप को अङ्गीकार करना होगा कि यह सब वेद में नहीं है ।

अब कोई अज्ञानी यह कहता है कि वेद तो केवल धर्म्म ही सिखलाते हैं । इस गृहस्थाश्रम के बखेड़ों से वेदों का क्या सम्बन्ध । सत्य है कि वेद धर्म्म ही सिखलाते हैं । परन्तु वैदिक धर्म्म क्या है ? यह भी तो जिज्ञास्य और विवेचनीय है । क्या हल चला के अन्न उत्पन्न करना कोई पाप है ? क्या मिट्टी के विविध वर्तन बनाना कोई नीच कर्म्म है ? क्या ईंटें बनाना बनवाना कोई अपराध है ? क्या मृत पशु के चर्म्म लेकर अनेक प्रकार के परिधेय वस्त्र

वा बैठने के लिये आसन प्रभृति निर्माण करना कोई अधर्म्म है ? इस में सन्देह नहीं कि आजकल के वेदानभिज्ञ पुरुष इन से घृणा दिखलाते हैं । इन के बोध के हेतु ही मैंने अनेक व्यवसाय परक मन्त्र सार्थक सुनाए हैं । जब वैदिकाऽऽज्ञानुसार परम विज्ञानी, धर्म्मात्मा और अतिशुद्ध ऋषि गण ही कृषि कर्म्म से लेकर सोमाश्वमेध पर्य्यंत सकल वैदिक कर्म्माऽनुष्ठान करते करवाते रहे तो हम लोग उन कर्म्मों के करने में क्यों कर लज्जित होवें । पुनः कोई अवेदज्ञ वेदार्थज्ञानाभिमानी जन कहते हैं कि वेद आदि सृष्टि के ग्रन्थ हैं उनमें आधुनिक सभ्यता का वर्णन कहां से हो सकता है। और न उस समय में ऐसे २ सभ्य विवेकी पुरुष ही थे । ऐसे कहने वालों के बोध के हेतु मैंने अनेक सभ्यताओं का दिक् प्रदर्शन मात्र दिया है। सभ्यता क्या है? यदि बड़े २ नगरों का होना, समुद्रों में भी विशाल २ जहाजों का चलाना, अनेक प्रकार के पहिनने ओढ़ने के वस्त्रादिकों का बनना बनाना, उच्च २ भवनों का निर्म्माण होना, बहुविध अन्न पशु प्रभृतियों से काम लेना और इन के साथ २ विद्या प्रचार, शिष्टता, समाज संगठन, शत्रु दलन, न्यायालयनिर्माण आदि ही सभ्यता सूचक हैं तो आप बतलावें कि वेदों में किस चीज का अभाव है । क्या वेदों में सामुद्रिक यात्रा का वर्णन नहीं ? क्या विविध प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की चर्चा वेद नहीं करते हैं ? मैं क्या करूं । मैंने आप लोगों को दिखलाया है कि सोने और लोहे के भी बड़े २ नगर बसाए जाते थे ; १०००० दश दश सहस्र से भी अधिक कभी २ लक्षों घोड़े हाथी गौ आदि पशु एक एक पुरुष रखता था । १० दश दश घोड़े से युक्त गाढ़ी चलती थी । इतना ही नहीं आकाश पाताल और पृथिवी पर विना घोडे की सहस्रों गाड़ी चलती थी " अनश्वो जातो अनभीशुः" यह मन्त्र क्या सूचित करता है । पुनः इस से बढ़ कर सम्पत्ति का क्या लक्षण हो सक्ता है ॥ मेरी सम्मति से पूर्णतया सभ्यता का लक्षण अथवा मनुष्यता का चिन्ह अथवा विज्ञान का फल अथवा जगत्पिता के परमानुशासन का प्रतिपालन यह है कि मनुष्य मात्र को मित्र की दृष्टि से देखना किसी को जान कर हानि न पहुंचाना । निःस्वार्थ भाव से कार्य्य का आरम्भ करना और ईश्वरीयज्ञानप्राप्ति के हेतु प्रतिक्षण लालसित रहना इस से बढ़ कर कोई अन्य सभ्यता नहीं । वेद इन को अच्छे प्रकार दिखलाते हैं ।

"दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे"। "संगच्छध्वं संवदध्वं सम्वो मनांसि जानताम्" । "यो माऽयातुं यातुधानेत्याह" "किंस्विदासी दधिष्ठानम्" "त्रीणि पदा निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत्" 'कदानीं सूर्य्यः कश्चिकेत" "अनायतो अनिबद्धः कथायं" इत्यादि अनेक मन्त्रगण उच्चतम सभ्यता के प्रतिपादक हैं।

विशेष कर आप लोगों को इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि जो कुछ व्यवसाय वा वाणिज्य आज कल देखते हैं वेदों में भी इन का अति संक्षेप वर्णन आया है और ऋषि उन सब व्यवसायों को कार्य्य में लाए थे यह भी शतपथादि ग्रन्थों से विदित होता है। ब्राह्मण के कर्म्म से लेकर चर्म्मकार के कर्म्म पर्य्यन्त वेद वर्णन करते हैं। पशुओं में गौ से लेकर गर्दभ पर्य्यन्त पशु पोष्य और कार्य्य वाहक बनाए गए थे गेहूं से लेकर मसूर पर्य्यन्त अन्नों का व्यवहार होगया था। इत्यादि सब ही प्रयोजनीय वस्तु की विद्यमानता देखते हैं। परन्तु कहीं भी मनुष्य में भिन्न २ जाति का वर्णन वा निन्दा वा प्रायश्चित्त आदि का वर्णन वा ब्राह्मण क्षत्रिया से विवाह करे क्षत्रिय ब्राह्मणी से न करे एवं शूद्र ब्राह्मणी वा क्षत्रिया, वा वैश्या कन्या से विवाह न करे, शूद्रस्पृष्ट अन्न ग्रहण नहीं करे। इस प्रकार का पृथक् जातिसूचक वर्णन वेद में नहीं है इस हेतु वैदिक समय इन रोगों से सर्वथा निर्मुक्तथा यह अंगीकार करना ही पड़ेगा। वैदिक समय में कोई जातिभेद नहीं था इस में अणुमात्र सन्देह नहीं। अब प्रश्न हो सकता है कि यह आधुनिक जाति भेद कब से चला। और वैदिक वर्ण व्यवस्था भी कार्य्य में कब से आने लगी। इन सबों का निर्णय आगे के प्रकरण में करेंगे।

प्रश्न—मनुष्य में अनेक वर्ण कैसे उत्पन्न हुए? **उत्तर**—आवश्यकतानुसार विविध व्यवसायों की वृद्धि होने से मनुष्य में अनेक वर्ण बनते गये। देखिये! इस पर विचारना चाहिये कि क्या सृष्टि की आदि में ही होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा क्षत्रिय, रथकार, इषुकार, स्थपति, चाण्डाल, सूत, मागध, प्रभृति मनुष्य उत्पन्न

हुए। या धीरे धीरे ये सब बनते गये। इस आशङ्का का समाधान अथवा इस का निर्णय सहज रीति से हो सकता है यदि थोड़ी देर आदि सृष्टि का चित्त में ध्यान करें। यह स्वीकार करना होगा कि आज कल जितने मनुष्य हैं। आदि में इतने मनुष्य उत्पन्न नहीं किये गये। आजकल की अपेक्षा कुछ थोड़े से मनुष्य उत्पन्न हुए होंगे। अब आंख मूंद कर ध्यान कीजिये कि आदि सृष्टि कैसी हो सकती है? निःसन्देह आज कल के समान उस समय में ग्राम, पल्ली, पुरी, नगर, नगरी भवन, प्रासाद, मन्दिर आदि नहीं बने थे। गौ, बैल घोड़े, हाथी, ऊंट, भेड़ा, भेड़, बकरे, प्रभृति पशु मनुष्य के अधीन और पोष्य नहीं हुए थे। खेती आरम्भ नहीं हुई थी। सम्पूर्ण पृथिवी नर नारियों से शून्य थी। परन्तु आज कल के समान ही विविध नदीस्रोत स्वच्छन्दतया प्रवाहित थे। समुद्र देव अपने तरङ्ग कल्लोल से प्रकृति देवी की शोभा बढ़ा रहे थे। फल, फूल, कन्द, मूल, अनेक प्रकार के गेहूं, जौ, मसूर, धान प्रभृति ओषधियों से भूमि भरी हुई थी पशु पक्षी और मत्स्यादि जलचर आदिकों का ही सम्पूर्ण राज्य था। अर्थात जब समस्त सामग्री भूमि पर ईश्वरेच्छा से प्रस्तुत होगई तब मनुष्य सृष्टि का आरम्भ हुआ। जैसे एक गृह में एक ही माता पिता के निज २ कर्म्म संयुक्त भिन्नाकृति अनेक सन्तान हों वैसे ही आदि सृष्टि में उस परम पिता जगदीश की अचिन्त्य, अकथ्य, अगम्य, अज्ञेय, अलौकिक, लीला के वश अनेक मनुष्य निज कर्म्मानुसार इस पृथिवी पर उत्पन्न हुए। आप देखतेहैं कि सब मनुष्य आकृति में एक दूसरे से यत्किञ्चित भिन्न २ प्रतीत होते हैं एकही पिता के अनेक पुत्र आकृति में अवश्य ही कुछ भेद रखते हैं। परन्तु यह भेद यथार्थ में भेद नहीं। जैसे गौ और हाथी में काक और शुक में मत्स्य और कूर्म्म में भेद है वैसा यह भेद नहीं। इसी प्रकार आदि सृष्टि में आकृतिगत यत्किञ्चित भेद के साथ अनेक विध सैकड़ों मनुष्य उत्पन्न हुए। दिन दिन इनकी वृद्धि होने लगी। इस में सन्देह नहीं कि आदि सृष्टि में ही अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इन पूर्वसिद्ध चार ऋषियों के हृदय में चारों वेद प्रकट कियेगये और इनके द्वारा मनुष्य समाज में भाषा का प्रचार हुआ। अन्यथा मनुष्य भी पशु के समान अव्यक्तभाषा बोलने वाला ही रहता। परन्तु इसका भी यह तात्पर्य्य है कि

मनुष्यशरीर की रचना भगवान् ने ऐसी प्रकट की कि इस शरीर के द्वारा जीवात्मा विस्पष्ट भाषा प्रकट कर सकता है। और दिन दिन उन्नति करने में समर्थ हो सकता है। यद्यपि भगवान् ने वेद दिये। तथापि क्या सृष्टि के आदि में सब ही विद्वान् बन गये और सब ही व्यवसाय एक साथही होने लगे। और सब प्रकार के व्यवसायी वर्ण भी तैय्यार होगये ? नहीं। ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य का निज पुरुषार्थ निष्फल होजायगा। चार ऋषियों के हृदय में सम्पूर्ण ज्ञान भरा हुआ था। इन के अतिरिक्त और सब अज्ञानी थे। और उन चार ऋषियों को भी ईश्वर सृष्टि के साथ प्रत्येक पदार्थ की तुलना करनी बाकी थी। वेद के द्वारा पदार्थों का बोध था। परन्तु किस पदार्थ को किस नाम से पुकारना होगा इत्यादि उनकी बुद्धि के ऊपर छोड़ा गया था। क्योंकि मनुष्य में जो मनन शक्ति दी है वह भी व्यर्थ न होवे। जैसे एक बुद्धिमान् बालक को पदार्थ विद्या का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ा दिया जाय। और एक वाटिका में सब पदार्थ अच्छे प्रकार स्थापित कर उससे कहाजाय कि इस ग्रन्थ में जैसे जिसके गुण वर्णित हैं और लक्षणादि कहे हुए हैं इन्हीं के अनुसार इनके नाम रक्खो और इनसे काम लो। वह सुबुद्धिमान् पाठक परीक्षा ले २ कर ग्रन्थानुसार पदार्थों के नाम और प्रयोग स्थिर करने में समर्थ हो सकता है। इसी प्रकार वेद प्राप्त होने पर भी प्रत्येक पदार्थों के नाम और प्रयोग परीक्षा ले लेकर ऋषियों ने स्थिर किये। इसमें सन्देह नहीं कि उन चार ऋषियों के मन में समस्त पदार्थों के बोध का संस्कार पहले से ही था। वेद उन संस्कारों के जागृत करने में उद्बोधक होता गया। अतः उन चारों को पदार्थ परिचय में भी कोई कठिनता नहीं हुई।

वेदों में मनुष्य, मनु, मनुष्, मानुष, विवस्वान्, जगत् आदि मनुष्य के नाम से भी यह सिद्ध होता है कि वेद की सहायता और निज मनन से मनुष्यों ने सब उन्नति की है। मनुष्यादि शब्द का अर्थ हमें सूचित करता है और आज प्रत्यक्ष भासित होता है कि मनन, पूर्वापर विवेक-उत्साहादि गुण सहित और

विस्पष्ट भाषा के साथ मनुष्य उत्पन्न किया गया (१)। वेदों में कहा गया है कि वैदिक ज्ञान सहित ही ईश्वर ने मनुष्य को प्रकट किया (२) इस हेतु पशु पक्षी प्रभृति के समान एकही अवस्था में मनुष्य कदापि नहीं रह सकता। जैसे बालक में धीरे धीरे विज्ञान बढ़ता जाता है वैसे ही आदि सृष्टि में वेद की सहायता से मनुष्यों में सर्वविज्ञान फैलता गया। सब से पहिले स्वभावतः खाने पीने की आवश्यकता का बोध उत्पन्न हुआ। यद्यपि फल फूल कन्द प्रभृति अनेक पदार्थों से ही प्रथम मनुष्य अपना जीवन निर्वाह करने लगा परन्तु उन्नतिमान् होने के कारण अन्न पकाने की भी विधि निकाली। प्रथम अंगिरा अथर्वा दध्यङ् आदि ऋषियों ने इन्हें अग्नि को काम में लाने की विद्या अच्छे प्रकार सिखलाई।

इस प्रकार धीरे धीरे खेती करने की भी आवश्यकता उपस्थित हुई। तदनुसार, कृष्टि, चर्षणि आदि वैदिक नाम रक्खे। परन्तु इस जीवन निर्वाह के साथ २ शरीर को वस्त्रादिक से आच्छादन करने की भी इच्छा उत्पन्न हुई होगी क्योंकि वेद में कहा गया है कि वस्त्र धारण करने वाले श्रेष्ठ सुशोभित होते हैं। संभव है कि प्रथम वल्कल आदि अनायासप्राप्य अकृत्रिम पदार्थ ही उनके वस्त्र भी हुए हों परन्तु वैदिक ज्ञान के द्वारा कृत्रिम वस्त्र बनाने की भी चिन्ता उन्हें उत्पन्न हुई। (३) अब हम अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय कोई भी कृत्रिम वस्त्रधारी न हो। और न कोई इस विद्या को जानता ही हो अथवा

(१) मनुष्याःकस्मात् मत्वा कर्म्माणि सीव्यन्ति। मनस्य मानेन सृष्टा मनस्यतिः पुनः मनस्वो भावे। निरुक्त ३।७।

(२) स पूर्वया निविदा कव्यताऽऽयोरिमाः प्रजा अजनयत् मनूनाम् ऋ० ११९६१२। आयु-आने वाले जीव के निमित्त ईश्वर ने पूर्ववत् निविद् = वेद ज्ञान सहित मनुष्य सम्बन्धी इन प्रजाओं को उत्पन्न किया। निविद् का अर्थ वैदिक मन्त्र, ज्ञान आदि होता है। " सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ,, यह गीता वाक्य भी इसी अर्थ को दृढ़ करता है।

(३) युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसः देवयन्तः। ऋग्वेद ।३-८-४।

वस्त्र धारण करने की किसी को चेष्टा भी न हो। परन्तु इस अवस्था में यदि कोई ऋषि वेद से इस विद्या को जान वस्त्र वयन (वस्त्रबुनना) विद्या की शिक्षा देना आरम्भ करें उस समय आप अनुमान कर सकते हैं कि इस के लिये कितनी सामग्री की आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार अन्यान्य व्यवसाय की भी दशा जानिये। मनुष्य को अपनी रक्षा की भी चिन्ता लगी। चारों तरफ व्याघ्रादि मांसाहारी पशु भ्रमण कर रहे थे। इन के बच्चों को कभी कभी खा जाते थे। इस समय इनको अस्त्र शस्त्र की आवश्यकता बढ़ी। इस प्रकार शनैः शनैः अनेक आवश्यकाताएं मनुष्यों को होने लगीं। आप अनुमान कर सकते हैं कि—

रहने के लिये गृहादि एकट्ठे वास के लिये ग्राम नगरादि, खेती के लिये बैल हल आदि, पहनने के लिये वस्त्र, रक्षा हेतु अस्त्र शस्त्र, नदी में पार उतरने को नौका, आने जाने को रथादि व्यवहार के लिये मुद्रा (विविध प्रकार के सिक्के) इस प्रकार अनेक पदार्थों की आवश्यकता दिन दिन बढ़ती गई। प्रथम सब कोई सब कार्य करने लगे अर्थात् जहां तक होता था अपने गृह में वस्त्रादि पदार्थ बनालेते थे जैसे आजकल भी देखते है कि कोई कोई परिवार सब ही योग्य कार्य्य अपने से ही कर लेता है। खेती करता है। अन्नादिकों को उत्पन्न करके बेचता है। विविध पशु पालता है अपने हाथ से गाड़ी रथ बना लेता है लोहे के विविध पात्र गढ़ता है। कोल्हू से वा अन्यान्य उपाय से तेल चुआ लेता है। घृतादि तैयार करता है। कई एक वस्तु से नीमक भी गलालेता है। समय पर अपने शत्रु से लड़ता भी है। पूजा पाठ भी नियम से कर लेता है। पंच बनकर बड़े बड़े झगड़ों को निपटाता है। इसी प्रकार एकही गृह में विविध कार्य्य होते हुए आज भी आप देखतेहैं। बहुत समय तक यही रीति चली आती रही कि प्रासंहिक प्रयोजनीय अन्न, वस्त्र, तेल, घृत, नीमक, लोहादि धातु निर्म्मित अनेक भोज्य भाजन, भूषण आदि पदार्थ अपने २ गृह पर ही सब कोई तैयार कर लिया करते थे परन्तु दिन २ पदार्थों का ज्यों ज्यों अधिक प्रयोग होने लगा। समाज में पुरुषार्थ के अनुसार धनिक, दरिद्र, दक्ष, आलसी सब प्रकार के मनुष्य होने लगे यों

सों व्यवसाय की भी उन्नति होती गई । धनिक पुरुष अपने गृह पर अपने हाथ से वस्त्र भूषणादि प्रयोज्य पदार्थ न बना कर दूसरों से खरीद करने लगे । दरिद्र बेचारे अच्छे अच्छे पदार्थ प्रस्तुत कर उन धनिक पुरुषों के हाथ विक्रय करने लगे । स्त्रियों में भूषण की आवश्यकता बढ़ने पर कोई अलङ्कार गढ़ कर अपनी जीविका करने लगा । कोई रथादि बना कर, कोई विविध प्रकार के सांग्रामिक चर्म्म सीकर, कोई लोहों से वाण तैयार कर, कोई भोजनार्थ विविध पात्र निर्म्मित कर अपना अपना जीवनोपाय करने लगा । परन्तु वैदिक समय में इन सब व्यवसायियों के पृथक् २ वंश वा वर्ण नहीं बने थे । एक ही वंश में अनेक व्यवसायी होते थे । जैसे आज कल भी देखते हैं कि एक ही ब्राह्मण के घर में कोई पाचक, कोई सिपाही, कोई लेखक, कोई वकील, कोई पुरोहित कोई पानी पांडे, कोई खेतिहर, और कोई क्रयविक्रय करने वाला इत्यादिक अनेक विध पुरुष हैं और वे सब मिल इकट्ठे होने पर ब्राह्मण ही कहाते हैं । इसी प्रकार वैदिक समय में लोह, काष्ठ, मृत्तिका, चर्म्म, सुवर्ण, कपास आदि-क पदार्थों से व्यवसाय करने वाले लोहकार, धनुष्कार, तक्षा (बढ़ई) कुम्भ-कार, सुवर्णकार, चर्म्मकार और तन्तुवाय आदि व्यवसायी एक आर्य्य नाम से मिलने पर पुकारे जाते थे और खान पान शादी विवाह सब ही साथ होते थे । क्योंकि एक वंश के सब होते थे ॥ और इन का पृथक् २ वंश अभी तक नहीं बना था ।

आज कल यह एक व्यवहार देखते हैं कि क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय किसी वंश का कोई पुरुष क्यों न हो और वह नीच से नीच वर्ण के यहां धावक (सिपाही) अथवा पाचक अथवा पानी पिलाने पर नौकर हो अथवा गृह गृह पर मज़दूरी लेकर पानी पहुंचाता हो अथवा इस प्रकार के किसी नीच उपाय से भी अपनी जीविका निर्वाह करता हो तो इस अवस्था में भी वह ब्राह्मण वा क्षत्रिय ही कहालता रहेगा अर्थात् जिस कुल में उस का जन्म हुआ है वही बना रहेगा । इसी प्रकार आज कल विदेशियों के अनेक पुतलीघर व्यवसाय के लिये खुले हुए हैं उन में सब वर्ण के मनुष्य सब काम करते हैं । नीच से नीच

कर्म्म झाडू लगाना पानी भर कर सब को पिलाना आदि करते हैं। परन्तु वे अपनी जाति वा वर्ण से च्युत कभी नहीं माने जाते और न उन्हें कोई अपने वर्ण से पृथक् ही कर सकता। परन्तु यदि वही पुरुष अपने निज गृह पर लोहार बढ़ई वा सुनार वा कुम्हार आदि के कर्म्म कर जीविका करे तो उसे झट वर्ण से पृथक् कर देवेंगे या नीच समझने लगेंगे और दो चार वंश के पीछे वह अपने व्यवसाय के अनुसार लोहार आदि कहलाने लगेगा परन्तु पुतलीघर में जाके वह भले ही सब कर्म्म करे उसे कोई भी पृथक् नहीं करेगा। और न पुतलीघर के व्यवसाय पर उस का कोई नाम ही अलग रक्खा जायगा।

इसका भी कारण क्या है? इसका कारण प्रत्यक्ष है। देशमें जिस२ व्यवसाय (रोज़गार) की सिद्धिके हेतु एक एक वंश वा वर्ण पहले से बना हुआ है। उस २ व्यवसाय में उसी २ वर्ण वा वंशज पुरुष का अधिकार है क्योंकि माध्यमिक (मध्य कालके पुरुष) लोग समझते थे कि एक २ वंशज व्यवसाय रहनेसे कार्य्य उत्तम होगा। उस वंश का उसमें बड़ी निपुणता होती जायगी और उस वंशज को हानि भी न पहुंचेगी। दूसरा—नवशिक्षित वैसा कर सके वा न कर सके। तीसरा—लाभ दायक व्यवसाय को ही सब कोई करना चाहेगा। इस से कितने व्यवसायों के जड़ से विनष्ट होने की संभावना हो सकती है। चौथा—अनवस्थित पुरुष एक में लाभ न देख के दूसरा आरम्भ करेगा, उस में लाभ न देख के तीसरा व्यवसाय करेगा। इस प्रकार किसी किसी को बड़ी हानि पहुंचने की संभावना है इत्यादि अनेक कारण वश यदि कोई पुरुष निज व्यवसाय को छोड़ अन्य व्यवसाय को करने लगे तो वह पतित माना जायगा। और जाति से निकाल भी दिया जा सकता है। परन्तु पाचक वर्ण अभी तक कोई नहीं बना है धावक, लेखक, वाहक, सेवक आदि भी कोई वर्ण अभी तक नहीं है। इस हेतु इस कार्य्य को जो चाहे सो करले वह अपने वर्ण से पतित नहीं होगा।

इसी प्रकार आप समझें कि वैदिक समय में रथकार, लोहकार, स्वर्णकार, प्रभृतिका कोई पृथक् वंश नहीं बना था। एक ही वंश के पुरुष इस कर्म्म को करे दूसरे वंशज इसे न करे ऐसा कोई नियम नहीं था। इस कारण वैदिक स-

मय में आवश्यकतानुसार एक ही वंशके पुरुष भिन्न २ लोहकार, कुम्भकारादि होने पर भी मिलने पर सब समान ही समझे जाते थे। और एक ही आर्य्य नाम से सब पुकारे जाते थे कोई व्यवसाय वंशाऽऽगत नहीं हुआ था। इस प्रकार एक घरवाले भी भिन्न २ व्यवसायी होने पर भी एक ही आर्य्य थे।

"मानवाऽऽर्य्य सभा"

शनैः २ जब मनुष्य-संख्या अधिक बढ़ने लगी संसार में मनुष्य चारों तरफ विस्तीर्ण होगये परस्पर का प्रेम टूटता गया परस्पर भयङ्कर युद्ध होने लगा, एक दूसरे को अन्याय से दबाने लगे उस समय आर्य्यों में एक बृहत् सभा स्थापित हुई। एक पुरुष सभा का सभापति होता था। वह "मनु" इस नाम से पुकारा जाता था। वह वेदतत्त्ववित, परम ज्ञानी, निष्पक्ष, धर्म्मात्मा, और पृथिवी पर के प्रायः सब वृत्तान्त जानने वाला होता था। इस 'मनु' के अधीन कई एक ऋषि, ऋत्विक् और कई एक राजा होते थे। ऋषियों के साथ प्रत्येक विषय का परामर्श, और ऋत्विक् लोगों से विविध यज्ञ और राजाओं से युद्ध और राज्य प्रबन्धादि कार्य्य लिया करते थे इसी का नाम 'मानवार्य्य सभा' थी। क्योंकि इस में मनु की प्रधानता होती थी मनु सम्बन्धी को 'मानव' कहते हैं प्रजाओं की सम्मति से राजा वे बनाए जाते थे जो प्रजाओं को सर्वथा प्रसन्न उनके विघ्नों को अच्छे प्रकार नष्ट और शत्रुओं को अपने अधीन कर सकते हों। और इन राजाओं के अधीन बहुत सेनाएं रहती थीं। परन्तु आपको यहां स्मरण रखना चाहिये कि वैदिक समय में राजवंश भी कोई पृथक् नहीं हुआ था। जो प्रजाओं में ही बड़े शूर वीर निर्भय शत्रु दलन में सदा तत्पर और प्राण को तृण समान मानने वाले होते थे वेही राजा बनाए जाते थे और न वे जन्म भर राजा ही बने रहते थे। एक 'मनु' के समय में ही अनेक राजा परिवर्तित होजाते थे। जहां दोचार विजय उन्हों ने किये वे अन्य कार्य्य में लगाए जाते थे और अन्यान्य युवकों को राज्य भार सौंपे जाते थे। जो सब राजाओं का सरदार बनाया जाता था वह 'इन्द्र' और इस के जो साक्षात मन्त्री होते थे वे 'बृहस्पति' नाम से पुकार जाते थे। इस प्रकार आर्य्यों में 'महाराज' अथवा 'सम्राट्' की 'इन्द्र' और मन्त्री की 'बृहस्पति' पदवी बहुत दिनों

तक रही। देश के प्रत्येक खण्ड में 'राजसभा' और एक २ 'राजा' नियत होता था। वे सब राजे, सम्राट् के अधीन और वह सम्राट् 'मनु' के अधीन रहताथा। इसी प्रकार उस समय ब्राह्मण का भी कोई पृथक् वंश नहीं था। वंश में जो अधिक पढ़ लिख जाता था वही अपने घर का पुरोहित भी होता था। और समय समय पर ऋत्विक् आदि बन बड़े २ यज्ञ भी अपने में करलेता था। जो प्रजाएं अनभिज्ञ होती थीं वे उन्हीं पढ़े पुरुषों को अपने घर लेजाकर धार्मिक संस्कार करवा लिया करती थीं। इस प्रकार मानों जिसका पिता मूर्ख होने के कारण कर्षक वा तन्तुवाय आदि साधारण व्यवसाय से जीवका निर्वाह कर रहा है यदि उसका पुत्र अनूचान और वेदज्ञ बन गया तो वह यज्ञादि कर्म करता करवाता बड़े यज्ञों में ऋत्विक् और ब्राह्मण का आसन ग्रहण करता। और यदि विद्वान् का पुत्र विद्वान् न हुआ तो वह किसी अन्य उपाय से अपनी जीविका निर्वाह करता परन्तु वह कभी ऋत्विक् आदि नहीं बनाया जाता। जो पुरुष केवल अपना समय पढ़ने पढ़ाने में ही सर्वदा बिताना चाहते थे उनको लोग ब्राह्मण की पदवी देते थे और ये समाज के 'मुख्य' कहाते थे क्योंकि मुखका कार्य्य मुख्यतया पढ़ना पढ़ाना, स्तुति करना करवाना आदि भाषण है। वैदिक समय में यही नियम चलता रहा। केवल आर्य्य और दस्यु का भेद था परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, में कुछ भी भेद भाव नहीं था। जैसे आज कल ऋत्विक् पुरोहित होता अध्वर्यु ब्रह्मा आदिका कोई पृथक् वर्ण नहीं है। ब्राह्मण में से जो विद्या पढ़ जाते हैं वेही ऋत्विक् आदि बन जाते हैं वैसी ही वैदिक समय का सुसमाचार है। जो अध्ययन अध्यापन करते थे वे ब्राह्मण जो वीर शत्रु संहारी वे क्षत्रिय जो खेती आदि व्यापार में लगे वे वैश्य जो बहुत न्यून पढ़े परन्तु प्रत्येक शारीरिक कार्य्य में दक्ष वे शूद्र। आज कल भी आप देखेंगे कि अनेक व्यवसाय के पृथक् २ वर्ण अभी तक नहीं बने हैं। मार्दङ्गिक, पाणिवाद वेणुध्म, वीणाद, वार्तावह इत्यादि अर्थात् मृदंग बजा कर जो अपना निर्वाह करे वह मार्दङ्गिक, हाथ से ताल बजाने वाला पाणिवाद, बांसुरी बजाने वाला वेणुध्म, वीणा बजाने वाला वीणावाद, संदेसा लेजाने वाला वार्तावह। इन सबों का पृथक् २ अभी तक कोई वर्ण नहीं है। इसी प्रकार नर्तक, कत्थक

आदि का भी कोई पृथक् वर्ण नहीं । इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, रथकार, तक्षा, सुवर्णकार, निषाद, आदि शब्द रहने से कोई यह न समझे कि ये शब्द वेदों में पाये जाते हैं अतः ये पृथक् २ वर्ण वंशानुगत होवेंगे परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं । शब्द रहने से ही किसी विषय की सिद्धि नहीं होती । उस समय के समस्त व्यवहार की परीक्षा करना चाहिये । मैंने यहां अनेक व्यवसायों के उदाहरण वेदों से दिये हैं जिन से आपको प्रतीत हुआ होगा कि वैदिक समय में कोई वंशानुगत वर्ण नहीं था अर्थात् खान्दानी कोई वर्ण व्यवस्था नहीं थी ।

कई सहस्र वर्षों तक यही वैदिक नियम चलता रहा । उस समय देश में परम बृद्धि रही । धन धान्य पूर्ण साक्षात् लक्ष्मी, सरस्वती, दोनों देविएं गृह गृह विराजमान थीं । बहुत दिनों के पश्चात् अर्थात् करीब ६००० छः सहस्र वर्ष बीते हैं कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्था कतिपय राजाओं ने स्थापित की । तब से यह अन्याय बढ़ता गया और आज इस भयङ्कर अवस्था तक पहुंच गया है । परन्तु आगे के प्रकरणों से आप को यह विदित होगा कि इस पतित समय में भी बड़े बड़े विद्वानों ने इस वंशानुगत वर्णव्यवस्था को तोड़ने के लिये बड़े २ प्रयत्न किये हैं । मैं इन सबों का आगे निरूपण करूंगा । इस प्रसंग में यह वर्णन करना आवश्यक समझता हूं कि बहुधा अज्ञानी मानते हैं कि ब्रह्मा के मुख से आदि सृष्टि में ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हुए, इस हेतु आदि सृष्टि से ही ये चारों वर्ण पृथक् २ हैं । और इसी कारण एक दूसरा कदापि नहीं हो सकता । शूद्र सदा नीच ही रहेगा क्योंकि पैर से इस की उत्पत्ति है और ब्राह्मण सदा उच्च ही रहेगा क्योंकि मुख से इस की उत्पत्ति है । अर्थात् जन्म से ही ब्राह्मणादिक वर्ण हैं कर्म्म से नहीं । और इस में " ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् " इस ऋचा का प्रमाण देते हैं । इस हेतु मैं समझता हूं कि इस ऋचा का प्रथम व्याख्यान करलें तब आगे पुनः चलें

इति द्वितीयं व्यवसायादिनिरूपणप्रकरणं समाप्तम्

अथ

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्व्याख्याप्रकरणम् ।

प्रश्न—परब्रह्म परमात्मा के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि वर्णचतुष्टय उत्पन्न हुआ क्या यह वेदों से सिद्ध नहीं होता ?। उत्तर—नहीं। प्रश्न—तब "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस ऋचा का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर—इसका अभिप्राय मैं अनेक प्रमाणों के सहित निरूपण करूंगा जिस से आप लोगों का सन्देह सर्वथा मिट जाय और आप सत्यता तक पहुंच जांय। इस हेतु प्रथम आप इस बात पर ध्यान देवें कि यह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" ऋचा किस अवसर पर कही गई है। इस मन्त्र के पहले एक प्रश्न किया गया है। उस के समाधान में इस ऋचा को कहा है। अब यह विचारणीय है कि प्रश्न के अनुसार ही समाधान भी हुआ करता है। प्रश्न तो कुछ हो और उस का उत्तर कुछ और ही हो "आम्रान् पृष्टः कोदारानाचष्टे" ऐसा कथन केवल अज्ञानी और उन्मत्त का होता है। इस हेतु प्रथम प्रश्न के ऊपर ध्यान दीजिये। प्रश्न यह है।

मुखं किमस्यासीत् किंबाहू किमूरू पादा उच्येते । य० ३१।१०॥

इस का अक्षरार्थ यह है। (अस्य) इस का (मुखम्+किम्+आसीत्) मुख कौन है "वेद में लिट् लङ् और लुङ् सर्वकाल में होते हैं" "छन्दसि लुङ् लिङ् लिटः ।३।३।६। धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः" (किं+बाहू) दोनों बाहु कौन हैं (किम्+ऊरू) दोनों ऊरु कौन हैं। और (पादौ+उच्येते) इस के दो पैर कौन हैं।

ये ही चार प्रश्न हैं। इन में आप देखते हैं कि किसी प्रश्न में नहीं पूछा गया है कि ब्राह्मण किस अंग से उत्पन्न हुए थे क्षत्रियादि किस अङ्ग से उत्पन्न हुए। अब इसी प्रश्न का उत्तर होना चाहिये। सो सुनिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳩशूद्रो अजायत । यजु० ३१ । ११ ॥

(अस्य+मुखम्+ब्राह्मणः+आसीत्) इस का मुख ब्राह्मण है । (बाहू+ राजन्यः+कृतः) दोनों बाहू क्षत्रिय हैं । (यद्+वैश्यः) जो वैश्य है (तद्+ ऊरू) वह इस के दोनों ऊरू हैं । (पद्भ्याम्+शूद्रः+अजायत) दोनों पैर शूद्र हैं ।

इस प्रकार अर्थ करने से प्रश्नों का ठीक समाधान हो सकता है । मैं पुनः प्रश्न और उत्तर साथ २ रखता हूं । प्रश्न (१) मुखं किमस्यासीत्–इसका मुख कौन है ? उत्तर–ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्–इस का मुख ब्राह्मण है । प्रश्न (२) किंबाहू इस के दोनों बाहू कौन है ? उत्तर–बाहू राजन्यः कृतः–इस के दोनों बाहु राजन्य (क्षत्रिय) है । प्रश्न (३) किमूरू–इस के दोनों ऊरू कौन हैं ? उत्तर–ऊरू तदस्य यद्वैश्यः–इस के दोनों ऊरू वैश्य हैं । प्रश्न (४) पादा उच्येते–इस के दोनों पैर कौन हैं । उत्तर–पद्भ्यां शूद्रो अजायत । इस के दोनों पैर शूद्र हैं ॥

जो प्रश्न पूछे गये हैं उन के समाधान भी इसी प्रकार हो सकते हैं । अब आप यह विचारें कि "इस का मुख कौन है" ऐसा कोई प्रश्न पूछता हैं । यदि इस का उत्तर यह कहा जाय कि "उस के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है" तो क्या यह उस प्रश्न का समाधान कहलावेगा । कदापि नहीं । यदि ब्राह्मण कहां से उत्पन्न हुआ । ऐसा प्रश्न रहता और उसके मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ यह उत्तर कहा जाता तो प्रश्न के अनुकूल समाधान समझा जाता परन्तु यहां वैसा प्रश्न ही नहीं । फिर वैसा समाधान कैसे किया जाय ।

प्रश्न–"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" इतिहास पुराणादिकों ने जैसा वेदों का तात्पर्य वर्णन किया हो । वैसा ही वर्णन करना चाहिये सब इतिहास पुराण कहते हैं कि ब्राह्मणादि चारों वर्ण ब्रह्मा के मुखादिक अंगों से उत्पन्न हुए हैं फिर इस के विरुद्ध अर्थ आप कैसे करते हैं ।

समाधान—वेद के अनुसार इतिहास पुराणों को वर्णन करना चाहिये अथवा इतिहास पुराण के अनुकूल वेद को लगाना चाहिये। महाशयो ! आप यह तो सोचें कि यदि इतिहास पुराण कहीं भूल कर गये हों तो उन की जाँच कैसे हो सकती है। क्या उसी भूल के अनुसार ही वेद का भी अर्थ कर देवेंगे ! नहीं। वेद ही सब का परीक्षक है। वेद से जो अर्थ सिद्ध हो वही मानना चाहिये। इस के विपरीत सर्वथा त्याज्य है। मीमांसाशास्त्र कहता है कि "विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्" वेद से विरुद्ध अर्थ सर्वथा त्याज्य है। मैंने अनेक स्थलों में कहा है कि इन ग्रन्थों में बहुत भूलें इस लिये होती गई हैं कि पीछे से सम्प्रदायी लोग बहुत नवीन २ वाक्य मिलाते गये। इन इतिहास पुराण ग्रन्थों का इस हेतु असली स्वरूप का पता सब को नहीं लगता। परन्तु विचार पूर्वक यदि इन का अध्ययन किया जाय तो विद्वानों को बहुत कुछ पता लग जाता है। प्रथम आप यह समझें कि ये भागवतादि पुराण दिन दिन बनते गये हैं यहां तक कि बादशाह अकबर के समय तक पुराण लोग बनाते रहे हैं। इस प्रकार महाभारत आदि में भी बहुत से क्षेपक हैं। परन्तु वेदों को यहांके लोग अक्षर अक्षर कण्ठस्थ रखते थे, हज़ारों लाखों ब्राह्मण कण्ठस्थ ही वेदों को पढ़ाया करते थे इस हेतु कोई सम्प्रदायी एक अक्षर भी इन में मिला नहीं सके। और इसी कारण सब ग्रन्थ और आचार्य्य चेताते आए हैं कि जैसा वेद कहता है वैसा ही करो। क्योंकि ग्रन्थ बनाने वाले स्वयं समझते थे कि इन ग्रन्थों में लोग बहुत कुछ मिला सकते हैं क्योंकि इन को नियम पूर्वक सब कोई कण्ठस्थ नहीं करते वेदों को सम्पूर्ण भारतवासी एक सिरे से दूसरे सिरे तक विधि पूर्वक श्रद्धा विश्वास से अभ्यस्त किया करते हैं। इस हेतु वेदों में क्षेपक होने की कोई भी आशङ्का कदापि नहीं हो सकती। इसी कारण निखिल ग्रन्थकार अपने अपने ग्रन्थों में चेताते गये हैं कि वेदानुकूल चलो। जब यह बात स्थिर है तो हमें वेदों पर ही पूर्ण विश्वास रख कर सब निर्णय करना चाहिये। मैं आप लोगों से यह भी कहना चाहता हूं कि मैं आगे सिद्ध कर दिखलाऊँगा कि लोगों ने इतिहास पुराणों का भी आशय नहीं समझा है। और किसी पुराण से भी सिद्ध नहीं होता है कि ब्रह्मा के मुखादिकों से ब्राह्मणादि वर्ण हुए॥ एवमस्तु आगे चलिये।

(१) ब्रह्मा से यह सारी सृष्टि हुई यह वेद का सिद्धान्त नहीं । (२) ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों का पौराणिक भाव क्या है इस को "त्रिदेव निर्णय' नामक ग्रन्थ में दिखलाया है वहां ही देखिये । (३) वेदों के ऊपर टिप्पणिका करनें वाले ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य और गोपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में मुखादिक से उत्पत्ति का वर्णन कहीं भी नहीं है । (४) जैसे आधुनिक ग्रन्थों में ब्राह्मण के लिये अग्रज, मुखज, आस्यज आदि, क्षत्रिय के लिये बाहुज, करज आदि, वैश्य के लिये ऊरुज, मध्यज, आदि, और शूद्र के लिये पादज चरणज जघन्यज, अन्त्यज आदि शब्द पाये जाते हैं प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे शब्द कहीं नहीं मिलते । इत्यादि अनेक कारणों से सिद्ध है कि मुखादिक अंगों से ब्राह्मणादिवर्णों की सृष्टि माननी सर्वथा वेदविरुद्ध है । अब प्रथम इस ऋचा का अर्थ दिखला कर आगे सब निरूपण करूंगा ।

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इस का अभिप्राय ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ऋग्वेद १० । ९० । १२ ॥

यजुर्वेद और सामवेद में भी इस का पाठ ऐसा ही है । परन्तु अथर्ववेद में कुछ भेद है यथाः—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ अथर्ववेद १९ । ६ । ६ ॥

वेदों में अलङ्कार रूप सें वर्णन बहुत आता है । यह भी एक आलङ्कारिक वर्णन है । भगवान् का अभिप्राय वा संकेत है कि संसार में जीवनोपाय निमित्त प्रथम मनुष्यों को चार भागों में विभक्त करना चाहिये । जो मुख का काम करे वह ब्राह्मण, जो बाहु का काम करे वह राजन्य, जो शरीर के मध्य भाग का काम करे वह वैश्य और जो पैर का काम करे वह शूद्र नाम से पुकारा जाय ।

मुख के काम–गर्दन से ऊपर भाग का नाम यहां 'मुख' है। अर्थात् शिर से यहां तात्पर्य्य है। इस शिर में दो नयन, दो कर्ण, दो घ्राण और मुख के अभ्यन्तर सातवीं एक जिह्वा ये सात इन्द्रिय निवास करते हैं। ये ही सप्तर्षि कहाते हैं। जैसे ऋषि सत्यासत्य निर्णय करते हैं तद्वत् ये इन्द्रिय रूप सातों ऋषि भला बुरा सब कुछ निर्णय कर तब क्षत्रिय आदि को आज्ञा देते हैं। श्रवण, मनन निदिध्यासन बिवेक आदि जो कुछ विचार करते हैं सब शिर से ही करते हैं। इसी में सब ज्ञानेन्द्रिय रहते हैं। नयन जब देख लेती है कि यह भयङ्कर व्याघ्र आ रहा है। इसे मारना चाहिये झट वह बाहु को खड्ग वा बन्दूक आदि से मारने की आज्ञा देती है। बाहु भी वैसा ही करना आरम्भ करता है आंख और रसना जब किसी पदार्थ को देख लेती हैं कि यह भोग्य है तब झट कण्ठ के द्वारा मध्यस्थान उदर के भीतर पहुंचा देती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ को प्रथम शिर परीक्षा कर लेता है तब उस के ग्रहण वा त्याग के लिये आज्ञा देता है। अपने स्वयं कुछ नहीं रखता है। शिर यदि शरीर पर न होतो इस शरीर का पहचान भी कठिन है। सब से बढ़कर मुख का काम पठन पाठन है। परम पवित्र वेदवचनों को मुख से ही पढ़ते पढ़ाते। इत्यादि शिर के कार्य्य ऊहनीय हैं जैसे इस शरीर में शिर कर्म्म करता है वैसे ही विवेक पूर्वक निःस्वार्थ और परोपकारी बन कर जो मस्तिष्क से समाज की सेवा करे उसे ब्राह्मण कहते हैं। वह मानो इस विराट् जगत् का अथवा मनुष्य समुदाय का मुख सदृश है अतः यह 'मुख्य' है।

बाहु के काम–सम्पूर्ण शरीर की रक्षा बाहु ही करता है। शिर से लेकर पैर तक कहीं भी आपत्ति आने पर झट हाथ दौड़ जाता। युद्धक्षेत्रादिक में भी इस के बिना कार्य्य ही नहीं चल सकता। बाहुवत् जो समाज की सेवा अपने बाहुबल से करता है वह 'राजन्य' है।

ऊरु के काम–ऊरु पद से यहां 'शरीर के मध्य भाग का' ग्रहण है इसी हेतु अथर्ववेद में 'ऊरु' की जगह में 'मध्य' पद आया है। गर्दन से नीचे और जंघा से ऊपर भाग को यहां मध्य भाग कहते हैं। अब देखिये उदर कौन काम करता है। प्रत्यक भुक्त पीत वस्तु उदर में संचित होती है वहां से सुन्दर

पुष्ट रस बन कर मस्तिष्क हाथ पैर सर्वत्र अंगों में पहुंचता है और मलिन पदार्थ को निकाल बाहर कर देता है। ऐसे उदर के समान जो कोई नाना भोज्य, पेय, लेह्यादि पदार्थ अपने यहां एकत्रित कर सम्पूर्ण देश में पहुंचाया करता है वह वैश्य है।

पैर के काम=पैर बिना हम कुछ कर ही नहीं सकते। कहीं जाना आना भी पैर से ही होता है। जब शरीर को ढोकर संग्राम में पैर लेजायगा तब ही बाहु युद्ध करेंगे और शिर वहां कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचारेंगे। पैर के तुल्य कार्य्य करने वाला 'शूद्र' कहावे। यह इस का भाव है। इस के ऊपर आर्य्यसमाज में अनेक व्याख्यान बने हुए हैं अतः इस अलङ्कार का व्याख्यान विस्तार से नहीं किया गया है।

प्रश्न=हां, आपका कथन बहुत सत्य है। वेद का यही आशय है इस में भी संशय नहीं। परन्तु "पद्भ्यां शूद्रो अजायत" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा। वेद के प्रश्न के अनुसार दोनों पैर शूद्र हैं यही अर्थ करना उचित है परन्तु पद वैसा अर्थ नहीं कहता। इस में हम लोगों का बड़ा सन्देह है। उसको अनुग्रह कर दूर कीजिये।

समाधान=इस में संशय नहीं कि 'पद' कुछ विकट हैं। सुनिये। चारों प्रश्नों के चार उत्तर हैं। तीन में न तो 'अजायत' पद और न 'पञ्चमी विभक्ति' ही है। एक में 'पञ्चमी विभक्ति' और 'अजायत' पद है। अब जो तीन कहें सो करें या एक कहे सो करें। लोक में भी अधिकसम्मति स्वीकर्तव्य होती है और इस के साथ २ प्रश्नोत्तर भी बनता है और एक की बात मानने से प्रश्नोत्तर भी नहीं बनता है। अतः इस अन्तिम वाक्य को भी तीन के समान लगाना चाहिये।

पक्षान्तर में मैं यह कहता हूं कि यदि इसको सृष्टि प्रकरण में ही लगाना अभीष्ट है यद्यपि यह है नहीं क्यों कि ऐसे अर्थ के मानने वाले के शिर पर यह भी एक भार है कि "विराजो अधिपूरुषः" विराट् से 'पुरुष' अर्थात् मनुष्य

सृष्टि प्रथम ही कही गई। पुनः एक ही सूक्त में द्वितीय वार मनुष्य-सृष्टि कहने की क्या आवश्यकता हुई। इस का उत्तर वे क्या देवेंगे। यहां वे मौन ही धारण करेंगे। तथापि इस का आशय यही लगाना चाहिये कि मनुष्य-सृष्टि में कोई विद्याभिलाषी, कोई युद्धाभिलाषी, कोई व्यापारी, कोई आलसी, कोई तीक्ष्ण चतुर दक्ष, कोई मूढ़ कोई ज्ञानी, कोई तपस्वी व्रती, कोई अकर्म्मण्य और स्वयं वेद में विद्याध्ययन, संग्राम, वाणिज्य आदि का विधान इत्यादि अनेक प्रकारता देखी जाती है। मनुष्य-सृष्टि ही ऐसी भगवान् ने की है। मनुष्य में जितनी आवश्यकताएं लग ई हैं पशु पक्षी में इतनी नहीं। पशु पक्षियों को वस्त्रों, खेतों, व्यापारादिकों की आवश्यकता नहीं। मनुष्य समान पशुपक्षिगण दिग्विजय की आकांक्षा कराने वाले नहीं। अर्थात् कोई सिंहादिक पशु नहीं चाहता है कि मैं सारे पशुओं को मार अपने अधीन कर राजा बनूं; परन्तु मनुष्यों में अनेक पुरुष ऐसे हुए हैं जिन्हों ने लाखों पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों को कतल कर सहस्रों नगर ग्रामों को भस्म कर सम्पूर्ण पृथिवी का अधीश्वर बनने की इच्छा की। इसी प्रकार कोई २ विद्वान् भी जगद्विजयी बनना चाहते थे। इत्यादि अनेकाभिलाषग्रस्त मनुष्य सृष्टि देखी जाती। भगवान् ने इस को ऐसी ही बनाई। इस हेतु इस सृष्टि में प्रबन्ध की भी बड़ी आवश्यकता है। इस कारण भगवान् की ओर से यह उपदेश है कि मनुष्यों में चार भाग करो। जो विद्वान् उत्पन्न हों उन्हें मुख के निमित्त अर्थात् मुख के कार्य्य निमित्त समझो। वाणी का स्थान मुख है। भाषण मुख से होता है सो जो कोई विद्याध्ययन करें करवावें जगत् में शिक्षा फैलावें यज्ञ करें करवावें उन्हें मुख्य ब्राह्मण मानो और उन से यही काम लेने का प्रबन्ध करो। जो बलिष्ठ निर्भय उत्पन्न हों उन्हें बाहु के निमित्त समझो। भुजा बल की जगह है। भुजा से युद्ध करते हैं। सो जो कोई सेनारूप बल और निज बल लेकर रक्षा करें करवावें उन्हें 'राजन्य' मानो। और इन से यही काम लो। जो धन संचय कर व्यापार में रुचि दिखलावें उन्हें उदर के निमित्त समझो। उदर प्रथम सब भुक्त पीत कोश अपने में रख यथायोग्य स्थान में पहुंचाता है। सो जो कोई वाणिज्याभिलाषी हों उन्हें वैश्य समझो और उनसे यही कार्य्य लो। जो बड़े साहसी कठिन से कठिन

शारीरिक कार्य्य करने वाले हों उन्हें पैर के निमित्त समझो पैर ही कठिन से कठिन स्थान में चलता है। और सम्पूर्ण देह का भार पैर ही संभालता है। इस हेतु साहसी कठिन कार्य करने वाले को शूद्र मानो और इस से यही काम लो। भाव यह है कि "पद्भ्यां शूद्रो अजायत" यहां पञ्चमी का अर्थ निमित्त करना चाहिये। पैरों के निमित्त अर्थात् पैर के कार्य्य के निमित्त। अन्यत्र भी जहां जहां ऐसे पद आवें कि 'मुखाद् ब्राह्मणोऽजायत बाहुभ्यां राजन्योऽजायत' इत्यादि स्थल में भी मुख के कार्य्य निमित्त ब्राह्मण, बाहु के कार्य निमित्त क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है इत्यादि अर्थ करने से कहीं भी दोष नहीं आता है। इसी सूक्त में इसी निमित्त अर्थ में पञ्चमी का प्रयोग देखिये यथाः–

> चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
> श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
> नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
> पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१३॥

मनोविनोद के लिये चन्द्रमा को, नेत्रों में ज्योति पहुंचाने के निमित्त सूर्य को, कान में शब्द पहुंचाने के निमित्त वायु और प्राण को, मुख में बल पहुंचाने के कारण अग्नि को, नाभि कुण्ड में रक्षा के लिये अन्तरिक्ष को, शिर को प्रज्वलित करने के हेतु द्युलोक को, पैर के रखने के लिये भूमि को, श्रोत्र में अवकाशार्थ दिशाओं को, इत्यादि वस्तुओं को तत्तत्कार्य्य निमित्त ईश्वर ने प्रकट किया। चन्द्रमा–कभी बढ़ता कभी घटता कभी सब ही लुप्त कभी पूर्ण होता रहता है। एक छोटा बच्चा भी देख चन्द्रमा को अपने हाथ में लेना चाहता है। सूर्य्य की तीक्ष्णता के कारण बच्चे अच्छी तरह से उसे देख भी नहीं सकते। पुनः चान्द्रमसी रात्रि में कैसा विनोद होता। हमारा मास भी प्रायः चान्द्र है। ज्योतिषी भी अश्विनी भरणी आदि चन्द्र की पर्वों से आजकल निर्वाह करते हैं। दर्शपौर्णमास यज्ञ भी चान्द्र हैं इत्यादि अनेक प्रकार से चन्द्रमा बच्चे से लेकर बड़े विद्वानों को भी विनोद स्थान है। अतः कहा गया है कि चन्द्रमा मन के लियेहै। अन्यान्य पदों का भावार्थ स्पष्टहै। मुखके लिये अग्नि–जितने ही खाद्य पदार्थ को चबा चबा खाते हैं उतने ही शीघ्र पचता है पचना अग्नि की शक्ति है

यहां सर्वत्र पञ्चम्यर्थ निमित्त ही देखते हैं। जो कोई "मन से चन्द्रमा और नयन से सूर्य्य उत्पन्न हुआ" इत्यादि अर्थ करते हैं उन से पूछना चाहिये कि आप के सिद्धान्त में सत्कार्य्यवाद कहां रहा। क्या प्रकृति से उनको बनाया या स्वयं भगवान्‌ने अपने शरीर से मांस नोंच नोंच कर इस सृष्टि को बनाया। ऐसा करने से भगवान निर्विकारी कैसे रहेगा। एवमस्तु, यहां प्रकरणान्तर में जाना अच्छा नहीं। मैंने जो अर्थ आप लोगों को सुनाया उस पर ध्यान देकर विचार करें। वेदों के अर्थ सीधे हैं। लोगों ने खींचातानी कर विवादास्पद बना सत्यासत्य छिपा दिया है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् और शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ।

यदि वेद का तात्पर्य्य मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि की सृष्टि का रहता तो इसके विपरीत शतपथ आदि वर्णन नहीं करता। अतः मैं यहां ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमाण आप लोगों को सुनाता हूं।

भूरिति वै प्रजापतिः इमा मजनयत भुव इत्यन्तरिक्षं स्वरिति दिव मेतावद्वा इदं सर्वं यावदिमे लोकाः सर्वैर्णैवाधीयते ॥ ११ ॥ भूरिति वै प्रजापतिः ब्रह्माऽजनयत भुव इति क्षत्रं स्वरिति विश मेतावद्वा इदं सर्वं यावद् ब्रह्म क्षत्रं विट् सर्वैर्णैवाधीयते ॥ १२ ॥ भूरिति वै प्रजापतिः आत्मान मजनयत भुव इति प्रजां स्वरिति पशूनेतावद्वा इदं सर्वं यावदात्मा प्रजा पशवः सर्वैर्णैवाधीयते। १३। शतपथब्रा० ॥ २। १। ४। १२ ॥

अर्थ=प्रजापति ने 'भू' शब्द पूर्वक इस पृथिवी को उत्पन्न किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक अन्तरिक्ष और 'स्वः' शब्द पूर्वक द्युलोक को सम्पूर्ण विश्व इन हीं तीन के अन्तर्गत हैं। पुनः निश्चय, 'भू' शब्द पूर्वक प्रजापतिने ब्राह्मण को उत्पन्न किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक क्षत्रिय और 'स्वः' शब्द पूर्वक वैश्य को सब मनुष्य इन ही तीन के अन्तर्गत हैं जो यह ब्रह्म, क्षत्र, और विट् हैं। पुनः प्रजापति 'भूः' शब्द पूर्वक अपने को प्रकाशित किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक सन्तान और 'स्वः' शब्द पूर्वक पशुयों को। इनके ही अन्तर्गत सब हैं। जो यह, आत्मा, प्रजा और पशु है। इन सबों के साथ अग्नि स्थापित किया।

देखते हैं कि यहां मुखादि अंग से ब्राह्मणादि सृष्टिका वर्णन नहीं है यदि वेद का अभिप्राय यह रहता कि 'मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ' तो ब्राह्मण भी वैसा ही लिखता। अतः वेद का आशय आलंकारिक वर्णन से है। यहां कुछ क्रम पूर्वक सृष्टि का वर्णन नहीं है। यज्ञ के विधानार्थ यह सृष्टि दिखलाई गई है। भाव यहां केवल यह है कि ज्ञान सहित मनुष्य की सृष्टि हुई है। ऐतरेय, ताण्ड्य और गोपथ में भी मुखादि अंग से सृष्टि का वर्णन नहीं है। प्रसिद्ध और वेदानुकूल १० दशों उपनिषदों में भी मनुष्य सृष्टिका विवरण नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद् में केवल 'ततो मनुष्या अजायन्त' (१-४-३-) तब बहुत से मनुष्य उत्पन्न हुए इतनी ही मनुष्य सृष्टि कही गई है।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् और मनुस्मृति।

सब धर्म्म शास्त्रों में मुख्य मनुस्मृति ही है। अतः सृष्टि के विषय में यह शास्त्र क्या कहता है इस प्रकरण में जानना आवश्यक है। क्या मनुस्मृति से सिद्ध होता है कि ब्राह्मणादि वर्ण ब्रह्मा के मुखादि अंगों से उत्पन्न हुए। समाधान नहीं, देखिये। मनुस्मृति में सृष्टि प्रकरण किस प्रकार वर्णित है। यथा—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षु र्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥ अध्याय १.
तदण्ड मभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मि ञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवान् उषित्वा परिवत्सरम्।
स्वय मेवात्मनो ध्याना त्तदण्ड मकरोद्द्विधा ॥ १२ ॥

अनेक महर्षियों ने मनुजी के निकट जा प्रश्न किये हैं। उन ही महर्षियों से मनुजी कहते हैं परमात्मा ने अपने शरीर से विविध प्रजाओं की सृष्टि की

इच्छा करता हुआ प्रथम आप (जल वा आकाश) उत्पन्न किया । और उसमें बीज स्थापित किया ॥ ८ ॥ वह बीज सूर्य्य समान सौवर्ण अण्ड (अण्डा) होगया । उस अण्डे में सर्व लोक पितामह ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ आप को 'नार' कहते हैं । क्योंकि 'नर' नाम परमात्मा का भी है । उस 'नर' का पुत्र तुल्य 'आप' है । अतः "आप" को 'नार' कहते हैं "नरस्यापत्यं नारः" वह 'आप' प्रथम परमात्मा का निवासस्थान हुआ अतः उस परमात्मा को 'नारायण' कहते हैं ॥ १० ॥ जो वह परमात्मा सबका कारण अव्यक्त, नित्य, सदसदात्मक है । उससे प्रथम जो पुरुष सृष्ट (उत्पन्न) हुआ लोक में वह 'ब्रह्मा' कहाता है ॥ ११ ॥ उस अण्डे में एक वर्ष निवास कर उस ब्रह्मा ने निज ध्यान से उस अण्डे को दो भाग किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिञ्च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टा वपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥
उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहंकार मभि मन्तार मीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणाणिच ।
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणिच ॥ १५ ॥
कालं काल विभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागराञ्छैलान् समानि विषमाणिच ॥ २४ ॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोध मेवच ।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टु मिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥

उस ब्रह्मा ने उस अण्डे के उन दोनों खण्डों से द्युलोक और भूमि बनाई और इन दोनों के मध्य में व्योम और आठ दिशाएं और शाश्वत समुद्र के स्थान बनाए । यहां से लेकर ३० वें श्लोक पर्यन्त मन अहङ्कार पञ्चेन्द्रिय काल नक्षत्र, ग्रह, सरिता, सागर तप, वाणी, रति, काम, क्रोध, आदि, विविध प्रकार की सृष्टि की रचना का विस्तार से वर्णन है । अर्थात् द्युलोक से लेकर भूमि पर्यन्त सब पदार्थ उत्पन्न किये । केवल जंगम जीवों की सृष्टि बाकी रही इसके लिये आगे कहते हैं ।

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देह मर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराज मसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यंतु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
तं मां वित्ताऽस्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजाना मसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारद मेव च ॥ ३५ ॥
एते मनूंस्तु सप्ताऽन्या नसृजन्भूरितेजसः ।
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्ष रक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।
नागान्ःसर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणाञ्च पृथक् गणान् ॥ ३७ ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषिच ।
उल्का निर्घात केतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानिच ॥ ३८ ॥
किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहङ्गमान् ।
पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥
कृमिकीट पतङ्गांश्च यूकामक्षिक मत्कुणम् ।
सर्वंच दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥
एवमेतै रिदंसर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ।
यथाकर्म्म तपोयोगात् सृष्टं स्थावरजंगमम् ॥ ४१ ॥

अर्थः—मनुजी महर्षियों से कहते हैं वह ब्रह्मा अपने देह को दो भागकर आधे से पुरुष और आधे से नारी हुए। उस नारी में उस प्रभु ने विराट् नामक पुरुष को उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ उस स्वयं विराट् पुरुष ने तपस्या करके जिस को प्रथम सृष्ट किया है द्विजसत्तमो ! वह सम्पूर्ण जगत् का स्रष्टा मैं ही मनु हूं यह आप लोग जाने। अर्थात् विराट् ने जिसको उत्पन्न किया वह मैं ही मनु हूं ॥ ३३ ॥ मैंने विविध प्रजाओं की सृष्टि करने को इच्छावान् हो सुदु-

…र तप कर आदि में १० दश महर्षि प्रजापति सृष्ट किये ॥ ३४ ॥ मरीचि १। अत्रि २। अङ्गिरा ३। पुलस्त्य ४। पुलह ५। क्रतु ६। प्रचेतस ७। वसिष्ठ ८। भृगु ९। नारद १०। (क) इन भूरितेजा दशों (१०) मरीचि आदि प्रजापतियों ने अन्य सात (७) मनु उत्पन्न किये देव, देवनिवासस्थान और महर्षि सृष्ट किये ॥ ३६ ॥ और यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, सुपर्ण, और पितृगण उत्पन्न किये ॥ ३७ ॥ विद्युत, अशनि, मेघ रोहितेन्द्र धनु, उल्का, निर्घात, केतु और अन्यान्य ज्योति उत्पन्न किये ॥ ३८॥ किन्नर, वानर, मत्स्य, विविध विहङ्गम, पशु, मृग, मनुष्य, व्याल, और ऊपर नीचे दांत वाले पशु ॥ ३८ ॥ कृमि, कीट, पतङ्ग, यूका मक्षिक, मत्कुण, दंश, मशक, और विविध प्रकार के स्थावर ॥ ४० ॥ इस प्रकार मेरी आज्ञा के अनुसार उन महात्मा महर्षियों ने तपोयोग से स्वस्वकर्म्मानुसार सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत् को रचा ॥ ४१ ॥

इन श्लोकों पर विचार।

यहां पर आप देखते हैं कि मरीचि, अत्रि, अंगिरा आदिक दश ऋषियों ने समस्त पशु, पक्षी, मत्स्य, यक्ष, राक्षस, आदि चेतन और विद्युत अशनि आदि अचेतन भी इस प्रकार स्थावर जङ्गम सब पदार्थ उत्पन्न किये और "पशून् मृगान् मनुष्यांश्च" (३९) मनुष्यों को भी उत्पन्न किया इस ३९ वें श्लोक से सिद्ध है कि मनुष्यों के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी नहीं हैं। किन्तु मरीचि आदि दश महर्षि हैं। केवल मनुष्यों ही के नहीं किन्तु अण्डज, पिण्डज ऊष्मज और उद्भिज्ज इन सबों के सृष्टिकर्ता ये दश ऋषि हैं। अब ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ यह बात नहीं रही। एवमस्तु। अब इस के ऊपर ध्यान दीजिये। सब का

(क) महाभारत में ब्रह्मा के छः मानस पुत्र माने गये हैं। "ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः। मरीचिमर्त्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। वन ॥ ६५ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, और क्रतु ये छवों ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। मनुस्मृति में ४ अधिक बढ़ाये गये हैं। और यहां मरीचि आदि मनु पुत्र कहे गये हैं यह भी विपरीत प्रतीत होता है।

भाव यह है कि प्रथम परमात्माने जल वा आकाश बनाया। उस में बीज स्थापित किया। वह बीज अद्भुत अण्डाकार हुआ। उस में से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा जी ने उस अण्डे को दो भागों में बांट कर स्वर्ग से लेकर भूमितक सारी पांच भौतिक सृष्टि बनाई। सब बनाकर अपने देह को दो भागों में बांटा आध से वह ब्रह्मा पुरुष हुआ और आधे से नारी। उस नारी में विराट् को सृजा। उस विराट् से मनु हुए। मनु से १० प्रजापति हुए। इन दश प्रजापतियों ने अन्य सात मनु उत्पन्न किये और सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम सिरजे। इतना ही सृष्टि प्रकरण मनुस्मृति में वर्णित है। इस में सन्देह नहीं कि मनुस्मृति में सृष्टि-प्रकरण सर्वथा असङ्गत है यह कह सकते हैं। क्योंकि प्रथम तो "ब्रह्माने सम्पूर्ण सृष्टि की" यह वेद विरुद्ध है। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में बांटा यह कथन नहीं बन सकता। क्योंकि यदि ब्रह्मा ने अपने सम्पूर्ण शरीर को दो भागों में बांट दिया तो ब्रह्मा स्वयं नष्ट होगये। जो पुरुष और स्त्री हुए वे ही ब्रह्मा रह गये जैसे दूध जब दही हो जाता है तब स्वयम् दूध नहीं रहता। फिर उस पुरुष और नारी का क्या नाम हुआ। इस का वर्णन मनुस्मृति में नहीं है। यदि कहो कि जो पुरुष हुआ वह मनु और जो नारी हुई वह शतरूपा तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि आगे कहा है कि इस जोड़ी से विराट् हुआ और उस विराट् से मनु। अन्य पुराणादिकों में मनु की स्त्री शतरूपा मानी गई हैं। यदि यहां ब्रह्मा ने जिस को प्रथम अपने शरीर से विभक्त किया उसे "शतरूपा" मानोगे तो "मनु की पितामही" सिद्ध होगी। शतरूपा की चर्चा मनुस्मृति में कहीं नहीं है। पुनः यदि ऐसा कहो कि ब्रह्मा ने पुरुष नारी बन विराट् को उत्पन्न कर पुनः दोनों को संहार अपना निजरूप धारण कर लिया। यह भी कथन उचित नहीं क्योंकि प्रथम तो इस की आवश्यकता ही क्या थी। और ब्रह्मा ने जिस पदार्थ से आकाश, पाताल, पृथवी, आप, तेज, नदी, समुद्र, सूर्य्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, आदि सृष्ट रची क्या उसी से मनुष्य नहीं बना सकते थे। जैसे विराट्-पुरुष ने अपने सामर्थ्य से मनु को और मनु ने दश महर्षियों को सृष्ट किया क्या यह सामर्थ्य ब्रह्मा जी में नहीं था। अच्छा! ब्रह्मा जी ने तो अपने शरीर के दो भागों में बांट स्त्री पुरुष बन विराट् को

उत्पन्न किया परन्तु मनु जी ने किस सामर्थ्य से दश महर्षि उत्पन्न किये। इन्हों ने अपने देह को दो नहीं किये और न उन्हें स्त्री ही मिली थी। फिर उन्हों ने सृष्टि कैसे की। इस के पश्चात् दश महर्षियों ने सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम रचे। किस अंग से रचे। जब इन सबों में यह शक्ति थी तो क्या ब्रह्मा जी में ही वह शक्ति नहीं रही जो इन को अपना शरीर दो भाग करना पड़ा। यह सब वेद विरुद्ध बात है। अब आगे चलिये। मनुने प्रथम १० प्रजापति उत्पन्न किये। उन दशों ने मनुष्यादि स्थावर जङ्गम सब उत्पन्न किये। अब पूछना चाहिये कि जब इन दशोंने सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम मनुष्यादि बनाये तो ब्रह्माके उत्पन्न किए हुए ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्ण कहां गये ? इन दशों से जो मनुष्य उत्पन्न हुए वे क्या उन चारों वर्णों से पृथक् थे ? परन्तु पृथक् नहीं हो सकते हैं। क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार जगत् में चार ही वर्ण हैं। पञ्चम नहीं। पुनः मनुजी स्वयं विराट् पुरुष से हुए किस अंग से हुए इस का वर्णन नहीं है। इस अवस्था में वे क्या थे ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य वा शूद्र। इन चारों में से किसी में इन की गणना नहीं हो सक्ती। पुनः मनुजी ने जो दश प्रजापति उत्पन्न किये वे किस वर्ण के थे १। इस का भी वर्णन कुछ भी नहीं ये सब भी किस २ अंग से हुए यह भी कथित नहीं है। इन में से कोई शूद्र थे या नहीं। फिर इनही दशों से सारे मनुष्य हुए। अतः सारे मनुष्य की कोई जाति भिन्न २ नहीं हो सकती। इस प्रकार देखते हैं कि मनुस्मृति में क्रम नहीं हैं। यदि यह क्रम मान लिया जाय कि ब्रह्मा से विराट् विराट् से मनु, मनु से मरीचि आदि दश प्रजापति और इन से सारी सृष्टि तो इस अवस्था में ब्रह्मा के बनाए हुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का निर्माण व्यर्थ होजाता है यदि कहो कि प्रथम चार वर्ण बना कर तब ब्रह्माजी ने विराट् मनु और मरीचि आदि को बनाया तो इस में पुनः वही शङ्का होगी कि क्या वे चार वर्ण मनु और मनु के सन्तान से भिन्न हैं। फिर मनु और महर्षि मरीचि आदि के वंश कौन २ हुए। और कौन वर्ण के हुए। इत्यादि शङ्का बनी ही रहती है। इस कारण प्रकरण के देखने से भी सिद्ध है कि मुखादि सृष्टि मनुस्मृति नहीं मानती। यदि मानती तो यह भी वर्णन रहता अमुक ऋषि मुख से हुए और उन का वंश ब्राह्मण कहलाये इसी प्रकार अ-

मुक ऋषि बाहु से, अमुक पुरुष ऊरु से और अमुक पुरुष पैर से उत्पन्न हुए उन को अमुक २ नाम दिये गये। परन्तु यह वर्णन नहीं है। अतः सिद्ध है कि मनुस्मृति भी मुखादि सृष्टि नहीं मानती है। बीच में जो दो चार श्लोक आए हैं वे क्षेपक हैं। अथवा पूर्वोक्त शैली पर उन का अर्थ कर निर्वाह हो सक्ता है धर्म्म शास्त्र का प्रयोजन सृष्टि की उत्पत्ति वर्णन करने का नहीं है। अतः प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि प्रकरण क्षेपक है पुनः आगे चल कर मनुस्मृति कहती है कि:—

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौयशः॥ ६१॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च॥ ६२॥

स्वायम्भुव मनु के वंश में महात्मा और महातेजस्वी छः मनु और हुए जिन्होंने अपनी २ प्रजाएं सृष्ट कीं। वे छओं ये हैं। स्वारोचिष, उत्तम, तामस रैवत, चाक्षुष, और वैवस्वत, इस पर शंका होती है कि इन की सृष्टि कब हुई? और जब ये मनु स्वसृष्टि कर लेते हैं तो ब्रह्माजी के मुखादि से उत्पन्न ब्राह्मणादि वर्ण कहां रहते हैं? पुनः आगे मनुस्मृति में लिखा है कि:—

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठयाद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः॥ ९३॥
तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत्।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये॥ ९४॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥ ९६॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः॥ ९७॥

ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने, और क्षत्रियादिकों में से ज्येष्ठ होने और वेद के धारण करने के कारण धर्म्मतः इस सम्पूर्ण जगत का स्वामी ब्राह्मण है।

स्वयंभू ब्रह्माजी ने तप कर सब के प्रथम अपने मुख से हव्यकव्यग्रहणार्थ और इस समस्त जगत की रक्षार्थ ब्राह्मण को उत्पन्न किया। स्थावर जंगमों में कीटादि प्राणी श्रेष्ठ, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ, बुद्धिजीवियों में नर श्रेष्ठ और नरों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानों में कृतबुद्धि, कृतबुद्धियों में कर्ता और कर्ताओं में ब्रह्म वेदी श्रेष्ठ हैं।

इस में पूछना चाहिये कि भगवान् ने पशुयों में सिंह को बलिष्ठ और श्रेष्ठ बनाया। क्या वह कभी शृगाल भी हो जासकता है। यदि नहीं तब जब स्वभावतः ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए और श्रेष्ठ बने तो सदा उन्हें श्रेष्ठ ही रहने चाहिये। वे निकृष्ट, नीच, क्यों बनजाते? फिर सब ब्राह्मण एक ही प्रकार के होने चाहिये। इन में ऊंचता नीचता क्या और इन का गिरना क्यों? पुनः आगे कहते हैं।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥ अ० २
यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथाऽनृचे हविर्दत्वा न दाता लभते फलम्। ३। १४२

जैसा काष्ठमय हाथी, जैसा चर्म्ममय मृग, वैसा ही अनपढ़ ब्राह्मण है। ये तीन केवल नाममात्र धारण करते हैं जैसे ऊषर खेत में बीज बोकर बोने वाला कुछ फल नहीं पाता। वैसे ही अवेदज्ञ ब्राह्मण में हवि देकर कुछ लाभ नहीं होता।

यहां देखते हैं कि कर्म्म के ऊपर ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता है। यदि स्वभावतः सिंहादिवत् ब्राह्मण श्रेष्ठ है तो अनपढ़ भी श्रेष्ठ बना रह सकता है। फिर अध्ययन से श्रेष्ठता क्यों? यदि अध्ययन से श्रेष्ठता है तो जो मनुष्य अध्ययन करे वह सब ही श्रेष्ठ है। क्याही शोक की बात है। यदि एक शूद्रपुत्र चारों वेद पढ़कर अपने आचरण से भी श्रेष्ठ बनता है तो क्या वह अनपढ़ ब्राह्मण से भी नीच ही बना रहा। जब देश में ऐसे २ अत्याचार फैलते हैं तब भगवान्

का अवश्य कोप होता है। अतः हे विद्वानो ! निःसन्देह अध्ययन से मनुष्यमात्र की श्रेष्ठता होती है। ब्राह्मण वही है जो वेद अध्ययन करे। मैं आगे मनुस्मृति के विषय में लिखूंगा यहां अन्य प्रकरण में जाना उचित नहीं। ये ग्रन्थ सब जब ब्राह्मणादिकों की वंशपरम्पराप्रणाली चलने लगी तब रचित हुए हैं। इस कारण इन में वेदविरुद्ध बहुत सी बातें पाई जाती हैं। इस हेतु सब लोग एक वेद की शरण में आना चाहिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् और महाभारत।

वैशम्पायन—हन्त ते कथयिष्यामि नमस्कृत्य स्वयम्भुवे।
सुरादीना महं सम्यक् लोकानां प्रभवाप्ययम् ॥९॥
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण् महर्षयः।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥१०॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाःप्रजाः।
प्रजाज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥११॥
अदितिर्दिति र्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनिः ॥१२॥
कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत।
एतासां वीर्य्यसम्पन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥१३॥ आदिपर्व ६५

राजा जनमेजय से वैशम्पायन कहते हैं कि हे राजन् ! मैं प्रथम परमात्मा को नमस्कार कर देवादि सब लोगों के जन्म और प्रलय कहूंगा। ब्रह्मा के छः (१) मानस पुत्र हुए। मरीचि १ अत्रि २ अंगिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ मरीचि के कश्यप पुत्र हुए। कश्यप से यह सब प्रजाएं हुई हैं। दक्ष की १३ कन्याएं हुईं। अदिति १ दिति २ दनु ३ काला ४ दनायु ५ सिंहिका ६

(१) प्रजापति वा मनस पुत्रों की संख्या भिन्न भिन्न कही गई है। एक स्थल में ७ दूसरी जगह २१ कही हुई हैं। आगे की टिप्पणी देखिये। और रामायण ३—१४—६ और मनुस्मृति विष्णु पुराणादि को भी इस विषय में देखिये।

क्रोधा ७ प्राधा ८ विश्वा ९ विनता १० कपिला ११ मुनि १२ कद्रू १३। इन कन्याओं के अनन्त पुत्र पौत्र हैं।

अदिति से-द्वादश, आदित्य, (१) धाता, मित्र, अर्य्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु ये द्वादश आदित्य कहाते हैं।

दितिसे-एक ही पुत्र हिरण्यकशिपु।

दनु से-४० पुत्र हुए हैं, विप्रचित्ति, शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, वेगवान्, केतुमान्, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, विश्वपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, एकपाद, एकचक्र, विरूपादी, महोदर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य्य और चन्द्र। इत्यादि इसी अध्याय में देखिये सिंहिका से-राहु। कद्रू से सर्पगण। विनता से-गरुड़ इत्यादि।

अब यहां विचार कीजिये कि ब्रह्मा के छः मानस पुत्र हुए न तो ये मुख से न बाहु आदि से। फिर ये कौन जाति कहलावेंगे। और इन छःवों से ब्राह्मण तथा राजवंश प्रभृति चले हैं। इन से जो वंश चले हैं इन को किसी जाति में नहीं गिन सकते हैं। पुनः महाभारत कहता है।

त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्रा लोके सर्वत्र विश्रुताः।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च सम्वर्तश्च धृतव्रतः॥ ५॥
अत्रेस्तु बहवः पुत्राः श्रूयन्ते मनुजाधिप।
सर्वे वेदविदः सिद्धाः शान्तात्मानो महर्षयः॥६॥ आदिपर्व६६

अङ्गिरा के बृहस्पति, उतथ्य और सम्वर्त, ये तीन पुत्र हुए। और अत्रि के अनेक पुत्र हुए। सब ही वेदवित, शान्तात्मा महर्षि हुए। अत्रि के जो पुत्रादिक हुए वे क्या कहलावेंगे। क्योंकि ये सब मुखादिक से उत्पन्न नहीं हुए।

(१) धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एव च। भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा १५। एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते। आदिपर्व ६५।

' दक्ष और उन की भार्या की उत्पत्ति '

दक्षस्त्वजायताङ्गुष्ठा दक्षिणाद् भगवानृषिः ।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल शान्तात्मा सुमहातपाः ॥ १० ॥
वामादजायताङ्गुष्ठाद् भार्या तस्य महात्मनः ।
तस्यां पञ्चशतं कन्या स एवाजनयन्मुनिः ॥ ११ ॥ आ० प० । २६ ।

ब्रह्माजी के दक्षिण अङ्गुष्ठ से प्रजापति दक्षजी उत्पन्न हुए हे पृथिवीपाल ! वे बड़े शान्त, महातपस्वी, और महर्षि हुए । और ब्रह्मा के वामअङ्गुष्ठ से दक्ष की भार्या उत्पन्न हुई । इन दोनों के संयोग से ५० कन्याएं हुई ।

ददौ स दश धर्माय सप्तविंशति मिन्दवे ।
दिव्येन विधिना राजन् कश्यपाय त्रयोदश ॥ १३ ॥

धर्म को १० कन्याएें । कश्यप को १३ कन्याएं । सोम को २७ कन्याएं दीं ।

अब आप एक आश्चर्य देखें कि दक्षजी अंगुष्ठ से उत्पन्न हुए । और इन्हों ने १३ कन्याएं कश्यप को दीं जिन से यह सब मनुष्य हुए । कश्यपजी मरीचि के पुत्र हैं । अतः इन को मानस पुत्र कहेंगे और अङ्गावयव से उत्पन्न होने से दक्ष शारीरक पुत्र हुए । ये दोनों ही एक प्रकार से मानसिक हैं । इन दोनों वंशों के योग से यह सारी मनुष्य सृष्टि हुई । फिर आप लोग कैसे कह सकते हैं कि मुख से ब्राह्मणादि हुए । इत्यादि ।

भृगु की उत्पत्ति ।

ब्रह्मणो हृदयं भित्वा निःसृतो भगवान् भृगुः ॥ ४१ ॥
भृगोः पुनः कविर्विद्वान् शुक्रः कविसुतो ग्रहः ॥४२॥
अन्य मुत्पादयामास पुत्रं भृगुरनिन्दितम् ॥ ४४ ॥
च्यवनं दीप्ततमसं धर्मात्मानं यशस्विनम् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मा के हृदय से भगवान् भृगु उत्पन्न हुए । भृगु से शुक्राचार्य, और

च्यवन हुए । मनु की कन्या अरुषी से च्यवन का विवाह हुआ उन के और्व पुत्र हुए । और्व के ऋचीक । और ऋचीक के जमदग्नि । जमदग्नि के चार पुत्र हुए । उन में सब से छोटे परशुराम हैं । इस प्रकार भृगु वंशोत्पत्ति है । यह वंश भी ब्रह्मा के मुख से नहीं हुआ इस हेतु इस को भी ब्राह्मण जाति नहीं कह सकते । पुनः ।

दश प्रचेतसः पुत्राः सन्तः पुण्यजनाः स्मृताः ॥ ४ ॥
तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षो दक्षादिमाः प्रजाः ॥ ५ ॥
सहस्रसंख्यान् सम्भूतान् दक्षपुत्रांश्चनारदः ।
मोक्षमध्यापयामास सांख्यज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसन्दधे ।
प्रजापतिः प्रजादक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥ ८ ॥
ददौ दश स धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
कालस्य नयने युक्ताः पञ्चविंशतिमिन्दवे ॥ ९ ॥
त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा ।
मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान् समजीजनत् ।१०।आ०प०७५।

भाव सबका यह है कि प्रचेता के १० दश पुत्र हुए । उनसे दक्ष प्रजापति और दक्ष से यह सब प्राणी । दक्ष के जितने पुत्र हुए उनको नारद ने मोक्ष धर्म्म सांख्य शास्त्र सिखलाया । पुनः दक्ष के ५० कन्याएं हुईं । धर्म को १० कश्यप को १३ और इन्दु को २७ कन्याएं दीं । दक्ष की ज्येष्ठा कन्या से कश्यपने १२ आदित्य उत्पन्न किये ।

इन्द्रादीन् वीर्य्यसम्पन्नान् विवस्वन्तमथापि च ।
विवस्वतः सुतो जज्ञे यमो वैवस्वतः प्रभुः ॥ ११ ॥
मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतःप्रभुः ॥ १२ ॥
यमश्चापि सुतोयज्ञे ख्यातस्तस्यानुजः प्रभुः ।
धर्म्मात्मा स मनुर्धीमान् यत्र वंशः प्रतिष्ठितः ।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ॥ १३ ॥

ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ॥१४॥
ब्राह्मणामानवास्तेषां साङ्गंवेदमधारयन् ॥१५॥ आदिपर्व ७५

विवस्वान् आदित्य के यम और मनु दो पुत्र हुए और मनु से ये सब मनुष्य हुए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र आदि सब ही मनुष्य मनु से उत्पन्न हुए इस हेतु ये 'मानव' कहलाते हैं। उन में ब्राह्मणों ने साङ्ग वेदों का ग्रहण किया।

इस लेख से भी सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादि अङ्ग से ब्राह्मणादि की सृष्टि की कल्पना सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि यहां कहा गया है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के पुत्र कश्यप। उस कश्यप का विवाह दक्ष की कन्या से हुआ। उससे विवस्वान् हुए और विवस्वान् के पुत्र मनु और मनु से ये सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र वंश चले। फिर ब्रह्मा के मुखसे ब्राह्मण हुआ यह बात कहां रही। पुराण के अनुसार 'मानव' शब्द ही बतलाता है कि 'मनुके' सब पुत्र हैं 'मनोरपत्यं मानवः' क्योंकि मनु के पुत्र को ही मानव, मनुष्य वा मनुज आदि शब्दों से व्यवहार करते हैं।

श्रूयतां भरतश्रेष्ठ यन्मां त्वं परि पृच्छसि।
प्रजानां पतयो येऽस्मिन् दिक्षु ये चर्षयःस्मृताः ॥२॥
एकः स्वयम्भूर्भगवानाद्यो ब्रह्मा सनातनः।
ब्रह्मणः सप्त वै पुत्रा महात्मानः स्वयम्भुवः ॥३॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्च महाभागः सदृशो वै स्वयंभुवा ॥४॥
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयंगताः।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वानेव प्रजापतीन् ॥५॥
अत्रिवंशे समुत्पन्नः ब्रह्मयोनिः सनातनः।
प्राचीनबर्हिर्भगवान्तस्मात्प्रचेतसो दश ॥६॥
दशानां तनयस्त्वेको दक्षो नाम प्रजापतिः।
तस्य द्वे नामनी, लोके दक्षः क इतिचोच्यते ॥७॥

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी स्मृते ।
अरिष्टनेमिरित्येके कश्यपेत्यपरे विदुः ॥८॥ शा० प० २०८॥

यहां महाराज युधिष्ठर से भीष्म पितामह कहते हैं कि हे भरत श्रेष्ठ! आप ने जो पूछा है सो सुनो। जो प्रजापतियों के नाम से सुप्रसिद्ध हैं उन का वर्णन करता हूं। आदि में एक ही स्वयम्भू सनातन ब्रह्मा जी हुए। इन के सात मानस पुत्र हुए। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, और वसिष्ठ, (१) अत्रि ऋषि के वंश में प्राचीनवर्हि हुए। प्राचीनवर्हि के प्रचेता एक नाम धारी दश पुत्र हुए। उन दशो प्रचेताओं के एक पुत्र दक्ष हुए। उन के दो नाम हैं। एक दक्ष दूसरा क। मरीचि के कश्यप पुत्र हुए। इनके भी दो नाम हैं अरिष्टनेमि और कश्यप।

भगोऽशश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा।
सविता चैव धाताच विवस्वांश्च महावलः ॥१५॥
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते।
इत्येते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः ॥१६॥
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि।
मार्तण्डस्यात्मजावेतामष्टमस्य महात्मनः ॥१७॥
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः ॥१८॥
आदित्याः क्षत्रियास्तेषांविशश्च मरुतस्तथा ॥२३॥
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः ॥२४॥
इत्येतत्सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम् ॥२५॥ शा० प० २०८॥

(१) आदिपर्व अध्याय ६५ वें में ब्रह्मा के छः हो मानस पुत्र कहे गये हैं। परन्तु यहां वसिष्ठ को बढ़ाकर सात मानस पुत्र माने है। इसी शान्ति पर्व के एक स्थल में २१ एक विंशति प्रजापतियों का लेख है। ब्रह्मा स्थाणुर्मनुर्दक्षो भृगुर्धर्मस्तथायमः। मरीचिरंगिराऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥ वसिष्ठः परमेष्ठोच विवस्वान् सोम एव च। कृतकर्दमश्चापि परेः प्रोक्तः क्रोधोविक्रम एव च एक विंशतिरुत्पन्नास्ते प्रजापतयःस्मृताः॥

कश्यप के भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान् त्वष्टा, पूषा, इन्द्र, और विष्णु, ये बारह पुत्र हुए जो आदित्य कहाते हैं। काश्यप अष्टम विवस्वान् के नासत्य और दस्र दो पुत्र हैं और त्वष्टा के विश्व-रूप पुत्र। इत्यादि। अब आगे देवों में भी ब्राह्मणादि वर्ण कहते हैं। आदित्य-गण क्षत्रिय हैं मरुद्गण वैश्य हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। और अङ्गिरा ब्राह्मण हैं। इस प्रकार देवों में चार वर्ण हैं।

यहां पर भी पूर्ववत् ही प्रायः वर्णन है। यहां विशेष यह देखते हैं कि देवों में वर्ण हैं। ये सब तो मुखादिक से नहीं उत्पन्न हुए हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। परन्तु यज्ञ में बराबर बुलाये जाते हैं। यज्ञ में पूजापाते हैं तब मनुष्य शूद्र पूजा क्यों न पावे। इस प्रकार महाभारत से भी यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि मुखादिक अंग से ब्राह्मणादिकों की सृष्टि हुई। सृष्टि प्रकरण पर ध्यान देना चाहिये। यदि इस से चारों वर्णों की उत्पत्ति मुखादि से सिद्ध न हो तो कदापि नहीं मानना चाहिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् और रामायण।

प्रश्न—क्या वाल्मीकि रामायण से सिद्ध होता है कि ब्रह्माके मुखादि अगों से ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि हुई है ?

उत्तर—नहीं ! देखिये और ध्यान से विचारिये।

सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ॥ ३ ॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥ ४ ॥
आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतो नित्यअव्ययः।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ॥ ५ ॥
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्वयम्।
स तु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ॥ ६ ॥

अयोध्याकाण्ड ११० वें सर्ग में इस प्रकार से सृष्टि का वर्णन है। प्रथम सब जल था। उस पर पृथिवी बनाई तब देवता सहित ब्रह्मा उत्पन्न हुए। वराह हो पृथिवी उद्धार किया और अपने पुत्रों के साथ सब सृष्टि रची। और इस प्रकार वंश चला। ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान्. मनु, इक्ष्वाकु, कुक्षि, विकुक्षि, वाण, अरण्य, पृथु, त्रिशङ्कु, धुन्धुमार, युवनाश्व, मांधाता, सुसन्धि, ध्रुवसन्धि, भरत, असित, सगर, असमंजस, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, ककुत्स्थ, रघु, कल्माषपाद (सौदास) शंखण, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग, मरु, प्रशुश्रुव, अम्बरीष, नहुष, नाभाग, अज, दशरथ, राम इत्यादि उत्तर २ पुत्र जानना अर्थात ब्रह्मा के पुत्र मरीचि मरीचि के पुत्र कश्यप और कश्यप के पुत्र विवस्वान् और विवस्वान् के पुत्र मनु इत्यादि। यहां मुखादि से ब्राह्मणादि वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन नहीं है। और एक आश्चर्य यह है कि यहां मरीचि के प्रपौत्र 'मनु' कहे गये हैं। परन्तु मनुस्मृति में मनु के पुत्र 'मरीचि' माने गये है। (१) यह उलटीबात और मनुस्मृति में विराट् के पुत्र मनु हैं। परन्तु यहां विवस्वान के। यदि कहो कि कल्प २ की बात है तो मैं पूछता हूं कि रामायण में श्री रामचन्द्र की कथा किस कल्प की बात है और मनुस्मृति किस कल्प की है। कल्प का झगड़ा अनभिज्ञ लोगों ने लगाया है। यहां ब्रह्मा ही वराह होकर पृथिवी लेआए हैं। भागवत में ब्रह्मा से वराह भगवान् उत्पन्न हो उन्होंने पृथिवी का उद्धार किया ऐसा वर्णन है। पुनः—

पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन्।
तन्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥ ६ ॥
कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम्।
शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ७ ॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः।
पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेता पुलहस्तथा ॥ ८ ॥

(१) मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। मनु० १। ३५।

दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव ।
कश्यपश्च महातेजास्तेषा मासीच्च पश्चिमः ॥ ९ ॥
प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुताः ।
षष्ठिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥ १० ॥
कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः ।
अदितिं च दितिंचैव दनूमपिच कालकाम् ॥ ११ ॥
ताम्रां क्रोधवशांचैव मनुंचाप्यनलामपि ।
तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ अर० १४

जटायु गृध्र रामचन्द्र से कहते हैं कि हे राम ! पूर्व काल में जो प्रजापति हुए हैं उन सबों के नाम सुनो । ६ । कर्दम, विकृत, शेप, संश्रय, वहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और कश्यप ये १७ प्रजापति हुए (१) । ९ । प्रजापति दक्ष की ६० कन्याएं हुई । उन में से कश्यप ने आठ कन्याएं लीं । अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु (२) और अनला ।

१–अदिति से, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्वी दोनों । २–दितिं से–दैत्यगण ३-दनु से दानवगण । ४- कालका से नरकादि । ५–ताम्रा से पांच कन्याएं इत्यादि वर्णन रामायण में देखिये । अब मनुष्य की उत्पत्ति सुनिये ।

मनुर्मनुष्यान् जनयत् कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥२९॥

कश्यप की स्त्री मनु ने मनुष्यों को उत्पन्न किया है । नरेश राम ! ब्राह्मण

(१) मनुस्मृति में दश प्रजापति कहे गये हैं । उन में मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य आदि हैं ।

(२) यहां आश्चर्य प्रतीत होता है कि 'मनु' नाम की एक स्त्री मानी गई है । और इसी मनु स्त्री से आगे मनुष्य की उत्पत्ति कहा है । जिस कारण 'मनुष्य' मनुज-मानव आदि नाम मनुष्य के हुए हैं । परन्तु अन्य ग्रंथ 'मनु' को पुरुष मानते हैं और उस से मनुष्य की सृष्टि ।

क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रों को मनु नाम की स्त्री ने ही उत्पन्न किया। यहां पर देखते हैं कि कश्यप जी ने अपनी स्त्री मनु से मनुष्यों को क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य शूद्र सबों को उत्पन्न किया। यहां मैथुनी सृष्टि का वर्णन है। इस वर्णन से भी यही सिद्ध होता है कि मुखादि से सृष्टि नहीं हुई यदि कहो कि स्त्री के मुखादिक अङ्गों से ही कश्यप ने ब्राह्मणादिक चारो वर्णों को उत्पन्न किया हो तो यह भी कहना उचित नहीं। क्योंकि प्रथम तो यह घृणित और विरुद्ध बात है और इसका इसमें वर्णन होना चाहिये था कि मनु के वा कश्यप के मुखसे ब्राह्मण हुए। और अन्य ग्रन्थ में ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति मानी है। यदि यहां कश्यप से मानों तो भी अनिष्ट ही होगा। प्रकरण के देखने से प्रतीत होता है कि ब्रह्मा से १७ प्रजापति हुए। दक्ष और कश्यप दोनों भ्राता ही थे। दक्ष की कन्याओं से कश्यप ने विवाह किया। उनमें मनु नाम की एक स्त्री थी। उससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए। जब ये सब उत्पन्न होगये तब पुनः कौनसी आवश्यकता रही कि मुखादिक अङ्गों से पुनः ब्राह्मणादिकों की सृष्टि करते। अतः जहां जहां मुखादिक से सृष्टि का वर्णन है वह ग्रन्थानुसार ही मिथ्या और क्षेपक सिद्ध होता है। उत्तर काण्ड के वर्णन से भी यही सिद्ध होता है यथा—

अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथाप्रभो।
एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः॥ १९॥
तासांनास्तिविशेषोहि दर्शने लक्षणेपि वा॥२०॥उत्तरकांड३०॥

ब्रह्मा जी इन्द्र से कहते हैं कि हे अमरेन्द्र ! मैंने अपनी बुद्धि से ऐसी मानवी सृष्टि की कि सब ही एक वर्ण थे। एकही भाषा थी एकरूप था। दर्शन और लक्षण में कोई भेद नहीं था।

यह भी सिद्ध करता है कि आदि सृष्टि में सब एक प्रकार के थे और मुखादि से सृष्टि नहीं हुई। धीरे धीरे वर्ण बनते गये।

यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो रामायण में अप्रासंगिक सृष्टि प्रकरण प्रतीत होता है। श्री रामचन्द्र को क्रुद्ध देख वसिष्ठ महाराज रामचन्द्र को सृष्टि

प्रकरण सुनाने लगे। यह अयोध्या काण्ड की वार्ता है। क्रोधावस्था में ऐसे कठिन विषय को सुनाना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है और विना प्रश्न कहना भी वसिष्ठ जी के लिये शोभित नहीं है। और जब गृध्रराज मिले तब विना पूछे प्रजापतियों की वंशावली कहने लगे। यह भी कोई प्रसंग नहीं था यह अरण्य काण्ड की वार्ता है। उत्तर काण्ड यथार्थ में वाल्मीकिलिखित नहीं है। रामायण छः ही काण्ड थे पीछे से उत्तर काण्ड किसी ने रच कर रक्खा है। वाल्मीकीय रामायण एक अद्भुत काव्य है। काव्य में प्राकृतिक दृश्य चित्रित किये जाते हैं। न कि न्याय वा सांख्य शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों की कठिन फक्किकाएं हल की जाती हैं। इस हेतु रामायण आदि में सृष्टि प्रकरण सर्वथा क्षेपक ही प्रतीत होते हैं। इस हेतु यह सब अमन्तव्य हैं। परन्तु इस अवस्था में भी ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न हुआ यह प्रकरणानुकूल सिद्ध नहीं होता।

'भागवत और सृष्टि प्रकरण'

प्रश्न—क्या भागवत से सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादि से ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हुए। उत्तर—नहीं। क्योंकि सृष्टि प्रकरण देखने से विदित होता है कि भागवत भी ब्रह्मा के मुखादि अङ्ग से ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि नहीं मानता है। देखिये—

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः॥ ४॥
तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्म्माणो वासुदेवपरायणाः॥५॥ भागवत ३।१२

तृतीयस्कन्ध श्रीमद्भागवत में लिखा है कि मनुष्य सृष्ट्यर्थ प्रथम ब्रह्मा ने सनक, सनन्द, सनातन, और सनत्कुमार, चार मानसपुत्र उत्पन्न किये और उन से कहा कि प्रिय पुत्रो ? प्रजाओं की सृष्टि करो। परन्तु उन्हों ने इस को स्वीकार नहीं किया तब ब्रह्मा जी को अति क्रोध हुआ। इसी अवस्था में ललाट देश से रुद्र उत्पन्न हुआ। इसने ब्रह्मा की आज्ञा से तामसी सृष्टि की। इस से भी ब्रह्मा जी प्रसन्न नहीं हुए तबः—

अथाभिध्यायतः सर्गं दशपुत्राः प्रजज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तान हेतवः ॥२१॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥

प्रजा वृद्धि के लिये ध्यान करते हुए भगवान की शक्ति से युक्त ब्रह्मा जी के १० दश पुत्र हुए । मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष, और दशम नारद, (१) आगे पुनः कहते हैं कि एक कर्दम भी ब्रह्मा की छाया से उत्पन्न हुए । इस से भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब—

एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ।
कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ५२ ॥
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥ ५३ ॥
स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महीष्यस्य महात्मनः ।
तदा मिथुनधर्म्मेण प्रजाह्येधांबभूविरे ॥ ५४ ॥
स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥ ५५ ॥
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ।
आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम् ।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितंजगत् ॥ ५६ ॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए और दैवपर विश्वास करते हुए ब्रह्मा जी का शरीर दो भागों में विभक्त होगया । उन दोनों भागों से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ

(१) मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ मनु० १ । ३५ ॥

यहां दक्ष के स्थान में प्रचेतस है । परन्तु मनुस्मृति में ये १० दशो मनु पुत्र कहे गये हैं ।

उस में जो पुरुष था वह मनु स्वायंभुव और स्वराट् नाम से प्रसिद्ध हुए और जो स्त्री थी वह शतरूपा कहाने लगी (१) जो मनु जी की धर्म्म पत्नी हुई। तब मिथुन धर्म्म से प्रजाएं बढ़ने लगीं। शतरूपा में पांच सन्तान हुए। प्रियव्रत, उत्तानपाद ये दो पुत्र और आकूति, देवहूति और प्रसूति ये तीन कन्याएं। रुचि को आकूति, कर्दम को देवहूति और दक्ष को प्रसूति दी। पुनः आगे कहते हैं।

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृप।
पुत्रिकाधर्म्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥
प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ चतुर्थस्कन्ध १॥

यद्यपि आकूति के दो भाई भी थे तथापि विवाह के समय मनु जी ने यह कहा कि इस में जो पुत्र होंगे उन में से एक पुत्र मैं लूंगा। रुचि ने आकूति में दो सन्तान उत्पन्न किये। एक यज्ञ और दूसरी कन्या दक्षिणा। युवा होने पर यज्ञका अपनी बहिन दक्षिणा से विवाह हुआ। भागवत में कहा गया है जो यज्ञ था वह साक्षात् विष्णु ही थे और जो दक्षिणा थी वह लक्ष्मीजी का स्वरूप था। इस हेतु भाई बहिन में ही विवाह हुआ है। इन दोनों के योग से तोष, प्रतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, खड्ग, सुदेव, और रोचन, ये बारह पुत्र हुए ये तुषित नाम देव कहाते हैं।

(१) नोट—मनुस्मृति में कहा गया है कि ब्रह्मा जो अपने शरीर को दो भागों में बांट स्त्री पुरुष हो उसमें प्रथम विराट् नामक पुत्र को उत्पन्न किया है और उस विराट् ने मनु को। और मनु ने १० प्रजापतियों को यथाः—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो विराट्।
मां वित्तास्य सर्वस्यस्रष्टारंद्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
अहं प्रजाःसिसृक्षुस्तुतपस्तप्त्वोसुदुश्चरम्।
पतीन् प्रजानामसृजंमहर्षीनादितोदश ॥ ३४ ॥ इत्यादि। प्रथमाध्याय ॥

प्रियव्रत आर उत्तानपाद के अनन्तपुत्र पौत्र हुए। कर्दम और देवहूति से कपिल आदि सन्तान हुए "पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा। कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत्" कर्दम कन्या कला ने मरीचि ऋषि के योग से कश्यप और पूर्णिमा दो सन्तान उत्पन्न किये जिनसे यह सम्पूर्ण जगत पूर्ण हुआ। अत्रि के अनुसूया से तीन पुत्र हुए। दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इत्यादि कथा श्रीमद्भागवत में देखिये।

यहां केवल यह दिखलाना है कि भागवत से भी पूर्वोक्त विषय सिद्ध नहीं होता। क्योंकि प्रथम ब्रह्मा के जो सनकादि चार पुत्र हुए उन्हें आप क्या कहेंगे। क्योंकि ये किसी अंग से उत्पन्न नहीं हुए। पुनः मनुजी की भी यही बातें हैं इन को भी चारों वर्णों में से किसी में नहीं गिन सकते हैं। मनुजी से ही आगे सब वंश चले हैं। इसी कारण मनुष्य 'मानव' कहलाये हैं। अतः सम्पूर्ण मनुष्य सृष्टि को भी ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं कह सकते। फिर आप बतलावें कि मुखादि से कौन सा वंश चला।

> उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात् स्वयंभुवः।
> प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचिकरात्क्रतुः ॥२३॥
> पुलहो नाभितोजज्ञे पुलस्त्यःकर्णयोर्ऋषिः।
> अंगिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥
> छायायाःकर्दमोजज्ञे देवहूत्याःपतिः प्रभुः ॥२७॥भा० ३।१२॥

यहां भागवत कहता है कि ब्रह्मा जी की गोदी में से नारद जी, अंगूठे में से दक्ष, प्राण से वसिष्ठ, त्वचा में से भृगु, हाथमें से क्रतु ॥२३॥ नाभिमें से पुलह कर्णसे पुलस्त्य, मुखमें से अंगिरा, नेत्रों से अत्रि, और मन से मरीचि हुए ॥२५॥ ब्रह्मा की छाया से देवहूति के पति प्रभु कर्दम उत्पन्न हुए इत्यादि ॥ २७ ॥

यद्यपि यहां अंगों में से उत्पत्ति का वर्णन है। परन्तु ये ब्रह्म के १० दशों मानसपुत्र हैं। औ इनकी प्रतिष्ठा ऋषियों में हैं। इनको न आप ब्राह्मण न क्षत्रिय. न वैश्य और न शूद्र कहेंगे। ये प्रजापति और मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि इन में कौन शूद्र हैं ? और नारदादिक दशों में से किस का

सन्तान शूद्र हुआ है। प्रत्युत ये दशों ब्राह्मण के ही नाम से पुराणों में उक्त हैं। फिर उत्पत्तिस्थान भिन्न होने पर भी कुछ सिद्ध नहीं हुआ। प्रत्युत आज कल भी देखते हैं इन सबों से सब वर्ण उत्पन्न हुए हैं। अतः भागवत का सिद्धान्त भी ब्राह्मणादिकों को मुखादिकों से उत्पत्ति मानने वाला सिद्ध नहीं होता।

विष्णुपुराण और सृष्टि।

अथान्यान् मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ ४ ॥
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमंगिरसं तथा।
मरीचिं दक्ष मात्रिञ्च वसिष्ठं चैव मानसान् ॥ ५ ॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तु वेधसः ॥ ६ ॥
न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते।
सर्वे ते चागतज्ञाना वीतरागाविमत्सराः ॥ ७ ॥
ततो ब्रह्मात्मसंभूतं पूर्वं स्वायंभुवं प्रभुः।
आत्मान मेव कृतवान् प्रजापालं मनुं द्विज ॥१४॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूत कल्मषाम्।
स्वायंभुवोमनुर्देवः पत्न्यर्थं जगृहे विभुः ॥ १५ ॥
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रकूत्याकूतिसंज्ञितम् ॥ १६ ॥
कन्याद्वयं च धर्मज्ञं रूपौदार्यगुणान्वितम् ॥ विष्णुपुराण १।७॥

ब्रह्माजी ने अपने समान मानस पुत्र उत्पन्न किये। भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि, और वसिष्ठ। ये नव मानसपुत्र ब्रह्माही कहाते हैं। (१) अर्थात् ये नवों ब्राह्मण ही हैं और जो प्रथम सनकादिक सृष्ट

नोट- भागवत में दश मानस पुत्र कहे गये हैं। अथाभिध्यायतः सर्गं दशपुत्राः प्रजज्ञिरे। ३।१२।

हुए वे प्रजोत्पादन में आरुक्त नहीं हुए । तब ब्रह्माजी ने मनु और शतरूपा को प्रकट किया मनु ने पत्नी के लिये शतरूपा का हस्तग्रहण किया । इन दोनों के योग से प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और प्रकृति और आकूति दो कन्याएं हुईं ।

आगे लिखा है कि इन में से ही सारी सृष्टि हुई । विष्णुपुराण में भी कहीं नहीं कहा है कि अमुक मनुष्य वा प्रजापति पैर से उत्पन्न हुए और उन का वंश शूद्र हुआ । आप यहां पर भी देखते हैं कि ब्रह्माजी ने अपने शरीर से उन को उत्पन्न किया और मनु से यह सारी सृष्टि हुई । अब आप विचार करें कि ब्रह्माजी ने कब मुखादिक से ब्राह्मणादिक वर्ण सृजे । यदि सृजे भी तो वे कौन थे उन का क्या नाम था । और भृगु आदिकों से जो आदि सृष्टि में मनुष्य उत्पन्न हुए वे किस वर्ण के हुए इत्यादि पता यदि लगाइये तो किसी पुराण से भी यह सिद्ध नहीं होगा कि अमुक पुरुष ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हुआ इति । संक्षेपतः ।

दुर्जन सन्तोष न्याय को अवलम्बन कर किञ्चित् काल के लिये मान भी लिया जाय कि मुखसे ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हुए । फिर इस से ब्रह्माजी का क्या मनोरथ सिद्ध हुआ ? नहीं । क्योंकि उन्होंने इन में कोई विशेष चिन्ह निर्म्माण नहीं किया । जैसे पशु पक्षी मत्स्यादि को में भिन्नता सूचक एक २ चिन्हविशेष स्थापित किया है वैसा इन मनुष्यों में कोई नहीं । गौ के सिर पर सींग होती है । घोडे वा गदह के सिर पर सींग कदापि नहीं । और उन की आकृति प्रभृति में भी बहुत भिन्नता है जिस से मनुष्य झट पहचान लेता है कि यह घोड़ा है और यह गाय है । इस के पहचान के लिये शास्त्र में कोई झगड़ा नहीं । इसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि में भी कोई विशेष चिन्ह लगा देते जिस से शास्त्रीय द्वन्द्व नहीं होता, जब ब्रह्मा ने इन मनुष्यों में कोई विशेष चिन्ह स्थापित नहीं किया तो ब्राह्मणादिकों को मुखादिक अंगों से उत्पन्न करना भी व्यर्थ ही है ।

पुनः क्या मुख से मलिन पदार्थ नहीं निकलता है ? मुख से उत्पत्ति होने

से ही केवल किसी की श्रेष्ठता नहीं हो सकती है। ब्रह्मा के सब ही अंग पवित्र हैं। जो पुरुष श्रेष्ठ है उस का चरण भी पूज्य ही होता है। लोग चरण की ही पूजा करते हैं। चरण को ही छू कर प्रणाम करते हैं। पुनः देखिये भगवान् के चरण से निकली हुई गंगा कैसी पवित्र मानी जाती है। इस के दर्शन से अपने को लोग कृतकृत्य समझने लगते हैं। इसी प्रकार यदि ब्रह्मा के चरण से शूद्र उत्पन्न है तो वह नीच कैसे हुआ। बल्कि गंगा के समान शूद्रों को आदर सत्कार करना चाहिये। क्योंकि दोनों की उत्पत्ति पैर से है। पुनः पुराणों में इस पृथिवी की पैर से उत्पत्ति मानी है। वह पृथिवी माता के नाम से पुकारी जाती है और धारिणी देवी की पूजा होती है। अतः पृथिवीवत शूद्रों को भी पिता की पदवी मिलनी चाहिये। क्योंकि दोनों पैर से हैं उन में से एक को माता कहें और दूसरे को निरादर करें यह कौनसी मर्य्यादा है

मुखाद्यवयव से उत्पत्ति मानना बड़ी अज्ञानता का विषय है। मैंने यहां प्रसिद्ध २ सब ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि इन ग्रन्थों से भी यह विषय सिद्ध नहीं होता। इस कारण आदि सृष्टि से ही और जन्म से ही यह वर्ण व्यवस्था है ऐसे कहने वाले अपने पक्ष को कदापि सिद्ध नहीं कर सकते। अतः यह सर्वथा त्याज्य है। और "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का तात्पर्य्य भी वे लोग यथार्थ प्रकट नहीं करते। एतदर्थ मैंने इस के आशय को भी यहां प्रकाशित किया है।

मुखज और बाहुज आदि शब्द।

"ब्रह्मा के अथवा ईश्वर के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादिक वर्णों की उत्पत्ति हुई है" ऐसा मत देश में कब से उत्पन्न हुआ। इस का पता लगाना भी कुछ कठिन नहीं। यदि आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों में थोड़ा सा भी हम लोग परिश्रम करें। प्रथम तो आर्षग्रन्थों में चतुर्मुख ब्रह्मा की कहीं भी चर्चा नहीं। और दूसरी बात यह है कि ब्रह्मा विष्णु आदि कोई व्यक्ति विशेष नहीं। वायु के स्थान में ब्रह्मा एक कल्पित देव पौराणिक समय में माना गया है। इस हेतु आर्ष ग्रन्थ जिस समय बने थे उस समय तक यह मत देश में प्रचलित नहीं हुआ

...ा यह सिद्ध होता है। अन्य प्रकार से भी इस की परीक्षा कर सकते हैं। ...त से इतिहासों का पता केवल शब्दों के द्वारा ही लग सकता है। उदाहरण ...ये 'हिन्दू' और 'स्कूल' शब्द को लीजिये। वेद से लेकर कालिदास के ...र्यंत 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है परन्तु मुसलमान के आगमन के पश्चात् के ग्रन्थों में 'हिन्दू' शब्द का और अंगरेज के आने के पिछले ग्रन्थों में 'स्कूल' शब्द का बहुत प्रयोग है। इस से सिद्ध होता है कि मुसलमान के आगमन के पीछे यहां के लोग 'हिन्दू' कहलाने लगे और अंगरेज के राज्य में 'स्कूल' शब्द का प्रचार हुआ है। इसी प्रकार 'मुखज' 'बाहुज' आदि शब्दों से उक्त विषय का निर्णय हम सहजतया कर सकते हैं। आजकल ब्राह्मणवर्ण के लिये मुखज, अग्रज, अग्रजन्मा आस्यज आदि, क्षत्रिय के लिये बाहुज, करज बाहुजन्मा आदि, वैश्य के लिये ऊरव्य, ऊरुज, ऊरुजन्मा, मध्यज, आदि और शूद्र के लिये पज्ज, पादजन्मा, चरणज, अन्त्यज आदि शब्दों के प्रयोग देखते हैं यथा "आश्रमोऽस्त्री द्विजात्यग्रजन्म भूदेव वाड़वाः" द्विजाति, अग्रजन्मा, भूदेव, और वाड़व इत्यादि ब्राह्मणों के नाम "मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्" मूर्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय के नाम "ऊरव्या ऊरुजा अर्या वैश्या भूमिस्पृशो विशः" ऊरव्य, ऊरुज, अर्य, वैश्य, भूमिस्पृक् और विट् आदि वैश्यके नाम "शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः" शूद्र, अवरवर्ण, वृषल और जघन्यज शूद्रों के नाम हैं। यह अमरकोश का वचन है। यहां अग्रजन्मा, बाहुज, ऊरुज, और जघन्यज अर्थात् पादज, शब्दके प्रयोग हैं। "अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्म्माण्यग्रजन्मनः" मनुः। अग्रजन्मा (अग्रे जन्म यस्य सः अग्रजन्मा) सबसे आगे जन्म है जिसका उसे अग्रजन्मा कहते हैं) अर्थात ब्राह्मण के अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह ये छः कर्म्म हैं। 'वत्स वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्लभां। तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः' यह वचन भावप्रकाश का है। हे वत्स काशी जाओ। वहां 'बाहुज' अर्थात जिसकी उत्पत्ति बाहु से हुआ है अर्थात क्षत्रिय, दिवोदास राजा रहता है। "रजकश्चर्म्मकारश्च नटो वरुड एव च। कैवर्त मेद भिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः" ॥ इति यमवचनम् ॥ "प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः" मनु०

"अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि" प्रायश्चित्ततत्त्व । रजक, चर्म्म-कार, नट, वरुड़, कैवर्त, मेद, भिल्ल, ये सातों अन्त्यज हैं । इत्यादि अनेक स्थानों में अग्रजन्मा, बाहुज आदि शब्द मिलतेहैं इससे सिद्ध होता कि इन ग्रन्थों की रचना के समय में मुखादि से उत्पत्ति मानने का सिद्धान्त चल पड़ा था क्योंकि उस अर्थ के सूचक अग्रजन्मादि शब्द भी विद्यमान हैं । परन्तु न तो चारों वेदों में और न उपनिषद् पर्य्यन्त वैदिक आर्षग्रन्थों में अग्रजन्मा बाहुज ऊरुज और अन्त्यज ये चारों शब्द अथवा इस प्रकार के कोई शब्द हैं । इस से स्वतः सिद्ध है कि वेद से लेकर आर्ष ग्रन्थ की रचना के समय तक मुखादि से उत्पत्ति मानने का मत देश में नहीं चला था इस प्रकार शब्द का प्रयोग भी हमें इतिहास सूचित करता है कि मुखादि से उत्पत्ति मानने का सिद्धान्त कब से चला और इस से यह भी सिद्ध होता है कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का अर्थ मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति है ऐसा नहीं करते थे । जब से वैसा अर्थ करने लगे तब से तदर्थ सूचक शब्दों के भी प्रयोग होने लगे ।

प्रश्न—क्या भगवान् के किसी अङ्ग से ब्राह्मणादि वर्णों की उत्पत्ति वेद वर्णन करते हैं ?

उत्तर—नहीं । देखिये । इस शरीर में जो जीवात्मा है वह अनादि है । इस को किसी ने नहीं बनाया । यह अजर अमर है । जो यह शरीर है वह पाञ्च-भौतिक है । और पञ्चभूत प्रकृति के विकार हैं । वह प्रकृति भी अनादि है। प्रकृति और जीवात्मा के संयोग से यह चराचर विश्व बना है । इस में परमात्मा केवल निमित्त कारण है । जैसे मृत्तिकादि सामग्री लेकर कुम्भकार विविध पात्र रचता है वैसे ही सर्वनियन्ता सर्वान्तर्यामी सर्वजनयिता परब्रह्म परमेश्वर अनादि जीव और प्रकृति को लेकर भूर्भुवादि ब्रह्माण्ड रचा करता है । अपने शरीर के मांस रुधिर मज्जा आदि नोंच कर सृष्टि करने की आवश्यकता ईश्वर को नहीं है । इस में ये कारण हैं वेद शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्म निरवयव निर्विकार और सर्वव्यापी है। जब उसका कोई अवयव नहीं है तो किस अङ्ग (अवयव) से सृष्टि बनावेगा । पुनः वह निर्विकार है । यदि वह किसी अङ्ग से मिट्टी आदि निकाल कर सृष्टि रचे तो वह सविकार होजायगा । परन्तु वेद कहता है

कि वह निर्विकार है। इस हेतु वह किसी अङ्ग से भी सृष्टि नहीं रचता है। यदि कहो कि जैसे दूध से दही होजाता है वैसे ही ब्रह्म स्वयं सृष्टि बनजाता है तो यह भी कथन ठीक नहीं है। क्योंकि तो ब्रह्म स्वयं दुग्धवत् नष्ट होजायगा क्योंकि दूध के अस्तित्व नष्ट होने से ही दही बनता है। और यदि सब ब्रह्म ही है तो वेदविहित सर्व साधन भी व्यर्थ होजायँगे। क्योंकि ब्रह्म स्वतः प्राप्त है अथवा स्वयं ही ब्रह्म है अथवा ब्रह्म कोई सृष्टि से भिन्न वस्तु ही नहीं रही जिस की प्राप्ति का परमोपाय किया जाय। अतः यह मत सर्वथा वेद विरुद्ध होने से सब का त्याज्य है। " कृत्स्नप्रसक्ति निरवयवशब्दकोपोवा । वेदान्तसूत्र अ० २। पा० १ सू० २९। इस सूत्र में इसी विषय का कृष्णद्वैपायन ने निर्णय किया है ईश्वर के निरवयवत्व और निर्विकारत्व में सहस्रशः प्रमाण वेद और शास्त्रों में आते हैं परन्तु यहां सृष्टिप्रकरण का निर्णय करना नहीं है। केवल मनुष्यसृष्टि का वर्णन ही अभीष्ट है। तथापि दो एक प्रमाण ये हैं --यथाः

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्" इत्यादि यजुः । " निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् । दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" इत्यादि कठोपनिषद् । "इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव" इत्यादि बृहदारण्यकोपनिषद

२-क्या वेदों में मनुष्य सृष्टि का कुछ वर्णन है ? उत्तर-है। अन्यान्य सृष्टि के वर्णन के समान मनुष्य सृष्टि का भी वर्णन आता है। परन्तु आप लोगों को इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिये कि मनुष्य के लाभ सम्बन्धी विषयों का वर्णन वेदों में अधिक है। जिन से विशेष लाभ नहीं वैसे विषयों का वर्णन वेदों में बहुत न्यून है। मान लीजिये कि आप को मनुष्यसृष्टि का भेद विदित भी हो जाय फिर इस से आप को क्या लाभ पहुंचेगा। निःसन्देह कर्म्म करने से मनुष्य को लाभ पहुंचा करता है। उन का विस्तार पूर्वक वर्णन वेद करते हैं। तथापि मनुष्य की उत्सुकता की निवृत्ति के हेतु भगवान् ने इस का भी संक्षेप निरूपण अपनी वाणी में किया है यथाः।-

स पूर्वया निविदा कव्यताऽयोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्॥ १।९६।२

पूर्वा=पहला। निवित्=मंत्र,ऋचा, ज्ञान। कव्यता=कव्य+ता=ज्ञानविस्तारक। आयुः=जीवात्मा। मनु=मनुष्य। विवस्वान्=सूर्य। चक्ष=चक्षु, नेत्र। द्रविणोदा=सकल पदार्थ देने वाला (सः+कव्यता) परम ज्ञानी वह परमात्मा (पूर्वया+निविदा) पूर्व ज्ञान के साथ अर्थात् पूर्ववत् विज्ञानके साथ (आयोः) जीव के निमित्त (मनूनाम्) मनुष्य सम्बन्धी (इमाः+प्रजाः) इन प्रजाओं को (अजनयत्) उत्पन्न किया करता है। और (विवस्वता चक्षसा) सूर्यरूप नेत्र के साथ (द्याम्) द्युलोक (अपः+च) अन्तरिक्ष पृथिवी आदि की सृष्टि करता है ऐसे (अग्निम्) देदीप्यमान परमात्मा को (द्रविणोदाम्) सकल पदार्थ दाता जान हे मनुष्यो! (धारयन्) स्तुति प्रार्थना के द्वारा धारण करो।

इस का भाव यह है कि पूर्व सृष्टि में जिस ज्ञान के साथ और जिन सामग्रियों से इस मनुष्य जातिको उत्पन्न किया था। वैसा ही किया करता है। इस मन्त्र में किसी अवयव से सृष्टि का वर्णन नहीं है किन्तु ज्ञान वा वेद के साथ मनुष्य सृष्टि का कथन है इसी हेतु मनुष्य सर्वजीवापेक्षया ज्ञानी है। यह प्रत्यक्ष ही है। निविद् में नि और विद् शब्द है। नि=विशेष। अधिक। विद्=ज्ञान। प्राणीमात्र यत्किञ्चित् ज्ञान के साथ उत्पन्न किया गया है। परन्तु मनुष्य अधिक ज्ञान के साथ प्रकट किया गया है। इस से अधिक वेद नहीं बतलाता। यदि मुखादिक से मनुष्योत्पत्ति मानने वाला वेद रहता तो यहां अवश्य इस का वर्णन करता।

यजुर्वेद और सृष्टि।

३ क्या यजुर्वेद मनुष्य सृष्टि का कुछ वर्णन करता है? उत्तर-हां। करता है परन्तु यजुर्वेद केवल यह हम जीवों को उपदेश देता है कि परमात्मा ने ही सब को रचा है। इसी की स्तुति, प्रार्थना, उपसना किया करो। इससे अधिक नहीं परन्तु किस सामग्री से मनुष्य रचा और किस को पहले उत्पन्न किया किस प्रकार से किया इत्यादि विशेष वर्णन नहीं करता है।

१ एकयाऽस्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापति रधिपति रासीत्।
२ तिसृभिरस्तुवत ब्रह्माऽसृज्यत ब्रह्मणस्पति रधिपतिरासीत्।

३ पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानांपति रधिपतिरासीत्।
४ सप्तभिरस्तुवत सप्तऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधिपतिरासीत्।२८।
यजु० । १४ ॥

अर्थः-हे मनुष्यो ! (एकया) एक सत्य वाणी से उसी परमात्मा की (अस्तुवत) स्तुति करो । क्योंकि इसी ने (प्रजाः अधीयन्त) हम तुम प्रजाओं को विद्या पढ़ाई है अर्थात् जिस ने स्तुति प्रार्थना के लिये वेद वाणी को मनुष्यों में दिया है उस की स्तुति प्रार्थना करो । अथवा जिन्हों ने सब प्रजाएं उत्पन्न की हैं 'अधीयन्त' का उत्पन्न करना भी अर्थ है । और वही (प्रजापतिः+अधिपतिः+आसीत्) प्रजाओं का पति और अधिपति भी है ॥१॥ (तृसभिःअस्तुवत) हे मनुष्यो ! ऋग, यजु, और साम इन तीनों से उस की स्तुति करो क्योंकि उसी ने (ब्रह्म+असृज्यत) वेद अथवा वेद के तत्त्वज्ञ अध्ययन-अध्यापन कर्ता पुरुष को उत्पन्न किया है और वही (ब्रह्मणस्पतिः अधिपतिः आसीत्) वेद और ब्राह्मण दोनों का पति और अधिपति है ॥२॥ हे मनुष्यो ! (पञ्चभिः+अस्तुवत) पृथिवी, अप् , तेज, वायु और आकाश इन पांचों महाभूतों के द्वारा उस की स्तुति करो । क्योंकि उसी ने (भूतानि असृज्यन्त) पञ्च महाभूतों को प्रकाशित किया है और वही (भूतानाम्+पतिः +अधिपतिः+आसीत्) महाभूतों का पति और अधिपति है ॥३॥ हे मनुष्यो! (सप्तभिः+अस्तुवत) दो आंख, दो कान, दो घ्राण और एक जिह्वा इन सातों के द्वारा उसी की विभूति आंखों देखो, कानो सुनो, घ्राणों सूंघो और जिह्वा से गाओ । उसी ने (सप्तऋषयः) चक्षुरादि सातों ऋषियों को प्रकट किया है और वही (धाता+अधिपतिः+आसीत्) उन का धाता और अधिपति है। 'सप्तर्षि' नाम इन्द्रियों का बहुधा आया करता है ।

५ नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्त ऽदितिरधिपत्न्यासीत्।
६ एकादशभिरस्तुवत ऋषयोऽसृज्यन्ताऽऽर्त्तवा अधिपतयआसन्।

अस्तुवत=मैंने कई एक स्थान में कहा है कि वेदों में लिङ्लङ्लुङ् सर्व काल में होता है । और वचन का भी व्यत्यय होता है ।

७ त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त सम्वत्सरोऽधिपतिरासीत्
८ पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् ।
९ सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पति रधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥ यजु० १४ ॥

अर्थ–हे मनुष्यो ! (नवभिः+अस्तुवत) इस शरीर में दो आंखें दो कान दो घ्राण, एक मुख, एक मूत्रोत्सर्गेन्द्रिय और एक पुरीषोत्सर्गेन्द्रिय ये नव द्वार हैं इन पर शरीर निर्भर है। इन नवों द्वारों से संयुक्त शरीर के द्वारा उसी की सेवा करो। क्योंकि (पितरः+असृज्यन्त) उसी ने इन द्वारों को बनाया है। "इन नव द्वारों का नाम पितर है क्योंकि इस शरीर की रक्षा ये सब करते हैं"। इन पितरों की माता (अदितिः) अखण्डनीय परमात्मा ही है और वही अदिति (अधिपत्नी+आसीत्) अधिपत्नी=अधिपति है ॥ ५ ॥ (एकादशभिः अस्तुवत) हे मनुष्यो ! पृथिवी पर कहीं कहीं ११ ऋतु होते हैं इन एकादश ऋतुओं की विभूति के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि उसी ने (ऋतवः+असृज्यन्त) ऋतु प्रकट किये हैं। और वही (आर्तवाः+अधिपतयः+आसन्) ऋतुव्यापक अधिपति है ॥ ६ ॥ (त्रयोदशभिः अस्तुवत) १३ त्रयोदश मासों के द्वारा भी उसी के गुण का अध्ययन करो। क्योंकि इसी ने (मासाः+असृज्यन्त) मास प्रकट किये हैं और वही (सम्वत्सरः) मासों में निवास करने वाला उन का अधिपति है ॥ ७ ॥ (पञ्चदशभिः+अस्तुवत) पन्द्रह प्रकार के बलों के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि (क्षत्रम्+असृज्यत) बल, वीर्य्य, शक्ति और बलवीर्य्यादिसम्पन्न मनुष्य को उसी ने सिरजा है और वही (इन्द्रः+अधिपतिः+आसीत्) परमैश्वर्य्यशाली परमात्मा उस बलधारी पुरुष का भी शासनकर्ता अधिपति है ॥८॥ (सप्तदशभिः+अस्तुवत) १७ सप्तदश प्रकारों के पशुओं की रचनाकौशल के द्वारा उसी की स्तुति करो क्योंकि उसने (ग्राम्याः+पशवः+असृज्यन्त) ग्राम्य पशु उत्पन्न किये हैं और वही (बृहस्पतिः+अधिपतिः आसीत) बृहस्पति परमात्मा उन पशुओं का अधिपति है ॥ ९ ॥

१०–नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपती आस्ताम्

२१–एकविंशत्याऽस्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्
२२–त्रयोविंशत्याऽस्तुवत क्षुद्राःपशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्।
२३–पञ्चविंशत्याऽस्तुवताऽऽरण्याःपशवोऽसृज्यन्तवायुरधिपतिरासीत्
२४–सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायंस्त एवाधिपतय आसन् ॥ ३० ॥ यजु० १४ ॥

(नवदशभिः+अस्तुवत) १९ नवदश प्रकार की विभूति के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि उसी ने (शूद्रार्य्यौ) शूद्र और अर्य्य अर्थात् वैश्य दोनों को प्रकट किया है। इन के (अहोरात्रे+अधिपती+आस्ताम्) दिन और रात अधिपति हैं इत्यादि।

यहां पर आप देखते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन तो नहीं है किन्तु ईश्वर की विभूति का विवरण है। इस के साथ २ कथित हुआ है कि क्या मनुष्य, क्या पशु, क्या सम्पूर्ण जगत् इस सब का अधिपति और स्रष्टा परमात्मा ही है। वही प्रार्थनीय उपासनीय है। यहां पर भी मुखादि से उत्पत्ति का वर्णन नहीं है।

प्रश्न–क्या अथर्ववेद में मनुष्य की सृष्टि का कुछ वर्णन है ?

उत्तर–है ! प्रसंगतः कई एक स्थलों में सृष्टि का वर्णन आया है कि उसी परमात्मा की कृपा से यह सम्पूर्ण जगत् आविर्भूत हुआ। यहां उन मन्त्रों को भी दरसाऊंगा जिन को लोग सृष्टिप्रकरण में लगाते हैं परन्तु यथार्थ में सृष्टि बोधक हैं नहीं। यथाः—

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ अथर्व अ०११। ७। २७॥

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा ये सब उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए और उसी के आश्रित सब हैं।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥अथर्व०४। ६। १॥

(प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (दशशीर्षः) दशमस्तिष्क (दशास्यः) दशमुख

(ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता (जज्ञे) उत्पन्न होता है (सः+प्रथमः) वह ब्रह्मवित सर्वश्रेष्ठ पुरुष (सोमं+पपौ) सब पदार्थ का भोग करता है वह (विषम्+अरसम्+चकार) विषमय पदार्थ को अरस अर्थात् निर्वीर्य्य करता है ।

भाव इसका यह है कि वेद, ईश्वर और ईश्वरीय पदार्थों के तत्त्व के जानने वाला 'ब्राह्मण' कहलाता है । वह अन्यान्य क्षत्रिय वैश्यादि मनुष्यों की अपेक्षा कम से कम दश गुणा शिर अर्थात् बुद्धि रखता है अतः ऐसे ब्रह्मवित पुरुष को 'दशशीर्ष' और 'दशास्य' कहते हैं । यथार्थ में ऐसा ही ब्रह्मवित सर्वपदार्थाधिकारी है और वह विषमय पदार्थको भी अपनी बुद्धि से अच्छा बना लेता है । यहां केवल ब्रह्मवित पुरुष की प्रशंसा मात्र का कथन है । यथार्थ में सृष्ट्युत्पत्ति कथन से तात्पर्य्य नहीं ।

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ अथर्व १५।८।१

(सः) वह (अरज्यत) प्रजाओं के साथ सर्वथा रक्त अर्थात् सर्वथा मिश्रित होता है (ततः) अतः वह (राजन्यः+अजायत) राज्यन्य होता है । अर्थात् राजन्य वा राजा वही बनाया जाता है जो प्रजा के साथ मिलकर राज्यकार्य्य साधन करता है । यह भी सृष्टि का निर्णायक नहीं । प्रसंगतः राजा कौन होता है इस का निरूपण है ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥ श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते । तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥ अतो वै ब्रह्म च क्षत्रंचो दतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥ ३ ॥ अथर्व० । १५ । १० ॥

इस प्रकार ब्रह्म को जानता हुआ व्रतोपेत अतिथि यदि राजा के गृह पर आवे तो उस को अपने से श्रेष्ठ माने, मनवावे । जिस से कि उस के क्षात्रबल और राज्य के लिये कोई क्षति न पहुंचे । इसी से ब्रह्म और क्षत्र अर्थात् ब्रह्मबल और क्षत्रबल उत्पन्न हुए हैं । भाव यह है कि वेदाध्ययन, सत्यग्रहण और

धर्म्मरक्षादि के लिये ही ब्राह्मण क्षत्रिय होते हैं। यदि उसी की रक्षा नहीं हुई तो पुनः इन का होना ही किस काम का। अतः जो व्रती अतिथि गृह पर आवें उन का पूरा सत्कार करना चाहिये। यहां (उदतिष्ठताम्) का अर्थ यथार्थ में उत्पन्न होना नहीं है।

इस प्रकार वैदिक मन्त्र हमें अनेक स्थलों में उपदेश दे रहे हैं कि उसी परमात्मा से मनुष्य की भी सृष्टि हुई है। परन्तु मुखादिकों से ब्राह्मणादिक उत्पन्न हुए हैं ऐसा कहीं भी वर्णन नहीं पाते हैं। इस हेतु "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत" का भी वैसा अर्थ करना उचित नहीं है। यहां मैंने तीनों वेदों के प्रमाण दिखलाये हैं। सामवेद ऋग्वेद के ही प्रायः अन्तर्गत है। अतः उस के उदाहरण की आवश्यकता नहीं। पुनः मैं आप लोगों से यह कहना चाहता हूं कि वेद केवल लाभदायक पदार्थ का निरूपण करता है। यह सारी सृष्टि भगवान् के अंग से या किसी अन्य पदार्थ से बनी, इस से मनुष्यों को कुछ विशेष लाभ नहीं अतः इस विषय को विशेष रूप से निर्णय वेद नहीं करता।

दूसरा कारण इस में यह है कि मनुष्यजाति को ज्ञानविज्ञानसहित ही ईश्वर ने प्रकट किया है यह निर्विवाद है। इस हेतु यदि सब भेद प्रथम ही ईश्वर इस को बतादेता तो दिए हुए ज्ञानविज्ञान व्यर्थ हो जाते। मनन के लिये इस को कोई पदार्थ ही नहीं रहते। अतः ऐसे ऐसे विषयों को अपनी बुद्धि से मनुष्य निर्णय करे जिससे उस का पुरुषार्थ का परिचय हो और बुद्धि की उन्नति हो लोक में यशस्वी और बुद्धिमान् गिना जाय। ईश्वर की भी महिमा प्रकट हो। इत्यादि गूढ़ अभिप्राय से ईश्वर ने सृष्टि के भेद को सर्वथा नहीं खोला। परन्तु इस के जानने के लिये मनुष्य में बड़ी अभिलाषा उत्पन्न की है और वेदों में आज्ञा भी दी है कि अपने पुरुषार्थ से अपने मनन निदिध्यासन के बल से ऐसे २ विषयों को खोज करो और जानो और अतिसंक्षेप से इसका भेद किञ्चितमात्र खोल भी दिया है, मैं यहां दो एक उदाहरण देता हूं जिन पर आप लोग विचार करें।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥
ऋग्वेद १० । १२९ ॥

परमार्थ रूप से इस सृष्टि को कौन जानता कौन व्याख्यान कर सकता है कहां से यह विविध सृष्टि आई ? विद्वान् लोग भी इस सृष्टि के पीछे हुए हैं तब वे इस को कैसे जान सकते हैं ? कौन जानता है कि यह कहां से आया ॥६॥ जहां से यह विविध सृष्टि होती है जो इस को धारण करता वा नहीं करता । जो इस का अध्यक्ष है वही जानता वा नहीं जानता । जो इस में व्यापक हो कर रमा हुआ है इत्यादि अर्थात् सृष्टिज्ञान अति कठिन है इस को तत्त्वतः वही जानता है अन्य कोई नहीं । उसी ने इस को धारण कर रक्खा है दूसरा कोई इस को धारण नहीं कर सकता । यहां पर सृष्टि की दुर्बोधता कही है और दूसरी जगह इस के जानने को उत्सुकता दरसाते हैं ।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्म्मा विद्यामौर्णोन्महिनाविश्वचक्षाः॥१८॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानिधारयन्॥१९॥
यजु० अ० १७ ॥

सृष्टि रचने के समय उस ईश्वर को बैठने के लिये कौनसा अधिष्ठान अर्थात् निवासस्थान था ? और आरम्भ करने के हेतु कौन की सामग्री थी ? जिस से विश्वकर्म्मा विश्वद्रष्टा परमात्मा ने इस भूमि और द्युलोक को उत्पन्न कर सब को आच्छादित किया है ॥ १८ ॥ कौन वन और कौन वह वृक्ष है जिस से इस द्यावापृथिवी को ईश्वर ने अलंकृत किया है । हे मनीषी विद्वानो ! आप यह भी मन से विचार कर पूछो कि भगवान् इस भुवन को धारण करता हुआ जिस के ऊपर स्थित है वह कौनसा स्थान है । इत्यादि अनेक मंत्रों के द्वारा सृष्टि को जानने के लिये मनुष्य में उत्सुकता प्रकट की है । और:—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥१९यजु०१७

"तम आसीत्तमसा गूढमग्रे" ॥ ऋ० १० । १२९ । ३ ॥

"ब्रह्मणस्पतिरेता संकर्म्मार इवाधमत्।
देवानां प्रथमे युगेऽसतः सदजायत" ॥ १० । ७२ । २ ॥

इत्यादि ऋचाओं से सूचित किया है कि प्रकृतिजन्य यह सम्पूर्ण जगत् है। इस को अच्छे प्रकार अन्वेषण करो। तुम्हें इतनी बुद्धि दी है कि तुम इस के तत्त्व को स्वयं जान सकते हो। इत्यादि। यहां केवल मनुष्य सृष्टिका ही वर्णन करना है इस हेतु इन ऋचाओं का व्याख्यान नहीं किया है।

इस प्रकार परमकल्याणकरी मातृपितृभूत वेद सिखलाते हैं कि परमात्मा ही मनुष्यजाति का उत्पन्न करने वाला है अन्य कोई नहीं। अतः इसीको माता पिता मान सदा उपासना किया करो। कतिपय अज्ञानी वेद शास्त्रों के यथार्थ अभिप्राय को न जान सुन अनेक विवाद उपस्थित करते हैं। कोई कहते हैं मनु और शतरूपा देवी से सारी सृष्टि हुई। कोई प्रलाप करते हैं कि सूर्य्य और चन्द्र से ये क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं इस कारण सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी राजा पृथिवी पर बड़े पवित्र हैं। कोई यह भाषण करते हैं कि प्रथम कश्यप हुए और उन की अदिति, दिति, दनु, कद्रू, विनता आदि कई एक भार्याएं हुईं। इन्हीं से यह चराचर विश्व उत्पन्न हुआ, इसी हेतु "काश्यपा इमाः प्रजाः" यह वाक्य अभी तक सुप्रसिद्ध है। अन्यान्य पुरुष यों प्रमाण देते हैं कि हम लोग अग्नि-वंशी हैं। हमारे पूर्वज अग्नि से उत्पन्न हुए इस हेतु हम सब से पवित्र हैं। दूसरे कहते हैं कि हम नागवंशी हैं। शेषनाग से हमारी उत्पत्ति है इत्यादि अनेक प्रवाद यहां विद्यमान हैं इन की संक्षिप्त समालोचना आप लोगों के विस्पष्ट बोधार्थ करता हूं।

शतरूपा और मनु ॥

प्रथम यह प्रश्न होता है कि "मनु और शतरूपा की कथा कहां से उत्पन्न

हुई है" उत्तर—पुराणों से। प्रायः सब पुराण शतरूपा की आख्यायिका का वर्णन करते हैं यहां दो एक पुराणों से इस को दिखलाते हैं:—

एतत् तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद्वेधा अजीजनत् ॥ ३२ ॥
सावित्री लोकसिद्ध्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः ।
ततः संजपतस्तस्य भित्वा देहमकल्मषम् ॥ ३३ ॥
स्त्रीरूपमर्धमकरोदर्धंपुरुषरूपवत् ।
शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते ॥३४॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप ।
ततः स ब्रह्मदेवस्तामात्मजामित्यकल्पयत् ॥३५॥
....
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत् कामवाणार्दितो विभुः ।
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम् ॥४९॥
ततःकालेन महता ततःपुत्रोऽभवत् मनुः ।
स्वायम्भुव इतिख्यातः सविराडिति नः श्रुतम् ॥ ५० ॥
मत्स्यपुराण अ० ३ ॥

कथा का भाव यह है कि जब ब्रह्मा जी तत्त्वात्मक दो प्रकार की सृष्टि कर चुके तब लोक की सिद्धि के लिये सावित्री को हृदय में रख कर समाधिस्थ हुए। तब तप करते हुए ब्रह्मा जी ने अपने पवित्र शरीर को दो भागों में बांट आधे को स्त्रीरूप और आधे को पुरुषरूप बनाया। जो स्त्री हुई उस के नाम शतरूपा, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, और ब्रह्माणी आदि हुए, उस सावित्री की सुन्दरता पर मोहित हो उससे विवाह किया। बहुत दिन व्यतीत होने पर शतरूपा में ब्रह्मा जी के एक पुत्र मनु उत्पन्न हुए। जो "स्वायम्भुव" कहलाते हैं और हम लोग सुनते आते हैं कि वह विराट् भी कहलाते हैं। इस कथा का तात्पर्य्य मैंने त्रिदेवनिर्णय में ब्रह्मा के प्रकरण में किया है। देखिये! यहां स्मरण रखना चाहिये कि शतरूपा ब्रह्मा की स्त्री और मनु की माता मानी गई है परन्तु भागवत विष्णुपुराण और अन्यान्य पुराण भिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं और शतरूपा को मनु की स्त्री कहते हैं। आगे देखिये:—

या सा देहार्धसंभूता गायत्री ब्रह्मवादिनी ।
जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ॥ २३ ॥
रतिर्मनस्तपो बुद्धिर्महदादिसमुद्भवा ।
तथाचशतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ॥ २७ ॥
ये मरीच्यादयः पुत्राः मानसास्तस्यधीमतः ।
तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥ २८ ॥
ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ।
सनत्कुमारञ्च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ २९ ॥

सो जो अर्धदेह संभूता गायत्री ब्रह्मवादिनी है और मनु की जननी है वह शतरूपधारिणी और शतेन्द्रिययुक्ता है। वही रति, मन, तप आदि भी है। उसी शतरूपा में अन्यान्य सात पुत्र हुए। इत्यादि कथा मत्स्यपुराण चतुर्थाध्याय में देखिये:—

विष्णु पु० भागवत पु० और शतरूपा ।

ततो ब्रह्मात्मसंभूतं पूर्वं स्वयम्भुवं प्रभुम् ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापालं मनुं द्विज ॥१४॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायंभुवोमनुर्देवः पत्न्यर्थं जगृहे विभुः॥१५॥विष्णु पु० १।७॥

ब्रह्मा जी ने आत्मसंभूत आत्मस्वरूप मनु जी को प्रजापालक किया है। और मनु ने तपोनिर्धूतकल्मषा "शतरूपा" नारी को पत्न्यर्थ ग्रहण किया। यहां विस्पष्ट है कि शतरूपा मनु की धर्मपत्नी है। पुनः—

एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ।
कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥५१॥
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनंसमजायत ।
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् ॥५२॥

स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ।
तया मिथुनधर्म्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे ॥९३॥

इस प्रकार ब्रह्मा को कार्य करते हुए और देव को देखते हुए उन के शरीर दो भाग हो गये । इन दोनों से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ । जो पुरुष हुआ वह मनु स्वायम्भुव और स्वराट् कहलाया और जो स्त्री हुई वही शतरूपा नाम से प्रसिद्ध होकर मनु की महिषी अर्थात् धर्म्मपत्नी हुई । तब मिथुन धर्म से प्रजाएं बढ़ने लगीं । यहां पर भी मनु की स्त्री शतरूपा कही गई है ।

आश्चर्य्य यह है कि जब ब्रह्मा जी का शरीर दो हिस्सों में विभक्त होकर एक मनु और दूसरा शतरूपा बन गया तो स्वयं ब्रह्मा जी कहां रहे । अर्थात् जब तक्षा (बढ़ई) किसी एक लकड़ी को दो टुकड़े करता है तो वह पहली लकड़ी अपने स्वरूप में विद्यमान नहीं रहती । इसी प्रकार ब्रह्मा जी का शरीर जब दो टुकड़ा हो गया तो स्वयं ब्रह्मा जी बिचारे तो नष्ट हो गये उन की जगह में मनु और शतरूपा रहगई । तब पुनः सृष्टि करने वाला कौन रहा ? इस प्रकार देखते हैं तो पौराणिक सिद्धान्त सर्वथा वेदविरुद्ध होनेसे त्याज्य है । अब 'शतरूपा' पर मीमांसा कीजिये । मत्स्यपुराण कहता है कि मनु की माता शतरूपा है । परन्तु विष्णु और भागवत पुराण कहते हैं कि मनु की पत्नी शतरूपा है । इन दोनों में कौन सत्य ?। वास्तव में लोग जैसा समझ रहे हैं वैसा "शतरूपा" शब्द का भाव नहीं । पुराण पदे पदे भूल करते हैं इन पुराणों के देखनेसे एक बात मालूम होती है कि पुराणों के पूर्व ही 'शतरूपा' की आख्यायिका देश में चल पड़ी थी और इस का कुछ अन्य ही आशय था । पुराणों ने इस को न समझ कर भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ प्रकार से कह दियाहै । 'शतरूपा' यह नाम प्रकृति का है । "शतं रूपाणि यस्याः सा शतरूपा" जिस के सैकडों रूप हैं उसे शतरूपा कहते हैं । "शतरूप धारिणी प्रकृति कैसे है" इस को इस प्रकार जानना चाहिये । यह सम्पूर्ण विश्व जड़ प्रकृति और चेतन जीवात्मा के योग से हुआ है । ईश्वर इस का उत्पादक है अर्थात् प्रकृति जीव और ब्रह्म ये ही तीन पदार्थ हैं । इन में जीवात्मा और परमात्मा अविकारी है । ये दोनों सदा एकरूप से ही विद्यमान रहते हैं । केवल प्रकृति ही विकारिणी है । इसी एक प्रकृति का यह सारा जगत् परिणाम

है। अर्थात् एक ही कोई पदार्थ है उस का परिणाम कहीं आग है, कहीं पानी है, कहीं श्वेत है कहीं कृष्ण है। वही प्रकृति कहीं परम सुन्दर मेघ-घटा और मयूर-शरीर बनी हुई है और कहीं कुरूप उलूक और भयङ्कर व्याघ्र देह है। इस प्रकार एक ही प्रकृति विविधरूप वाली है। अतः इसी प्रकृति का नाम शतरूपा है। इसी कारण मत्स्यपुराण कहता है कि "जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया"। मालूम होता है कि मत्स्यपुराण अलङ्कार को समझता था और अलङ्कार में सर्व विषय का वर्णन किया है। अब रह गये मनु। ऐसे २ स्थलों में 'मनु' नाम जीवात्मा का है जो मनन करे उसे 'मनु' कहते हैं। अब जो मत्स्य पुराण में शतरूपा को मनु की माता मानी है एक प्रकार से घट सकता है। क्योंकि प्रकृति देवी ने ही जीवात्मा को भी प्रकट किया है। प्रकृतिजन्य लिङ्ग अथवा स्थूलशरीर के साथ ही यह जीवात्मा दृश्य होता है। इस हेतु मनु जो जीवात्मा उस की माता जननी शतरूपा है। ऐसे यह घट सकता है और कहीं जो शतरूपा को मनु की पत्नी कही है यह भी एक प्रकार से होसकता है क्योंकि पत्नी नाम सहायक अथवा पालयित्री शक्ति का है। अथवा यहां उपमार्थ लेना चाहिये। जैसे लोक में स्त्री पुरुष के योग से सन्तान होता है। वैसे ही जीवात्मा और प्रकृति के संयोग से यह सृष्टि होती है। इस कारण जीवात्मा मनु को पति और प्रकृति शतरूपा को पत्नी कही है यही इस का तात्पर्य पूर्व था। इस को न समझ कर पुराणों ने इन दोनों को सचमुच दो व्यक्तिएं मानली हैं और लोग आजकल वैसा ही मानते भी हैं। यह पुराणों की अथवा समझने वालों की सर्वथा भूल है। विद्वानो ! इस प्रकार समीक्षा करने से मनु और शतरूपा कोई व्यक्तिविशेष सिद्ध नहीं होता, किन्तु अज्ञानी पुरुषों को समझाने के लिये एक अलङ्कार मात्र कहा है। जब मूल पुरुष मनु और शतरूपा ही कोई पुरुष स्त्री सिद्ध नहीं होते तो इन के वंश की सिद्धि कैसे हो सकती है। इति संक्षेपतः।

मनु और वेद॥

इसी प्रसंग से 'मनु' शब्द पर भी विचार करना आवश्यक समझता हूं। 'शतरूपा' पद वेदों में नहीं है परन्तु वेदों में 'मनु' शब्द के प्रयोग बहुत हैं।

मनु के विषय में अनेक वाद विवाद हैं। यथार्थ में क्या कोई 'मनु' नामक पुरुष हुआ है यह प्रश्न यहां उपस्थित होता है। लोग कहते हैं कि जो सब से पहला मनुष्य उत्पन्न हुआ ईश्वर ने उसका नाम 'मनु' रक्खा और इसी कारण मनुष्य को 'मनुज, मानव, मनुष्य' आदि कहते हैं। मनु के नाम पर एक परम प्रसिद्ध धर्म्म शास्त्र भी है जिस से भारतवर्षीय लोगों का ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों कार्य्य सिद्ध होते हैं। प्रथम वेदों से मनु सम्बन्धी अनेक उदाहरण सुनाते हैं।

'वेद और मनु'

(१) या मथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत । १ । ८० । १६ ॥

(अथर्वा) अथर्वा (पिता+मनुः) पिता मनु और (दध्यङ्) दध्यङ् ये सब (याम्+धियम्) जिस कर्म्म वा बुद्धि को (अत्नत) लोकोपकारार्थ विस्तारित करते हैं। उसका अनुकरण सब कोई करें।

यहां "अथर्वा" "दध्यङ्" ये दोनों नाम ऋषि, आचार्य्य, विद्वान् आदि के हैं। थर्वा=हिंसा। अ=नहीं। "न विद्यते थर्वा हिंसा यस्य" अर्थात् अहिंसाव्रत-प्रचारक ऋषि का नाम "अथर्वा" है। "दधातीति दधिः परमेश्वरः दधि मञ्चति पूजयति तत्त्वतोजानाति वा स दध्यङ्" जो सचराचर जगत् का धारण करने वाला है वह 'दधि' अर्थात् धाता विधाता उसकी जो पूजा करे करावे वा तत्त्वतः उसको जाने उसे 'दध्यङ्' कहते हैं अर्थात् एक ईश्वर की उपासना का प्रचारक (१)

(१) "तमुत्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्" बहुत आदमी शङ्का करेंगे कि इस ऋचा से प्रतीत होता है कि अथर्वा ऋषि के पुत्र दध्यङ् ऋषि हैं। इस हेतु अथर्वा और दध्यङ् ये दोनों नाम किन्हीं विशेष ऋषियों के हैं। उसका समाधान यह है कि जब मीमांसा शास्त्र वेदों में इतिहास नहीं मानता है तब हम लोग कैसे मान सकते हैं। दूसरी बात यह है कि ये सब ऋषि वेद के प्रचारक हुए हैं। इन के प्रथम वेद विद्यमान थे फिर इन के नाम उनमें कैसे आसकते हैं। इस हेतु मैंने वारम्बार कहा है कि वेदों में यौगिकार्थ लेना चाहिये। वैदिक शब्दों के नाम पर ही पीछे लोग अपना २ नाम रखने लगे और वैदिक शब्दों के ऊपर गाथा बनाने लगे इस हेतु आज पदे २ भ्रम प्रमाद उपस्थित होता है।

"मनु" यह नाम "आर्य्यसभापति" का है। मैं प्रथम कह चुका हूं कि आवश्यकता आने पर आर्य्यों को एक महतीसभा बैठानी पड़ी। वेदों में लक्षण देख के उस सभा का एक पुरुष अधिपति बनाया गया। और उस को 'पितामनु' की पदवी दी गई। इस के अनेक लक्षण वेदों में पाए जाते हैं। इस का आगे वर्णन भी होगा। इसी भाव को ले के पुराणों में मन्वन्तर, की कथा आती है। 'मन्वन्तर' शब्दका अर्थ दूसरा मनु है। 'अन्यो मनुर्मन्वन्तरम्' अर्थात् एक मनु के बाद जो दूसरा मनु हो वह 'मन्वन्तर' कहलाता है। जो सबों में वृद्ध, वेदतत्त्ववित्, धीर, गंभीर और सकलमानवीयगुणसमन्वित होते थे वे ही इस सभा के अधिपति बनाए जाते थे। जिस हेतु ये परम वृद्ध होते थे अतः 'इनको' पिता कह कर सब कोई पुकारते थे। और सकल प्रजा की ओर से वे चुने जाते थे इस कारण 'वैवस्वत' कहलाते थे क्योंकि 'विवस्वान्' यह नाम मनुष्य, का है। 'मनुष्याः'। नरः। पञ्चजनाः। विवस्वन्तः पृतनाः। निरुक्त २। ३। मनुष्य नर पंचजन विवस्वान् आदि मनुष्य के नाम हैं। "विवस्वतामयं वैवस्वतः विवस्वद्भिर्नियुक्तो वैवस्वतोवा"। परन्तु शोक की बात है कि इस भाव को न समझ कर 'मनु' को एक विशेष पुरुष मानने लगे और 'विवस्वान्' यह नाम सूर्य्य के भी होने के कारण 'सूर्य्य के पुत्र मनुजी हैं" ऐसी गाथा बनाली। सूर्य एक अग्निमय पदार्थ है उन का पुत्र कोई नहीं हो सकता। बड़ी २ अज्ञानता की बात देश में सर्वत्र फैली हुई है। जब तक लोग वेदों के ऊपर पूर्णतया विचार न करेंगे तब तक ये प्रमाद नहीं जासकते। इस में संशय नहीं कि 'मनु' के विषय में भूरि २ गाथाएं हैं। और परीक्षा से विदित होता है भिन्न २ अर्थ में इस के प्रयोग हैं। वेद में मनुष्य ईश्वर जीवात्मा मनन करने वाला अतिश्रेष्ठ आदि अर्थों में आया है।

पिता–इस शब्द के ऊपर और भी कुछ विचार करना है। यह मन्त्र निरुक्त अध्याय १२ खण्ड ३४ वें में आया है। वहां 'मनुश्च पिता मानवानाम्' 'मनु मानवों के पिता हैं' ऐसा कहा गया है। सायण अपने भाष्य में लिखते हैं "पिता सर्वासां प्रजानां पितृभूतो मनुः" सब प्रजाओं का पितृस्वरूप मनु। ऋग्वेद १०। ८२। ३। में 'यो नः पिता जनिता' जो हम सबों का पिता और

उत्पन्न करने वाला परमेश्वर है। यहां पिता शब्द ब्रह्म के लिये कहा है 'द्यौ' के लिये पिता और "पृथिवी" के लिये माता शब्द के प्रयोग वेदों में आते हैं। यथा 'द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः'। ६। ५१। ५। पुनः—द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। इत्यादि। परन्तु यहां जन्यजनकभावसम्बन्ध नहीं है अर्थात् अलङ्कार से पृथिवी माता कही गई है। यद्यपि अथर्व वेद में एक मंत्र आता है जिस से प्रतीत होता है कि स्थावर जङ्गम सब पदार्थ पृथिवी से ही उत्पन्न हुए हैं। परन्तु वहां पर भी यह भाव समझना चाहिये कि पृथिवी से अन्न उत्पन्न होते हैं और अन्नों की ही सहायता से जीवात्मा विविध शरीर रचता है अतः कहा जाता है कि पृथिवी से ही सब पदार्थ उत्पन्न हुए 'त्वज्जातास्त्वयि चरन्तिमर्त्यास्त्वं विभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्योरश्मिभिरातनोति' अथर्व। १२।१।१५॥ अर्थः—मर्त्य जीव तुम से उत्पन्न हुए और तुम्हारे ऊपर विचरण करते हैं। तुम द्विपद और चतुष्पद दोनों का पालन करती है। हे पृथिवी! आप के ही ये पांचों प्रकार के मनुष्य हैं। जिन मर्त्यजीवों के लिये उगता हुआ सूर्य्य अपने रश्मियों से अमृतज्योति फैलाता है 'एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयोरयीणाम्॥ ऋ० ४। ५०। ६॥ पुनः—पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति। ६। ७३। १। इत्यादि अनेक मन्त्रों में बृहस्पति इन्द्र आदि भी पिता कहे गये हैं; और ब्राह्मण ग्रन्थों में 'प्रजापति को' पिता बारम्बार कहा है "य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः। १०। ८१। १। चक्षुषः पिता मनसो हि धीरः। १०। ८२। १। योनः पिता जनिता' इत्यादि अनेक ऋचाओं में अनेक वस्तुओं को पिता माता कहा गया है। परन्तु उन में जन्य-जनक भाव का सम्बन्ध नहीं है। आदरार्थ उन शब्दों का प्रयोग है। इसी प्रकार 'मनु' के सम्बन्ध में भी 'पिता' शब्द आदरार्थक है। इस से बढ़कर आदर स्थान कौन है कि जो सम्पूर्ण प्रजाओं का धार्मिक अधिपति बनाया जाता हो। इस के लिये जो 'पदवी' दी जाय वह सब छोटी है। यास्काचार्य का भी यही आशय प्रतीत होता है।

(२) यच्छञ्च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु । ऋ०१।११४।२।

(पिता+मनुः) पितामनु (यत्+शम्) रोगों का शमन अर्थात् शारीरिक रोगों के निवारणार्थ विविध औषध (च) और (योः+च) भयों का यावन अर्थात् पृथक् करण इन दोनों वस्तुओं को (आ+येजे) हम सबों को दिया करते हैं (रुद्र) हे रुद्र ! (तव+प्र+नीतिषु) आप के प्रकृष्ट न्याय वा नीतियों के होने पर (तद्) उन दोनों को (अश्याम) हम लोग प्राप्त करें । शम्=शमन=रोग शमन । योः= यु मिश्रणामिश्रणयोः । इस से यो बनता है । अश्याम+अशू व्याप्तौ ।

(३) यानि मनुरवृणीता पिता न स्ता शंच योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ ऋ० २।३३।१३ ॥

(नः) हम सबों के (पिता+मनुः) पिता पालक मनु (यानि) जिन औषधों को (अवृणीत) लोकोपकारार्थ इधर उधर से चुनते हैं (ता) उन औषधों को (वश्मि) मैं चाहता हूं और उन से (शम्+च) रोगों का शमन और (योः+च) भय का पृथक् करण (रुद्रस्य) रुद्र से चाहता हूं । अर्थात् ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि मनु से आविष्कृत औषध सर्वत्र फैले मुझे भी प्राप्त हो और उन औषधों के प्रयोग से निखिल रोग निर्मूल हो जाय और भविष्यत् में पुनः उस रोग के होने का भय भी न रहे ।

(३) यः पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ।८।५२।१

(यः) जो परमात्मा (पूर्व्यः) सब का पूर्वज और (वेनः) परम ज्ञानी है और (महानाम्) पूज्य पवित्र मनुष्यों के (क्रतुभिः) विविध यज्ञादि कर्मों के द्वारा (आनजे) पूज्य होता है और (यस्य+द्वारा) जिस परमात्मा के द्वारा (पिता+मनुः) पिता मनु=धर्माधिपति (देवेषु) विद्वानों में (धियः) कर्मों को (आनजे) प्राप्त करते हैं । वही परमात्मा पूज्य है ।

(४) यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता १०।१००।५

हमारे पिता मनु यजनीय अर्थात् पूजनीय और परम बुद्धिमान् है । यज्ञ= यजनीय, माननीय, पूज्य । प्रमति="प्रकृष्टामतिर्यस्य स प्रमतिः"

(५) ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधिवोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥८।३०।३ ॥

(ते) वे विद्वद्गण (नः) हम को (त्राध्वम्) रक्षा करें (ते+अवत) वे पालन करें (ते+उ) वे ही (नः) हमको (अधि+वोचत) शिक्षा देवें । (पित्र्यात्+मानवात्) पिता मनु से आते हुए (पथः) मार्ग से (नः) हम लोगों को (अधि+दूरं+परावतः) अत्यन्त दूर देश (मा+नैष्ट) मत ले जाओ । यहां "पित्र्य मानव" पद आया है । और प्रार्थना है कि पित्र्यमानव पथ से हम को दूर मत ले जाओ । इस में क्या सन्देह है कि सर्ववेदतत्त्वविद् पुरुष से जो उभयलोकसुखकारक मार्ग चलाया गया हो । उस से हमें पृथक् नहीं होना चाहिये । 'मनु' उसी पुरुष को कहते हैं जो वेदों के मनन के द्वारा कल्याण प्रद मार्ग लोगों को सिखलाया करता है । और उस समय के निखिल ऋषि, मुनि, आचार्य्य, विद्वानों से सम्मति लेकर प्रजाहितकारी अर्थ को स्थिर किया करता है ऐसे महात्मा की आज्ञानुसार चलने की शिक्षा इस मन्त्र में दी गई है ।

(६) होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्वासां पती रयीणाम् ॥ १।६८।४॥

जो परमात्मा (मनोः+अपत्ये) मनु अर्थात् आर्य्य सभाध्यक्ष के अपत्य अर्थात् सन्तान के मध्य (निषत्तः) निवास करके (होता) प्रेरक होता है (सः+चित्+नु) वही (आसाम्) इन प्रजाओं के (रयीणाम्) धनों का भी (पतिः) स्वामी है । इस प्रकरण में जैसे 'पिता' शब्द आदरार्थक है वैसे ही 'अपत्य' शब्द करुणा सूचक है । और जब सभाध्यक्ष के लिये पिता शब्द प्रयुक्त होता है तब उस सम्बन्ध में प्रजा के लिये अपत्यादि शब्द का प्रयोग होना उचित ही है ।

(७) उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वासु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ ४।३७।७॥

(वाजाः) हे वाज=विज्ञानी (देवाः) देव (ऋभुक्षाः) तक्षा आदि व्यवसायिजनों के संरक्षक पुरुषो ! (देवयानैः पथिभिः) देवयान मार्गों से (नः+

अध्वरम्) हमारे यज्ञों में (उप+यात) आवें (रण्वाः) रमणीय पुरुषो ! आप (यथा) जिस प्रकार (मनुषः) मनु की (आसु+विक्षु) इन प्रजाओं में (अह्नःम+सुदिनेषु) अच्छे दिनों में (यज्ञम्) (दधिध्वे) यज्ञ धारण करसकें वैसे आइये। यज्ञ की रक्षा के लिये आप लोग यहां आवें। यहां सायण "मनुषःमनोः" मनुष्य का 'मनु' अर्थ करते हैं।

(८) अग्निं होतारमीलते यज्ञेषु मनुषोविशः ॥ ६ । १४ । ५२ ॥

(मनुषः विशः) मनु की प्रजाएं (यज्ञेषु) यज्ञों में (होतारम्+अग्निम्+ईलते) होता अग्नि की स्तुति करते हैं।

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति। ८। २३। १३॥

(यद्वा+उ) जब ही (विश्पतिः) (१) प्रजापालक (अग्निः) तेजस्वरूप (शितः) परम सूक्ष्म परमात्मा (सुप्रीतः) सुप्रसन्न हो (मनुषः+विशि) मनु की प्रजा में निवास करता है। तब ही वह (विश्वा+इत्+रक्षांसि) सब ही विघ्नों को (प्रति+सेधति) प्रतिषेध अर्थात् दूर भगाता है। यहां सायण 'मनुषो मनुष्यस्य विशि निवेशनेगृहे' 'मनुषो विशि' का 'मनुष्य का गृह' अर्थ करते हैं। इत्यादि अनेक ऋचाओं में 'मानवी प्रजा' की चर्चा आती है, अब आगे की ऋचाएं मनु की विविध कर्म को सूचित करती हैं। जो आर्य्यसभाध्यक्ष मनु हो उसे यह भी उचित है कि प्रजाओं में अग्निहोत्रादि कर्म्म के लिये प्रेरणा करे करावे।

(१०) नि त्वा मग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।१।३६।१८

(१) विश्पति 'विश्वासां गृहपति विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ६ । ४८ । ८। (विश्वासाम् मानुषीणां विशाम्) सम्पूर्ण मानुषी प्रजाओं के (त्वम्+अग्ने+गृहपतिः+असि) हे अग्ने ! आप गृहपति हैं। पुनः। 'अग्नि विश ईलते मानुषीर्या अग्नि मनुषो नहुषो विजाताः। १० । ८० । ६। मानुषी प्रजाएं अग्नि स्वरूप परमात्मा की स्तुति करती हैं इत्यादि मन्त्रों में 'मानुषी विश शब्द आता है। और अग्नि को गृहपति भी कहा है।

हे अग्ने प्रकाशस्वरूप देव ! सब मनुष्य के कल्याण के लिये आप को मनु ने ज्योतिः स्वरूप जान सर्वत्र स्थापित किया है अर्थात् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना के सुविधा के लिये सर्वत्र मन्दिर स्थापित करे करवावे।

(११) एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माता ऋणुत व्रजं गोः। यथा मनुर्विशिप्रं जिगाय यथा वणिक् वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ५। ४५। ६ ॥

(सखायः) हे मित्रो ! (एत) आओ (धियम्+कृणवाम) विज्ञान वा कर्म्म का साधन करें (या+माता) जो धी माता है। और जो (गोःव्रजम्) वाणी के समूह को (अप+ऋणुत) आच्छादित करता है और (यया) जिस विज्ञान से (मनुः) मनु (विशिशिप्रम्) प्रजा में उपद्रवकारी शत्रु को (जिगाय) जीतता है और (यया) जिस से (वङ्कुः) व्यापार वृद्धि की इच्छा करने वाला (वणिक्) बनिया (पुरीषम्) पूर्णता को (आप) पाता है। पुरीष का अर्थ जल भी होता है। यहां मनु का कृत्य युद्ध दिखलाया गया है।

(१२) यद्वा यज्ञं मनवे सं मिमिक्षथुः ॥८।१०।२॥

रात्रिदिन दोनों ने (मनवे) मनु के लिये (यज्ञम्) यज्ञ प्रकाशित किया है यहां मनुष्य मात्र का नाम मनु है। रात दिन मनु के कर्म्म करने के लिये हैं।

(१३) यथा पवथा मनुवे वयोधा अमित्रहा ॥९।६।१२॥

आप मनु (मनुष्य) के लिये प्रवाहित होते हैं। आप बल के धारण और शत्रु के हनन करने वाले हैं।

(१४) येभ्यो होत्रां प्रथमा मायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१०।६३।७॥

(समिद्धाग्निः) प्रदीप्त किया है अग्नि को जिसने ऐसे (मनुः) मनु (मनसा) मनसे (सप्तहोतृभिः) सात होताओं के साथ (येभ्यः) जिन के लिये

(प्रथमाम्+होत्राम्) प्रथम यज्ञ को (आयेजे) अच्छे प्रकार से किया करते हैं (ते+आदित्याः) वे आदित्य के समान देदीप्यमान ब्रह्मचारी अथवा राजगण (अभयम्+शर्म्म) अभय और सुख (यच्छत) देवें और (स्वस्तये) जगत्कल्याण के लिये (सुगा) सुखपूर्वक गमनयोग्य (सुपथा) सुन्दर मार्ग (कर्त) बनावें ।

(१५) यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः॥

अर्थः–हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप देव ! (सुमित्रः) सब का सुमित्र (मनुः) मनु अर्थात् मनुष्य (ते) आपके (यद्+यद्+अनीकम्) जिस जिस अनीक=सेना समूह रश्मि को (समीधे) प्रदीप्त किया करता है । (अग्ने) हे अग्ने! (तद्+इदम्+नवीयः) वह वह नवीनतर होता जाता है । (सः) वह आप (रेवत्) धनयुक्त जिस प्रकार होवें वैसा (शोच) प्रदीप्त होवें (सः+गिरः+जुषस्व) वह आप सब प्रजा की वाणी सुनें (सः वाजम्+दर्षि) वह आप शत्रु दल को विदीर्ण करें और (सः+इह+श्रवः+धाः) वह आप विविध यश को धारण करें। यहां पर भी मनु शब्दार्थ मनुष्य ही है ।

(१६) अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ १ । १३ । ४ ॥

(१७) त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ । १४ । ११ ॥

(१८) त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ६ । १६ । ७ ॥

(१९) ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥ ८ । १९ । २१ ॥

(२०) आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः । दिवो अमुष्य शासतो दिवं यज दिवावसो ॥ ८ । ३४ । ८ ॥

(अग्ने) हे सर्वव्यापक देव ! आप (ईळितः) परमपूज्य हैं। आप (सुखतमे+रथे) सुन्दर रथ के ऊपर (देवान्+आवह) विद्वानों को भेजिये। क्योंकि (होता+असि) आप सब सुख देने वाले हैं और (मनुर्हितः) मनुष्य से स्थापित हैं अथवा मनुष्य के हितकारी हैं। भाव यह है कि हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मेरे यज्ञोत्सव पर अच्छे २ वाहन पर चढ़ कर विद्वद्गण आवें और उन्हें आप की दया से कोई क्लेश न पहुंचे।

"मनुर्हितः"=इस ऋचा में और अग्रिम ऋचाओं में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। सायण इस का इस प्रकार अर्थ करते हैं यथा—"मनुना मन्त्रेण मनुष्येण वा यजमानादिरूपेण हितोऽत्रस्थापितः मन्यत इति मनुः मन ज्ञाने। मनुना हित इति समासे तृतीयायाः स्थाने सुपां सुलुगित्यादिना सु इत्यादेशः। तस्य रुत्वं लुगभावश्छान्दसः" मनु अर्थात् मन्त्र अथवा यजमानादि रूप मनुष्य। ज्ञानार्थक मन धातु से 'मनु' सिद्ध होता और हित माने स्थापित। मनु से स्थापित को 'मनुर्हित' कहते हैं। यह वैदिक प्रयोग है। आप देखते हैं कि ऐसे २ स्थल में सायण आदि को भी मनु शब्द का अर्थ मनुष्य करना पड़ा है। आगे की ऋचाओं में भी 'मनुर्हित' प्रयोग आया है अर्थ इनके बहुत सरल हैं इस हेतु इनका अर्थ नहीं लिखते।

(२१) नि त्वा यज्ञस्य साधन मग्ने होतार मृत्विजम्।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥१।४४।११॥

(२२) मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥ ५ । २१ । १ ॥

(२३) मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ७।२।३

(२४) सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ।८।२७।७।

(२५) उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुतः । अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥ ८ । ४३ । १३ ॥

इन कतिपय ऋचाओं में 'मनुष्वत्' शब्द का प्रयोग देखते हैं सायण

अर्थ करते हैं "मनुष्वत् यथा मनुर्यागदेशे निदधाति तद्वद्वयं त्वां निदधीमहि मनुष्वत् औणादिक उसि प्रत्ययान्तो मनुस्शब्दः। तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिरिति वतिप्रत्ययः इत्यादि"। भाव इस का यह है कि मनुस्शब्द मनु वाचक है। और 'मनुस्' से 'मनुष्वत्' बन जाता है। मनु के समान को 'मनुष्वत्' कहते हैं। मनु यह नाम ज्ञानी पुरुष का है यह सिद्ध होचुका है। अर्थात् ज्ञानी विज्ञानी पुरुष के समान हम प्रजाएं भी आप की स्तुति प्रार्थना उपासना और यज्ञादिक क्रिया किया करें।

मैंने यहां ऋग्वेद से २५ ऋचाएं कहीं है जिन में 'मनु' शब्द के प्रयोग हैं। अब आप लोग स्वयं विचार सकते हैं कि क्या यह 'मनु' शब्द किसी व्यक्ति विशेष का सूचक है ?। यहां यह भी आप लोग देखते हैं कि पुराणों के समान कहीं नहीं कहा है कि यह 'मनु' अमुक के पुत्र हैं। और अमुक २ इन के मानसिक वा औरस पुत्र हैं। या मनु से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उत्पन्न हुए हैं। या मनु को ब्रह्मा ने प्रकट किया। ऐसी एक भी बात नहीं है। हां इतनी बात देखते हैं कि 'पिता मनु' 'पित्र्य मानव' 'मनु का अपत्य' 'मनुर्हित' 'मनुष्वत्' आदि शब्द आए हैं। 'मनु' के विशेषण में पितृ शब्द का क्यों प्रयोग हुआ है इस का कारण प्रथम ही ऋचा में सूचित किया गया है। इस में किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं कि इन्हीं वैदिक शब्दों को लेकर पुराणों में अनेक आख्यायिकाएं लोगों ने गढ़ी हैं और इसी 'पितृ' शब्द के प्रयोग के कारण ही मनु को आदि पुरुष भी कहा है। परन्तु वैदिक मनु शब्द यह भाव नहीं रखता है। वेद में ज्ञानीमनुष्य वाचक है॥ पुराणों में वैदिक शब्दों के अर्थ बहुत उलट पुलट गये हैं। इसी कारण सम्पूर्ण पुराणों में एक व्यवस्था नहीं देखते हैं। कभी २ ऋषियों के सामयिक प्रचलित व्यवहार को भी गाथा में गाकर सत्यार्थ को सर्वथा ढांक देते हैं। ऋषियों के समय में 'मनु' और 'मन्वन्तर' का जो भाव था इस को सर्वथा पुराणों ने छिपा दिया। इस वैदिक प्रमाण से एक बात यह सिद्ध हो सकता है कि पीछे ऋषियों ने 'मनु' के नाम पर अपने वंश का भी नाम रक्खा हो। और इस प्रकार भार्गववंश वसिष्ठवंश आदि के समान 'मानव' वंश भी भारतवर्ष में चला

हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। अथवा वेदों में लक्षण देखकर अंगिरा प्रभृति ऋषि प्रथम वृद्ध पुरुष को "पिता मनु" कह कर पुकारने लगे हों अथवा जो पहला पुरुष उत्पन्न हुआ उस की संज्ञा मनु की हो तो यह भी संभव है। इत्यादि मनु शब्द की प्रसिद्धि के अनेक कारण हो सकते हैं। मनु नामक एक सुप्रसिद्ध ऋषि भी हुए हैं। इन की चर्चा आगे मैं करूंगा। परन्तु वेद में मनु शब्द मनुष्यादि वाचक हैं। इति

शतपथादि ब्राह्मण और मनु।

शतपथ ब्राह्मण के त्रयोदश काण्ड में 'मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह तस्य मनुष्या विशः। तइमे आसते" मनु को वैवस्वत और राजा कहा है। और इन की प्रजाएं मनुष्य कही गई हैं। मैं पूर्व ही कह चुका हूं कि 'विवस्वान्' यह नाम मनुष्य का है। विवस्वानों से जो नियुक्त हो अर्थात् जिस को सब प्रजाएं चुन कर राजा बनावें उसे "वैवस्वत राजा" मनु कहते हैं। पुनः इसी ब्राह्मण के प्रथम काण्ड चतुर्थ ब्राह्मण में मनु के सम्बन्ध में एक आख्यायिका आई है उस में "श्रद्धा देवो वै मनुः" मनु को श्रद्धादेव अर्थात् परम विश्वासी कहा है। और यहां पर बड़ी प्रशंसा है। पुनः शतपथ ६। ६। १९ में "प्रजापतये मनवे स्वाहा। प्रजापतिर्वै मनुः" मनु को प्रजापति कहा है। पुनः ऐतरेय ब्राह्मण पंचम पंचिका १४ चतुर्दश खण्ड में "नाभानेदिष्ठं शंसति नाभानेदिष्ठं वै मानवं ब्रह्मचर्यं वसन्तं भ्रातरो निरभजन्" इत्यादि। मनु के पुत्रों की चर्चा आई है। उन में नाभानेदिष्ठ एक था। छान्दोग्योपनिषद् में "तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच। प्रजापतिर्मनवे। मनुः प्रजाभ्यः" इस ज्ञान को ब्रह्मा ने प्रजापति को कहा। प्रजापति ने मनु को। मनु ने प्रजाओं को। यहां 'मनु' आचार्यवत् प्रतीत होते हैं। अथवा आर्य्यसभापति यहां मनु हैं क्योंकि इन से प्रजाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। इस प्रकार मनु की चर्चा वेदों से लेकर आधुनिक ग्रन्थ पर्य्यंत है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां विशेष विचार नहीं करते हैं तथापि जाति निर्णय का भी इस से बहुत सम्बन्ध है इस कारण इस पर कुछ विशेष कहना पड़ा।

मनु और मत्स्य (मछली)

अब मनु के सम्बन्ध में एक आश्चर्यद्योतक आख्यायिका ब्राह्मणादिक ग्रन्थों में भी आती है उस पर अवश्य विचार करना है क्योंकि लोक समझते हैं कि जल प्रलय के अनन्तर भगवान् मत्स्यरूप धारणकर कर मनु को सब पदार्थों के बीज सहित और सप्तर्षि सहित रक्षा करते हैं। उसी से पुनः 'मनुष्य' होते हैं। इस कारण भी मनुष्य वा मानव वा मनुज आदि कहलाते हैं। प्रथम इस आख्यायिका को शतपथ ब्राह्मण और महाभारत से उद्धृत करते हैं पश्चात् इस पर विचार करेंगे।

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्य मुदक माजह्रुः। यथेदं पाणिभ्या मवनेजनायाऽऽहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे॥१॥ स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति। कस्मान्मा पारयिष्यसीति। औघ इमाः सर्वाःप्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति। कथं ते भृतिरिति॥ २ ॥ सहोवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवति उत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि स यदा तामति वर्धा अथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि। स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्र मभ्यवह-

वे लोग प्रातः काल मनु जी के स्नान के लिये स्नान योग्य जल ले आए वे लोग हाथों से स्नान के लिये उस को लाया करते थे। इस प्रकार उस जल से स्नान करते हुए मनु जी के हाथ में एक मत्स्य आपड़ा॥१॥ उस ने कहा कि मेरा भरण पोषण करो मैं तुम को पार उतारूंगा। मनु जी बोले आप किस से मुझे पार उतारेंगे ?। मत्स्य ने कहा कि औघ अर्थात् समुद्र की बाढ़ इन सब प्रजाओं को बहाकर ले जाने वाली है उस से मैं आप को पार करूंगा। मनु जी ने कहा कि आप का भरण पोषण कैसा हो सकता है ॥ २ ॥ मत्स्य ने कहा कि जब तक हम क्षुद्र अर्थात् छोटे २ रहते हैं तब तक हमारे नाश करने वाले अनेक जीव होते हैं क्योंकि मत्स्य मत्स्य को ही निगल जाता है। अतः प्रथम मुझ को किसी एक घड़े में रखकर पालें। जब मैं घड़े से बड़ा हो जाऊं तब एक

रासि । तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३ ॥ शश्वद्ध झष आस । स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेति समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासैथीं ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥ ४ ॥ तमेवं भृत्वा समुद्र मभ्यवजहार । स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचकार । स औघ उत्थिते नावमापेदे तंसमत्स्यउपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरंगिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥ सहोवाच । अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदक मन्तश्छैत्सीद् यावदुदकं समवायात्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः

खाई खोदकर उस में रख पालें । जब उस से भी बड़ा हो जाऊं तो मुझ को समुद्र में ले जांय । तब मैं निर्विघ्न निरुपद्र हो जाऊंगा ॥ ३ ॥ क्योंकि सर्वदा मत्स्य उस में सुख से रहते और बढ़ते हैं । तब उस ने बाढ़ आने की तिथि बतलाई और कहा कि जिस वर्ष में बाढ़ आने वाली हो आप एक नौका तय्यार कर मेरी राह देखें बाढ़ उठने पर मैं नौका के निकट आऊंगा और उस से आप को पार उतारूंगा ॥ ४ ॥ उस को इस प्रकार पालन कर समुद्र में पहुंचा दिया उस मत्स्य ने जो तिथि जो सम्वत्सर कहा था उस तिथि और वर्ष में नौका तय्यार कर मनु जी उस मत्स्य की प्रतीक्षा करने लगे । औघ (बाढ़) उठने पर वह मत्स्य नौका के निकट आया । उस में सींग में नौका का पाश (रस्सी) बांध दिया । उस नौका को लेकर वह मत्स्य उत्तर पर्वत=गिरि की ओर दौड़ा । ॥५॥ वह बोला कि मैंने अब आपको पार उतार दिया । इस वृक्ष में नौका बांध दीजिये । जब तक पानी रहे तब तक इसी गिरिपर रहें यहां रहते हुए आप को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंच सकती । जब पानी घट जाय तब आप इस गिरिपर से उतरें । मनु ने वैसा ही किया औघ के जाले पर मनु जी उतरे । आजतक उत्तर गिरि के निकट मनु जी का अवसर्पण उतराव प्रसिद्ध है । इस के पश्चात् समुद्र का ओघ उन सब प्रजाओं को बहाकर ले गया केवल अकेले

सर्वाः प्रजा निरुहाव । अथेह मनुरेकः परिशिशिषे ॥६॥ सोऽर्चञ्छ्राम्यं-श्चचार प्रजाकामः तत्रापि पाकयज्ञेनेजे । स घृतं दधि मस्त्वामिक्षा मित्यप्सु जुहुवाञ्चकार ततः सम्वत्सरे योषित्सम्बभूव साह पिब्द-मानेवोदेयाय तस्यै ह स्म घृतं पदे सन्तिष्ठते तया मित्रावरुणौ सं-जग्माते ॥ ७ ॥ तां होचतुः कासीति । मनोर्दुहितेत्यावयोर्ब्रूष्वेति नेति होवाच य एव माऽजीजनत् तस्यैवाहमस्मीति तस्यामपि त्व मषिते तद्वा जज्ञौ तद्वा न जज्ञावति त्वेवेयाय सा मनुमाजगाम॥८॥ तां ह मनुरुवाच कासीति तव दुहितेति कथं भगवति मम दुहितेति या अमूरप्स्वाहुतीरहौषीर्घृतं दधि मस्त्वामिक्षां ततो मामजीजनथाः साऽऽशीरस्मि तां मां यज्ञेऽवकल्पय यज्ञे चेद्वै मावकल्पयिष्यसि बहुः प्रजया पशुभिर्भविष्यसि याऽमुया कां चाशिषमाशासिष्यसे सा ते सर्वा समर्धिष्यत इति ता मेतन्मध्ये यज्ञस्यावाकल्पयन् मध्यं ह्येत-

---

मनु जी ही बचगये ॥६॥ तत् पश्चात् प्रजा की इच्छा से पूजा और परिश्रम करते हुए मनु जी विचरण करने लगे । वहां पर भी पाकयज्ञ से यज्ञ किया । घृत, दधि, मस्तु और अमिक्षा को लेकर जल में आहुति डाली । तब एक वर्ष में एक योषित् (स्त्री) उत्पन्न हुई । वह धीरा गंभीरा के समान उदित हुई । उस के चरण घृत लगा हुआ था । मित्र और वरुण उस (स्त्री) से मिले ॥ ७ ॥ उस से इन दोनों ने कहा कि आप कौन हैं ? वह स्त्री बोली कि मैं मनु की दुहिता (कन्या) हूं । उन्हों ने कहा कि ऐसा मत कहो किन्तु "आप दोनों की मैं दुहिता हूं" ऐसा आप कहा करें । उस स्त्री ने उत्तर दिया नहीं । ऐसा मैं नहीं कहूंगी । मैं उसी की कन्या हूं जिस ने मुझे उत्पन्न किया है । उन दोनों ने उस में भाग लेना चाहा । उस ने प्रतिज्ञा की अथवा नहीं परन्तु वह मनु के निकट आई । मनु ने कहा कि तू कौन है ? उस ने उत्तर दिया कि मैं आप की बेटी हूं । मनु ने कहा कि भगवती ! तू मेरी कन्या कैसे है ? उसने कहा आपने जो ये आहु-तिएं आप (जल) में डाली हैं घृत दधि मस्तु और आमिक्षा की उनसे आप ने मुझे उत्पन्न किया है । मैं वह 'आशी' (आशीर्वाद) हूं । मुझे यज्ञ में कल्पित

यज्ञस्य यदन्तरा प्रयाजाऽनुयाजान् ॥ ९ ॥ तयाऽर्चञ्छ्राम्यंश्चचार प्रजाकामः । तयेमां प्रजातिं प्रजज्ञे येयंमनोः प्रजापतिर्याम्वेनया कां चाशिष माशास्ते सास्मै सर्वा समार्ध्यत ॥१०॥ सैषा निदानेन यदिडा । स यो हैवं विद्वानिडया चरत्येतांᳬहैव प्रजातिं प्रजायते यां मनुः प्राजायत या म्वेनया कां चाशिष माशास्ते सास्मै सर्वा समृध्यते ॥ ११ ॥ शतपथ ब्राह्मण ॥ १ । ८ । १ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः स पाण्डवो विप्रं मार्कण्डेयमुवाच ह । कथयस्वेति चरितं मनोर्वैवस्वतस्यच ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच । विवस्वतः सुतो राजन् महर्षिः सुप्रतापवान् । बभूव नरशार्दूल प्रजापतिसमद्युतिः ॥ २ ॥ ओजसा तेजसा लक्ष्म्या तपसा च विशेषतः । अतिचक्राम पितरं मनुः स्वञ्च पितामहम् । ३ । ऊर्ध्वबाहुर्विशा-

कीजिये । यदि मुझको आप यज्ञ में स्थापित करेंगे तो आप प्रजा और पशुओं से बहुत होवेंगे । जिस आशा को आप मेरे द्वारा चाहेंगे आप को सब प्राप्त होगी । उसने अपनी दुहिता को जो मध्य यज्ञ होता है उस में कल्पित किया क्योंकि वही यज्ञ का मध्य है जो प्रयाज और अनुयाज के मध्य में आता है॥९॥ वह मनु प्रजा की इच्छा से उस के साथ पूजा और श्रम करते हुए विचरण करने लगे । उस के द्वारा मनु ने इस प्रजा को उत्पन्न किया जो यह मनु की प्रजा कहाती है । उस से जो इच्छा मनु ने की वह सब उन को प्राप्त होती गई ॥१० ॥ वह निश्चय 'इडा' है सो जो कोई इस इडा के साथ विचरण करता है वह भी प्रजा को प्राप्त करता जिस को मनु ने प्राप्त किया था और उस से जो कामना करता है वह सब उसे प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अर्थः-वैशम्पायन कहते हैं कि तब पाण्डव मार्कण्डेय ब्राह्मण से बोले कि आप वैवस्वत मनु का चरित कहें ॥ १ ॥ मार्कण्डेय जी कहने लगे हे राजन् युधिष्ठिर ! विवस्वान् के पुत्र मनु बड़े प्रतापी, महर्षि, और प्रजापति के समान हुए, ॥ २ ॥ ओज, तेज, शोभा और तपस्या में मनु जी अपने पिता और पितामह से भी बढ़ गये ॥ ३ ॥ वह ऊर्ध्वबाहु और एकपदस्थित हो विशाला बदरी

लायां वदर्य्यां स नराधिपः । एकपदस्थित स्तीव्रं चचार सुमहत्तपः ॥ ४ ॥ अवाक्शिरास्तथा चापि नेत्रैरनिर्मिषैर्दृढम् । सोऽतप्यत तपोघोरं वर्षाणामयुतं तदा ॥ ५ ॥ तं कदाचि त्तपस्यन्त मार्द्रचीरं जटाधरम् । चीरिणीतीर मागम्य मत्स्यो वचन मब्रवीत् ॥६॥ भगवन् क्षुद्रमत्स्योऽस्मि बलवद्भ्योभयं मम । मत्स्येभ्यो हि ततो मां त्वं त्रातुमर्हसि सुव्रत ॥ ७ ॥ दुर्बलं बलवन्तो हि मत्स्या मत्स्यं विशेषतः । आस्वादयन्ति सदा वृत्ति र्विहिता नः सनातनी ॥ ८ ॥ तस्माद् भयौघान् महतो मज्जन्तं मां विशेषतः । त्रातुमर्हसि कर्तास्मि कृते प्रतिकृतं तव ॥ ९ ॥ स मत्स्यवचनं श्रुत्वा कृपयाभिपरिप्लुतः। मनुर्वैवस्वतोऽगृह्णात्तं मत्स्यं पाणिना स्वयम् ॥ १० ॥ उदकान्त मुपानीय मत्स्यं वैवस्वतो मनुः । अलिञ्जरे प्राक्षिपत् तं चन्द्रांशुसदृश प्रभे ॥ ११ ॥ स तत्र ववृधे राजन् मत्स्यः परमसत्कृतः । पुत्रवत् स्वीकरोत्तस्मै मनुर्भावविशेषतः ॥ १२ ॥ अथ कालेन महता स मत्स्यः सुमहानभूत् । अलिञ्जरे तथाचैव नासौ समभवत् किल ॥ १३ ॥ अथ मत्स्यो मनुं दृष्ट्वा पुनरेवाभ्यभाषत । भगवन् ! साधु मेऽद्या-

में तीव्र तपश्चरण करने लगे ॥ ४ ॥ अवाक्शिर और निष्कम्पनयन हो सुदुश्चर घोर तप अनेक वर्षों तक करते रहे ॥ ५ ॥ कदाचित् तपश्चरण करते हुए आर्द्रवस्त्रधारी मनु के निकट आ एक मत्स्य बोला ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! मैं एक क्षुद्र मत्स्य हूं बलवानों से मुझे बड़ा भय है। मत्स्यों से मुझे आप रक्षा करें ॥ ७ ॥ क्योंकि बलिष्ठ मत्स्य निर्बल मत्स्य को खाजाते हैं । यही सनातन वृत्ति हमारी है ॥ ८ ॥ इस हेतु इस महाभयरूप ओघ (बाढ़) से डूबते हुए मुझ को रक्षा करें मैं प्रत्युपकार करूंगा ॥ ९ ॥ मत्स्य के वचन को सुन कृपा से आर्द्र हो वैवस्वत मनु ने उसे हाथ से पकड़ लिया ॥ १० ॥ जल के समीप लाकर एक चन्द्रवत् उज्ज्वल घट में उसे रख दिया ॥ ११ ॥ वह उस में परम सत्कृत हो बढ़ने लगा ॥ १२ ॥ बहुत काल बीतने पर वह इतना बढ़ गया कि इस घड़े में नहीं समासका ॥ १३ ॥ तब वह मत्स्य मनु को देख के बोला कि भगवन् ! मेरे

न्यत् स्थानं सम्प्रतिपादय ॥ १४ ॥ उद्धृत्यालिञ्जरात्तस्मात्ततः स भगवान् मनुः । तं मत्स्यमनयद् वापीं महतीं स मनुस्तदा ॥ १५ ॥ ततस्तं प्राक्षिपच्चापि मनुःपरपुरञ्जय। अथावर्धत मत्स्यः स पुनर्वर्षगणान् बहून् ॥ १६॥ द्वियोजनायता वापी विस्तृता चापि योजनम् । तस्यां नासौ समभवन्मत्स्यो राजीवलोचन ॥ १७ ॥ विचेष्टितुं च कौन्तेय मत्स्यो वाप्यां विशाम्पते । मनुं मत्स्यस्ततो दृष्ट्वा पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १८ ॥ नय मां भगवन् साधो समुद्रमहिषीं प्रियाम् । गङ्गां तत्र निवत्स्यामि यथा वा तात मन्यसे ॥ १६ ॥ निदेशे हि मया तुभ्यं स्थातव्य मनसूयता । वृद्धिर्हि परमाप्राप्ता त्वत्कृते हि मयानघ ॥२०॥ एव मुक्तो मनुर्मत्स्य मनयन्भगवान्वशी। नदीं गङ्गां तत्र चैनं स्वयं प्राक्षिपदच्युतः ॥ २१ ॥ स तत्र ववृधे मत्स्यः कञ्चित्काल मरिन्दम । ततः पुनर्मनुं दृष्ट्वा मत्स्यो वचन मब्रवीत् ॥ २२ ॥ गङ्गायां हि न शक्नोमि बृहत्त्वा चेष्टितुं प्रभो । समुद्रं नय मामाशु प्रसीद भगवन्निति ॥२३॥ उद्धृत्य गङ्गासलिलात् ततो मत्स्यं मनुः स्वयम् । समुद्र मनयत्पार्थ तत्र चैन मवासृजत् ॥ २४ ॥ सुमहानपि मत्स्यस्तु स मनोर्नयत स्तदा । आसीद्यथेष्टहार्य्यश्च स्पर्शगन्धसुखश्च वै ॥२५॥ यदा समुद्रे प्रक्षिप्तः स मत्स्यो मनुना तदा।

लिये दूसरा स्थान बनावें ॥ १४ ॥ तब भगवान् मनु जी ने उस को घड़े से लेकर एक बड़ी वापी (बाउली=कूप) में रख दिया ॥ १५ ॥ वह उस में भी न समा सका यद्यपि वह वापी दो योजन की लम्बी थी ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब मत्स्य ने मनु से कहा कि मुझ को गङ्गा में ले चलें मैं आप के लिये बहुत बढ़ता जाता हूं मैं आप के वचन में सदा स्थिर रहूंगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ तब मनु जी उसे गङ्गा में ले आए । वहां भी वह बहुत बढ़ने लगा । गङ्गा में भी नहीं समासका तब मनु से समुद्र में ले जाने को कहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब गंगा के जल से लेकर मनु जी उस मछली को समुद्र में ले गये जब मनु ने उस मत्स्य को समुद्र में रक्खा, तब हँसता हुआ वह मत्स्य बोला कि हे

तत एन मिदं वाक्यं स्मयमान इवाब्रवीत् ॥२६॥ भगवन् कृता रक्षा त्वया सर्वा विशेषतः । प्राप्तकालं यत्कार्य्यं त्वया तच्छ्रूयतां मम॥२७॥ अचिराद् भगवन् भौम मिदं स्थावरजंगमम् । सर्व मेव महाभाग प्रलयं वै गमिष्यति ॥ २८ ॥ संप्रक्षालनकालोऽयं लोकानां समुपस्थितः । तस्मात्त्वां बोधयाम्यद्य यत्ते हित मनुत्तमम् ॥ २९ ॥ त्रसानां स्थावराणां च यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति । तस्य सर्वस्य संप्राप्तः कालः परमदारुणः ॥ ३० ॥ नौश्च कारयितव्या ते दृढा युक्तवराटका । तत्र सप्तर्षिभिःसार्ध मारुहेथा महामुने ॥ ३१ ॥ बीजानि चैव सर्वाणि यथोक्तानि द्विजैः पुरा । तस्या मारोपयेर्नावि सुसंगुप्तानि भागशः ॥ ३२॥ नौस्थश्च मां प्रतीक्षेथास्ततो मुनिजनप्रिय । आगमिष्याम्यहं श्रृंगी विज्ञेयस्तेन तापस ॥ ३३ ॥ एव मेतत्त्वया कार्य्यं मापृष्टोऽसि ब्रजाम्यहम् । ता न शक्या महत्योवै आपस्तर्तुं मयाविना ॥ ३४ ॥ नाभिशंक्य मिदं चापि वचनं मे त्वया विभो । एवं करिष्य इति तं स मत्स्यं प्रत्यभाषत ॥ ३५ ॥ जग्मतुश्च यथाकाम मनुज्ञाप्य परस्परम् । ततो मनुर्महीराज यथोक्तं मत्स्यकेनच ॥ ३६ ॥ बीजान्यादाय सर्वाणि सागरं पुप्लुवे तदा । नौकया शुभया वीर महोर्मिण मरिन्दम् ॥ ३७ ॥ चिन्तयामास च मनुस्तं मत्स्यं पृथिवीपते । स च

भगवन् ! आपने हमारी रक्षा विशेषरूप से की है अब आप को जो कर्त्तव्य है सो सुनिये ॥२४।२५।२६।२७॥ हे भगवन् ! शीघ्र ही प्रलयकाल होने वाला है। इस लिये मैं आप को हित बात कहता हूं। स्थावर जङ्गम सबका अब काल प्राप्त हुआ, एक दृढ़ नौका आप बनाकर रखना और सप्त महर्षियों के साथ उस पर चढ़ लेना और जितने बीज हैं उन सबों को नौकापर रखलेना इस प्रकार नौका पर चढ़कर मेरी प्रतीक्षा करना मैं श्रृंगधारी होकर आपके निकट पहुंचूंगा। यह कार्य अवश्य आप करना मेरे विना इस महान् जलको आप तैर न सकेंगे इस में आप शंका मत कीजिये। मनुजी ने भी मत्स्य का वचन स्वीकार किया ॥२८–३५॥ और इस प्रकार दोनों अपने २ स्थान चले गये तब काल प्राप्त होने पर मत्स्य

तं चिन्तितं ज्ञात्वा मत्स्यः परपुरञ्जय ॥ ३८ ॥ शृंगी तत्राऽऽजगामाऽऽशु तदा भरतसत्तम । तं दृष्ट्वा मनुजव्याघ्र मनुर्मत्स्यं जलार्णवे ॥ ३९ ॥ शृङ्गिणं तं तथोक्तेन रूपेणाद्रि मिवोच्छ्रितम् । वटारकमयं पाश मथ मत्स्यस्य मूर्धनि ॥ ४० ॥ मनुर्मनुजशार्दूल तस्मिन् शृङ्गे न्यवेशयत् । संयतस्तेन पाशेन मत्स्यः परपुरञ्जय ॥ ४१ ॥ वेगेन महता नावं प्राकर्षल्लवणांभसि । स च तां स्तारयन्नावा समुद्रं मनुजेश्वर ॥४२॥ चकर्षातन्द्रितो राजन् तस्मिन् सलिलसञ्चये । ततो हिमवतः शृङ्गं यत्परं भरतर्षभ ॥ ४७॥ तस्मिन् हिमवतः शृङ्गे नावं बध्नीत मा चिरम्। सा बद्ध्वा तत्र तैस्तूर्ण मृषिभिर्भरतर्षभ॥५०॥ अथा ब्रवीदनिमिषस्तानृषीन् सहितां स्तदा । अहं प्रजापति र्ब्रह्मा मत्परं नाधिगम्यते । मत्स्यरूपेण यूयञ्च मयास्मान्मोक्षिता भयात् ॥ ५३ ॥ मनुना प्रजाः सर्वाः स देवासुरमानुषाः । स्रष्टव्याः सर्व लोकाश्च यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति । तपसाचापि तीव्रेण प्रतिमाऽस्य भविष्यति । मत्प्रसादात्प्रजासर्गे नच मोहं गमिष्यति ॥५५॥ इत्युक्त्वा वचनं मत्स्यः क्षणेनाऽदर्शनं गतः। स्रष्टुकामःप्रजाश्चापि मनुर्वैवस्वतः

वचन के अनुसार सब पदार्थों के वीजों को नौका पर स्थापित कर समुद्र में आये और मत्स्य के लिये चिंता करने लगे वह शृंगी मत्स्य भी वहां शीघ्र पहुंचा मनु उसे देख उस की सींग में रस्सी बांध दी। वह मत्स्य भी बड़े वेग से उस लवण समुद्र में चला, यहां न तो भूमि न दिशाएं मालूम होती थीं यहां चारों तरफ जल ही जल प्रतीत होता था। केवल सात ऋषि मनु और मत्स्य थे। बहुत वर्षों तक वह मत्स्य नौका को समुद्र में खींचता फिरा तब हिमालय के शृंग पर खींच कर लेगया और हंसता हुआ उन ऋषियों से बोला कि इस हिमालय के शृंगपर नौका बांध दीजिये। ऋषियों ने नौका बांध दी, फिर मत्स्य ऋषियों से कहने लगा कि मैं प्रजापति ब्रह्मा हूं मेरे से परे कोई नहीं। मैंने मत्स्य रूप होकर आप लोगों को इस भय से वचाया। यह मनु सारी सृष्टि की रचना करें। देव असुर, मनुष्य, स्थावर जङ्गम सब का सृजन करें। तीव्र तपस्या से और मेरी कृपा से मनु को प्रतिभा प्राप्त होगी और मोह कभी नहीं

स्वयम् ॥ ५६ ॥ प्रमूढोऽभूत प्रजासर्गे तपस्तेपे महत्ततः । तपसा महता युक्तः सोऽथ स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥५७॥ सर्वाः प्रजा मनुः साक्षात् यथावद् भरतर्षभ । इत्येतन्मत्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम् आख्यानमिदमाख्यातं सर्वपाप हरं मया ॥ इति ॥ वनपर्व अध्याय ॥ १८७ ॥

होगा, इतना कह कर मत्स्य वहां से चलागया, मनु जी भी प्रजा की इच्छा से तपस्या करने लगे और पश्चात् तपोयुक्त होकर सारी सृष्टि की । यही मत्स्य पुराण है यह आख्यान सर्वपापहारी है मनु के चरित्र को जो आदि से सुनेगा वह सुखी होगा । ३६–५८ ।

मनु के सम्बन्ध में जितने आख्यान अभी तक प्राप्त हैं वे सब इस मनुमत्स्याऽऽख्यान से बढ कर रोचक नहीं । यह कथा केवल भारतवर्षीय धर्म्म पुस्तकों में ही नहीं किन्तु जगत के सुप्रसिद्ध क्रिश्चियन आदिकों के धर्म ग्रथों में भी विद्यमान है । केवल नाम मात्र का भेद है । परन्तु इस का आशय क्या है ? क्या सचमुच एक मत्स्य मनु के निकट आ अपनी अलौकिक लीला दिखलाने लगा । क्या यह यथार्थ है कि जलप्रलय आने पर एकाकी मनुजी ही शेष रहगये । क्या किसी की इतनी बडी आयु होसकती है कि एक प्रलयतक वह जीता रहे । इस आख्यान के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उत्थित होते हैं । प्रथम यह विचार कीजिये कि भगवान् एकाकी मनु के बचाने से कौनसा प्रयोजन समझता था । यदि मनु एक पुरुष जलप्रलय के अनन्तर नहीं बचता तो क्या आगे मनुष्य सृष्टि ही बन्द हो जाती ? ऐसा नहीं होसकता क्योंकि आदि सृष्टि में भगवान् ने कैसे चराचर जगत रचा । प्रलयोत्तर भी तद्वत् ही सृष्टि कर सकता है । फिर एक मनु के बचाने से कौन प्रयोजन था । पुनः मत्स्य रूप से ही क्यों अपनी लीला दिखलाना आरम्भ किया । यदि लीला दिखानी ही थी तो घड़े खाई और समुद्र में उतने २ समय निवास करके ही क्यों लीला दिखलाई पुनः शतपथ ब्राह्मण कहता है कि 'आप' में आहुति देने से एक कन्या इडा उत्पन्न हुई परन्तु प्रथम इस को मनु नहीं जानते थे । इस कन्या से मित्र, वरुण मिले और वे उस कन्या को अपनी कन्या बनाना चाहते थे । पीछे वह मनु से

जा बोली की मैं आप की कन्या हूं आप मुझको यज्ञ में स्थापित कीजिये इसी से आप का सब मनोरथ सिद्ध होगा। और वैसा ही हुआ। इसी के द्वारा मनु जी प्रजावान् हुए। वह कन्या कौन थी इस की सहायता से मनुजी ने कैसे मनुष्य सृष्टि की। महाभारत में कन्या की चर्चा नहीं है। परन्तु सप्तर्षि और सकल पदार्थों के बीजों को अपने साथ मनुजी ने लेलिया था यह अधिक वर्णन है। इस प्रकार आगे मत्स्यादि पुराणों में मत्स्य और मनुजी के सहस्रशः सम्वादों का भी वर्णन आता है। जब इस आख्यायिका के ऊपर इस प्रकार समालोचना की जाती है तो बालक की सी बात प्रतीत होती है। जब वेदों में इस का कोई चिन्ह नहीं तो ब्राह्मण ग्रन्थ इस अवैदिक अर्थ को कैसे प्रकट करेगा। 'इडा' यह शब्द वेदों में बहुत आया है परन्तु कहीं नहीं कहा गया है कि मनु की यह कन्या है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से इडा शब्द पर विचार नहीं कर सकते। शतपथ ब्राह्मण के इसी प्रकरण में इडा शब्द पर कुछ मीमांसा है। देखिये। परन्तु इस आख्यान को सुप्रसिद्ध शतपथ ब्राह्मण वर्णन कर रहे हैं इस कारण अवश्य कुछ इसका गूढ़ आशय होगा। इस का अन्वेषण करना चाहिये। आप लोगों को स्मरण होगा कि ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः प्रत्येक विषय को सरल अलङ्कार में निरूपण करते हैं। यह इन का स्वभाव है। यह भी एक साधारण और सरल अलङ्कार मात्र है। आप को यह भी विदित ही है कि ब्राह्मण ग्रंथ कर्म्म काण्ड को अधिक वर्णन करते हैं। कर्म्म के प्रधान देवता सूर्य्य, अग्नि और वायु ये ही तीन माने हैं। इन तीनों में भी सूर्य्य की परम प्रधानता है। सारे ही कर्म्मकाण्ड सूर्य्य के ही प्रतिपादक हैं और इस के द्वारा परमात्मा की उपासना कथित है। इस में सन्देह नहीं कि अन्तिम उद्देश उपनिषद् ही है। इस देश का जो 'भारतवर्ष' नाम है यह यथार्थ में सूर्य्य सूचक ही है क्योंकि 'भरत' नाम सूर्य्य का ही है। यहां के सन्तान मात्र 'वैवस्वत' अर्थात् सूर्य्य पुत्र कहलाते है। विशेष वर्णन की यहां आवश्यकता नहीं आप यह समझें कि इस सौर जगत में सूर्य्य ही प्रधान देवता है। इसी के उदय और अस्त को यह मनु-मत्स्याऽऽख्यायिका दरसाती है। सूर्य का क्रमशः उदित होकर बढ़ना ही मत्स्य का विस्तार होना है। रात्रि का आना ही प्रलय काल है। अब प्रथम

आख्यायिका की बातों पर ध्यान दीजिये । कहा गया है कि मनु के स्नान के समय हाथ में एक मत्स्य आपड़ा । वह क्रमशः बढ़ने लगा । अन्त में समुद्र तक पहुंचने पर उसे शान्ति मिली । इस ने मनु की रक्षा की । मनु को एक कन्या इडा उत्पन्न हुई । इस के पैर में घृत लगा हुआ था । मित्र और वरुण ने इस को अपनी कन्या बनाना चाहा । इसी कन्या से मनु प्रजावान् हुए इत्यादि । अब इस के भाव पर ध्यान दीजिये । प्रातःकाल स्नान का समय है । 'पूर्वां सन्ध्यां जपस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्' इस प्रमाण से सूर्य्योदय होते २ सन्ध्योपासन ज्ञानी जन करलेते हैं । इस समय सूर्य का आगमन ही मानों ज्ञानी जन के हाथ में मत्स्य का आना है । क्योंकि इसी समय से यज्ञ का आरम्भ होता है । जब तक सूर्य का उदय नहीं तब तक यज्ञ का आरम्भ करना निषेध है । अब सूर्य का आगमन प्रत्येक ज्ञानी के गृह में होने लगा । वे अग्नि को प्रज्वलित कर हवन करना आरम्भ करते हैं अग्नि का प्रज्वलित करना ही, मानों, सूर्यरूप मत्स्य का बढ़ना है और उधर आकाश में भी सूर्य बढ़ते हुए दीखते हैं । अग्नि भी सूर्य्य रूप ही माना गया है यह स्मरण रखना चाहिये । प्रथम किसी पात्र में धर के तब कुण्ड में अग्नि को स्थापित करते हैं । अग्नि का पात्र में रखना ही मत्स्य का घड़े में रखना है और उस से कुण्ड में स्थापित करना ही मत्स्य का 'कर्षू' अर्थात् खाई में आना है । अब कुण्ड में अग्नि बढ़ने लगा । उस में नहीं समासका आकाश में चारों तरफ फैल गया । और उधर सूर्य भी सर्वत्र आकाश में अपने किरणों से विस्तृतत हो गया । यही अग्नि का चारों तरफ फैलना ही मत्स्य का समुद्र में जाना है । इस प्रकार प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, और सायं सवन, तीनों सवन करके आह्निक कर्म्म की समाप्ति होती है जो ज्ञानी जन इस प्रकार कर्म्म करता है उसे कर्म्म रूप मत्स्य अवश्य रक्षा करता है । कर्म्मकाण्ड का यह एक संकेत है कि कर्म्मफल स्वरूप भी सूर्य्य ही माना गया है । अब सायंकाल प्राप्त होता है । अज्ञानी जन विविध व्यसनों में फसने लगते हैं । कोई विलास में पड़ के कर्तव्याकर्तव्य सर्वथा भूल जाते हैं । कोई ईश्वरीय चिंतन सर्वथा त्याग महानिद्रा लेने लगते हैं । कोई चौर्य वृत्ति में ही मत्त हो जाते हैं । कोई अपने शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने का मौका ढूढ़ने लगते हैं । इस प्रकार प्रदोषा रजनी आ के सब के सत्य को

विनष्ट करना आरम्भ करती है। यही महाप्रलय है। इस में कौन बचते हैं? जो मनुष्य वैदिक कर्म्म में तत्पर हैं वे ही इस प्रलय से बच जाते हैं। वे कर्म्म रूप महानौका के ऊपर चढ़कर उत्तर हिमालय अर्थात् उच्चतर भाव की ओर उसी कर्म्म की सहायता से चलते हैं और जब रात्रिरूप-प्रलय घटने लगता है। तब वे पुनः उतरते हैं अर्थात् पुनः कर्म्म करना आरम्भ करते हैं। वे ज्ञानी प्रलय काल में क्या करते हैं? कहा गया है कि 'आप' में आहुति देते हैं यहां 'आप' शब्द वि+आपक=व्यापक परमेश्वर का वाचक है अर्थात् दुर्व्यसनों में न फंसकर ईश्वर की ओर मन लगाते हैं और प्राणायामादि व्यापरों से अपने मन को रोकते हैं। इस से एक 'दुहिता' उत्पन्न होती है अर्थात् सत्याऽसत्य के बिलगानेवाली सुबुद्धि उत्पन्न होती है जो ज्ञानीजन को दुष्कर्म्मों से रक्षा करती है। यह बुद्धि यद्यपि मनन और विचार से उत्पन्न होती है तथापि प्राणायाम इस की उत्पत्ति में सहायक होता है। इसी प्राणायाम का नाम अर्थात् श्वास प्रश्वास का नाम मित्र और वरुण है। इसी कारण इन की भी पुत्री वह सुबुद्धि है। "इस दुहिता के पैर में घृत लगा रहता है"। घृत शब्द यहां कर्म्मसूचक है क्योंकि घृत से ही आहुति होती है। इसी सुबुद्धिरूप दुहिता से यथार्थ में ज्ञानी जन प्रजावान् होते हैं और अन्यान्य अज्ञानी जनों को कर्म्मरूप नौका की सहायता न रहने से रात्रिरूप जलप्रलय में वे डूबमरते हैं। इत्यादि भाव इस का जानना। यहां रात्रि का प्रलय दिखलाना था इस हेतु समुद्र आदि का वर्णन किया गया है। 'मनु' नाम मननशील ज्ञानी पुरुष का है और जैसे जलमय समुद्र में मत्स्य तैरता है इसी प्रकार आकाश रूप समुद्र में सूर्य विचरण करता है। इसी कारण 'मत्स्य' शब्द का यहां प्रयोग किया है। जिस हेतु सूर्य कर्म का आरम्भक है इस हेतु मानो वह रक्षक भी है। इसी कारण मत्स्य को रक्षक भी कहा है। इत्यादि यथायोग्य भाव समझना। ब्राह्मण का भाव बहुत विस्पष्ट है। परन्तु इस को ऐसा न समझकर पुराणों में इस को यथार्थतया भगवान् का अवतार माना है। यह भूल है। और पीछे यह आख्यायिका इतनी बढगई कि एक मत्स्यपुराण ही बनगया। इस प्रकार समीक्षा करने से 'मनु' कोई व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं होता। फिर इस से मनुष्य सृष्टि हुई यह कैसे सिद्ध हो सकता है। अब मैं एक निरुक्त से मनु के सम्बन्ध में उदाहरण

दूंगा जिस से विस्पष्ट हो जायगा कि 'वैवस्वत मनु' का क्या आशय है। इस के पहले इस आख्यायिका को कोई अन्य प्रकार से भी कहते हैं उस को भी दिखला देते हैं वैदिक भाषा में 'आप्' (जल) यह शब्द कर्म्म सूचक होता है इसी कारण प्रत्येक कर्म के आरम्भ में आचमन की विधि आती है। 'मनु' शब्द मनुष्य-वाचक है इस में सन्देह नहीं। 'मत्स्य' यह शब्द यहां साधारण विवेक वाचक है 'मदंस्यति अन्तं करोति विनाशयाति यः स मत्स्यः। षोऽन्त कर्म्मणि' जो मद को विनष्ट करे उसे 'मत्स्य' कहते हैं। 'इडा' शब्द प्रशंसनीय बुद्धि वाचक है। (इडस्तुतौ) अब आख्यायिका का आशय यह हुआ। आख्यायिका में कहा गया है कि 'स्नान करते हुए मनु के हाथ में एक मत्स्य आपडा अर्थात प्रथम जब मनुष्य विविध कर्म्मों को करना आरम्भ करता है तब इस का अन्तःकरण पवित्र होने लगता है। कुछ काल के पश्चात् मद अर्थात् अहङ्कार नाशक एक प्रकार का विवेक उत्पन्न होने लगता है विवेक का उत्पन्न होना ही मानों मत्स्य का हाथ में आना है। वह विवेक दिन २ बढ़ता जाता है। यहां तक बढ़ता है कि कुम्भी अर्थात घड़े आदि में समा नहीं सकता हैं। भाव यह है कि वह विवेक केवल स्वार्थ साधक ही नहीं किन्तु अपने निज हित करने से बढकर परार्थ साधन में तत्पर होने लगता है क्रमशः समुद्र=आकाश व्यापी अर्थात सर्वत्र व्यापक होजाता है। आख्यायिका में कहा गया है कि वह मत्स्य जब इस प्रकार बहुत बढ़ गया तो मनु से कहा कि मुझे समुद्र में लेचलो मैं आपकी भी रक्षा करूंगा इत्यादि। भाव यह है कि जब विवेक सर्वत्र फैल के और स्वार्थ त्याग केवल परार्थ में लगता है तब वह विवेक उस पुरुष की सब प्रकार से रक्षा करता है। और इस समय कर्म्म का प्रलय होना आरम्भ होता है। यही जल प्रलय है अर्थात् कर्म्मरूप जल के ऊपर तैरता हुआ विवेक रूप मत्स्य की सहायता से जब उत्तर=उच्चतर हिमप्रदेश अर्थात् परम शीतल शान्तिधाम को प्राप्त होता है तब ये सारे कर्म्मरूपजल नीचे रहजाते हैं। जब वह पुरुष उच्चतर ज्ञान शिखर पर पहुंच जाता है। तब वह ज्ञानी पुरुष 'आप' में आहुति डालना आरम्भ करता है। अर्थात् ईश्वर में ही विभूति देखना आरम्भ करता है। आख्यायिका में जल से स्नान करना और जल में आहुति डालना ये दोनों बातें आई

है। जब प्रत्येक कर्म्म में ईश्वरीय विभूति देखना आरम्भ करता है तब 'इडा' अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त होती है। इस इडा से सारा मनोरथ सिद्ध होता है और यथार्थ में यही पुरुष सन्ततिमान् है क्योंकि कहा गया है कि पुत्र होने से पुरुष दुःख से पार उतरता है। यथार्थ में इडा मुक्तिरूपा कन्या से ही आदमी पार उतरता है। इत्यादि। कोई मन बुद्धि अहंकार पर भी इस की योजना करते हैं। इस प्रकार अनेक रीति से इस की व्याख्या करते है परन्तु यह यथार्थ में कर्म्मपरक है क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थ कर्म्म से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। तो हो इससे मनु व्यक्तिविशेष सिद्ध नहीं होता। इति संक्षेपतः॥

दैवत काण्ड, षष्ठाध्याय, दशम खण्ड निरुक्त में लिखा है कि "तत्रेतिहासमाचक्षते। त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वत आदित्याद्यमौ मिथुनौ जनयाञ्चकार। सा सवर्णा मन्यां प्रतिनिधाय आश्वं। रूपं कृत्वा प्रदुद्राव। स विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं कृत्वा तामनुसृत्य सम्बभूव ततोऽश्विनौ जज्ञाते सवर्णायां मनुः" यहां कोई आचार्य्य इतिहास कहते हैं। त्वष्टृपुत्री सरण्यू ने विवस्वान् सूर्य्य से एक युग्म=यम और यमी जनी वह दूसरी सवर्णा। स्त्रीको अपने स्थानमें प्रतिनिधि रख 'अश्वरूप' धारणकर भागगई। वह विवस्वान् आदित्य भी 'अश्वरूप' धर उसके पीछे हो लिये। तब उस से दोनों 'अश्वी' उत्पन्न हुए और सवर्णा स्त्री में मनुजी उत्पन्न हुआ।

यहां सवर्णा से मनु की उत्पत्ति कही गई है। परन्तु क्या यथार्थ में सूर्य्य को मनुष्यवत् स्त्रियं हैं। सरण्यू क्यों भाग जाती है? अपने स्थान में दूसरी स्त्री को क्यों रख जाती है? अश्वरूप क्यों धारण करती है? वे यम मिथुन कौन हैं? 'अश्वी' किनको कहते हैं? इत्यादि कारणों की जिज्ञासा करने पर यही सिद्ध होगा कि यह भी अलङ्कारमात्र है। उषाकाल का नाम सरण्यू है "सरण्यूः सरणात्" सूर्य्य के उदय होने पर उषा भाग जाती है इस कारण उसे सरण्यू कहते हैं। सरण=गमन। परन्तु जिस समय सरण्यू अर्थात् उषा रहती है उस समय कुछ प्रकाश और अन्धकार दोनों रहते हैं इसी को 'मिथुन यम' कहते हैं। जब उषा चली जाती है तब दिन की प्रभा सर्वत्र छा जाती है। इसी का नाम 'सवर्णा' है "समानो वर्णो यस्या सा" जिसका समान वर्ण हो उसे 'सवर्णा' कहते हैं अर्थात् जैसा सूर्य्य उज्ज्वल श्वेत है वैसी ही दिन की प्रभा होती है अर्थात् दिन की शोभा भी श्वेत ही होती है। अब दिन होने से मनुष्यजाति अपने अपने शुभाशुभ कर्म

में तत्पर होजाती है यही सवर्णा से मनु अर्थात् मनुष्यजाति का उत्पन्न होना है। मनुष्य का शयन करना ही मानों उसका मरना है और सूर्य्योदय होने पर जागना ही इस का जन्म लेना है ऐसा कई स्थलों में कहा है। यही यहां पर भी दिखलाया है। आगे कहा है कि अश्वरूपधारिणी सरण्यू के पीछे २ सूर्य्य भी अश्वरूप धर के चला और उससे "अश्वी" उत्पन्न हुए। उषा का भागना ही अश्वरूप धारण करना है। उषा के पीछे २ सूर्य्य भी दौड़ता जाता है। जहां जहां उषा और सूर्य्य पहुंचते हैं वहां २ पृथिवी और द्युलोक का प्रकाश होने लगता है। पृथिवी और द्युलोक का सूर्य्योदय होने पर प्रकाशित होने का नाम ही "अश्वी" का जन्म लेना है। कहा गया है कि "द्यावापृथिव्यौ+अश्विनौ" द्यौ और पृथिवी का नाम 'अश्वी' है। इस प्रकार परीक्षा करने से यहां पर भी मनु कोई व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं होता है। इन्हीं अलंकारिक मनु को अनेक पुराणों में सावर्णि वैवस्वत कहा है। एक बात यहां स्मरण रखनी चाहिये कि जहां २ वैवस्वत मनु की कथा आई है वहां २ इसी आलङ्कारिक वैवस्वत मनु से तात्पर्य है; परन्तु यहां मनु शब्द से मनुष्य जाति ग्रहण है और प्रतिदिन के शयन और जागरण प्रलय और उत्पत्ति है इसी अलङ्कार से आशय है इसहेतु मनु कोई भिन्न व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं हो सकता तब इस वैवस्वतमनु से सूर्य्यवंश की परम्परा की सिद्धि का होना कब सम्भव है इस हेतु जो कोई सूर्य्यवंशीय कह कर अपने को उच्च समझते हैं वह आकाश कुसुमवत् सर्वथा मिथ्या है। थोरी देर के लिये मान भी लिया जावे कि सूर्य्य से मनु और मनु से इक्ष्वाकु आदि सूर्य्यवंशी राजा हुए। तो इस अवस्था में भी वहां ही कहा हुआ है कि इसी मनु से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चारो वर्ण पैदा हुए फिर इस प्रकार चारों तुल्य ही हैं किसी की श्रेष्ठता न्यूनता नहीं। मनु के विषय में और भी बहुत सी बातें पुराणों में कथित हैं जैसे प्रत्येक कल्प में चतुर्दश मनु होते हैं इत्यादि वार्ता के वर्णन करने का यहां प्रसंग नहीं यहां केवल यह दिखलाया गया है कि जिसको लोग वैवस्वत सावर्णि मनु अथवा स्वायंभुव मनु आदि कहते हैं और जिस से चारों वर्णों की उत्पत्ति मानते हैं। वैसा मनु कोई नहि हुआ। यह सब आलंकारिक कथा मात्र हैं हां! यह संभव है कि वशिष्ठ विश्वामित्रादिवत् मनु भी कोई सुप्रसिद्ध पुरुष हुआ हो परन्तु जिस मनु के नाम पर अलौकिक कथाए बनाई हुई हैं वह

मनु कोई नहीं । इस मनु की परीक्षा से सूर्यवंश की भी परीक्षा हो गई । अब चन्द्रवंश के ऊपर कुछ वक्तव्य है यथार्थ में जिसने चन्द्रवंश की कथा बनाई है उसने एक तरह से निन्दा ही की है क्योंकि श्रीमद्भागवतादि में इस प्रकार चन्द्रवंश का वर्णन है । श्रीमद्भागवत स्कंध ९. नव, अध्याय प्रथम १. में प्रजा रहित मनु के पुत्र के लिये वसिष्ठ ने यज्ञ करवाया । पुत्र न होकर के एक पुत्री उत्पन्न हुई और उसका नाम इला रखा गया मनु जी इस से अप्रसन्न हुए । तब वसिष्ठजी ने ईश्वर की भक्ति से उस कन्या को पुरुष बनाया और उस का नाम सुद्युम्न हुआ वह सुद्युम्न एक समय वन में शिकार करते हुए महादेव की अकृपा से अपने साथी संगी सहित पुनरापि स्त्री बनगया और उसी अवस्था में चन्द्रमा के पुत्र बुध से मिली इन दोनों के योगसे पुरूरवा उत्पन्न हुआ और आगे इसी पुरूरवा से चन्द्रवंश की परंपरा चली। अब यह बुध कौन है सो सुनिये । श्रीमद्भागवत नवमस्कंध चतुर्दशाऽध्याय में कथित है कि भगवान् की नाभि से ब्रह्मा हुआ और ब्रह्मा का पुत्र अत्रि हुआ और उस अत्रि की आखों से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उस चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की तारा नाम की स्त्री को बलात् हरण कर लिया उस तारा से बुध की उत्पत्ति हुई । उस बुध ने उस इला में जो पुरुष से स्त्री हुआ था पुरूरवा को उत्पन्न किया उस पुरूरवा से स्वर्गवेश्या उर्वशी में आयु, श्रुतायु, सत्यायु, आदि पुत्र हुए और इस प्रकार चन्द्रवंश का आविर्भाव हुआ । आप देखते है कि पहले मनु की इला नाम कन्या हुई । फिर वह कन्या सुद्युम्न नाम पुरुष हुई और पुनः पुरुष से स्त्री हुई फिर आगे श्रीमद्भागवत में लिखा है कि वह इला एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहती थी । क्या कोई यथार्थ में ऐसा स्त्री पुरुष हो सकता है । फिर चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि की आंख से माना है परन्तु वेद कहता है कि भगवान् ने ही सूर्य्य चन्द्र इत्यादि बनाया पुनः आप देखते हैं कि इला पुत्र पुरूरवा का संयोग उर्वशी से हुआ और उस से चन्द्रवंश चला, विद्वद्गण ? यथार्थ में यह सब कथाएं आलंकारिक हैं न कोई इला हुई और न पुरूरवा और उर्वशी स्त्री पुरुष हुए इन सबों का तात्पर्य पुरूरवा और उर्वशी की कथा मेरी रचित कथा में देखिये, इस प्रकार चन्द्रवंश की भी परीक्षा करने से शश शृंगवत मिथ्याकाल्पनिक ही सिद्ध होती हैं इसी प्रकार अन्यान्य अग्निवंश नागवंश इत्यादि के विषय में भी समझिये !

हे विद्वद्गण ! आप निश्चय समझें कि जिस प्रकार परमेश्वर ने पश्वादि सृष्टि को प्रकट किया इसी प्रकार इस अद्भुत मनुष्य जाति को भी उत्पन्न किया वह परब्रह्म परमेश्वर सब का आदि मूल कारण है वही सब का माता पिता भ्राता विधाता उपास्य पूज्य है और उसी से मनुष्य सृष्टि के आविर्भाव होने के कारण सब मनुष्य परस्पर तुल्य हैं ।

पंचमानवादि शब्द ।

अब यहां मनुष्य की उत्सुकता की निवृत्ति के लिये यह भी निरूपण करना अवश्य है कि आदि सृष्टि में क्या मनुष्यजाति एक ही प्रकार उत्पन्न हुई अथवा भिन्न भिन्न प्रकार की । यदि भिन्न भिन्न वंश हुए तो वे कितने प्रकार के थे। पुराणों में कहीं मानस पुत्र दश कहीं छः कहीं नौ कहीं इक्कीस कहीं कुछ कहीं कुछ कहे हुए हैं । यह पौराणिकों को भी मानना पड़ेगा कि जितने मानस पुत्र हुए उतने प्रकार के वंश चले परन्तु इस विषय में वेद क्या कहता है इस का संक्षिप्त निरूपण कर देना उचित है । वेदों में पञ्चकृष्टि, पञ्चक्षिति, पञ्चचर्षणि, पञ्चजन, पञ्चजन्या ।विश, पञ्च जात आदि शब्द बहुत प्रयुक्त हुए हैं जो बतलाते हैं कि आदि सृष्टि में पांच भ्राता के समान एक पिता से पांच प्रकार के मनुष्य यत्किंचित् भेद के साथ उत्पन्न हुए। वे ये मन्त्र हैं ।

य एकश्चर्षणीनां वसूना मिरज्यति इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् १।७।९

(यः एकः+इन्द्रः) जो एक सर्वैश्वर्य्यवान् परमेश्वर (चर्षणीनाम्) खेत करने वाली प्रजाओं के तथा (वसूनाम्) प्रजाओं के धनों का (इरज्यति) स्वामी है और जो (पञ्च क्षितीनाम्) पांच प्रकार के मनुष्यों का अनुग्रह करने वाला है । वही सब का पूज्य है 'ईरज' धातु कण्वादि गण में ईर्षार्थक है परन्तु यहां ऐश्वर्य्य अर्थ है । सायण कहते हैं कि (पञ्च निषादपञ्चमानां क्षितीनां निवासिनां वर्णाना मनुग्रहीतेतिशेषः) चार वर्ण और पञ्चम निषाद इन पांचों वर्णों का अनुग्रह कर्त्ता ईश्वर है । क्षिति का पृथिवी भी यहां अर्थ हो सकता है

आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्चजनाः॥६।११।४॥

(रातहव्याः) हव्य से सत्कार करने वाले (पञ्चजनाः) पांचों प्रकार के मनुष्य (यम्) जिस परमात्मा को (सुप्रयसम्) सुन्दर स्वभाव वाले (आ+सुम्+न) अतिथि के समान (नमसा) नमस्कार के द्वारा (अञ्जन्ति) पूजते हैं। यहां सायण "पञ्चजना मनुष्या ऋत्विक् यजमान लक्षणाः" पञ्चजन का चार ऋत्विक् और एक यजमान ये पांच अर्थ करते हैं। यहां 'पञ्चजन' 'पांच मनुष्य अर्थ करने से शङ्का बनी रहती है। वे पांच कौन हैं इसकी निवृत्ति के लिये जो सायण अर्थ करते हैं। वह ठीक नहीं। आगे के मन्त्रों से स्पष्ट होगा कि यथार्थ में पञ्चजन आदि शब्दों से क्या तात्पर्य्य है।

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्।
ये वा जनेषु पञ्चसु ९।६५।२३॥

(ये) जो पदार्थ (आर्जीकेषु) आर्जीक=अर्जन उपार्जन करने वाले (कृत्वसु) कर्म्म परायण मनुष्यों में हैं (ये) जो पदार्थ (पस्त्यानाम्) नदियों के (मध्ये) समीप में (ये+वा) और जो (पञ्चसु+जनेषु) पांचो प्रकार के मनुष्यों में अर्थात् सब मनुष्यों में विद्यमान हैं। वे पदार्थ सब को सुखकारी होवें। यहां सायण "जनेषु पञ्चसु निषाद पञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनाः" चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांचो मिलकर पञ्चजन हैं" ऐसा अर्थ करते हैं। परन्तु निषाद पञ्चम वर्ण है। यह कहीं भी वेदों में नहीं कहा गया है।

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीलुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥ १०।४५।६॥

यह हवन कालिक अग्नि का वर्णन है (यद्) जब (पञ्च+जनाः) पांचों प्रकार के मनुष्य (अग्निम्+अयजन्त) अग्निका यजन अर्थात् अग्नि में आहुति डालते हैं तब वह अग्नि (वीलुम्+चित्+आद्रिम) दृढ़ मेघ को भी (अभिनत्) छिन्न भिन्न कर देता है अर्थात् मेघ तक पहुंचता है। वह अग्नि कैसा है (परायन्) दूरजाता हुआ। पुनः (विश्वस्य+केतुः) विश्व का केतु (भुवनस्य+गर्भः) भुवनका कारण ऐसा जो अग्नि वह (जायमानः) जन्म लेते ही (आरोदसी) द्यावा पृथिवी तक (अपृणात्) फैल जाता है।

यहां विस्पष्ट पद है कि पञ्च जन अर्थात् पांचो प्रकार के मनुष्य यज्ञ करते हैं। यदि 'पञ्च जन' पद का अर्थ चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र और पञ्चम निषाद लिया तब भी यह सिद्ध हुआ कि मनुष्यमात्र यज्ञाधिकारी हैं। अतः शूद्र को यज्ञ नहीं करना चाहिये ऐसा कथन सर्वथा वेदविरुद्ध है या नहीं आप सब विचारें। पिछले लोगों ने वेद विरुद्ध सिद्धान्त चला जगत् से वेद को लुप्त कर अधर्म्म का राज्य फैलाया। मनुष्य से घृणा करने वाले मनुष्य क्या मनुष्य हैं।

'पञ्चचर्षणि शब्द'

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमे दमे। कविर्गृहपतिर्युवा॥ ७।१५।२

(यः कविः+गृहपतिः+युवा) जो प्राज्ञ बुद्धिमान् युवा गृहपति (पञ्च+चर्षणीः+अभि) पांचों प्रकार की प्रजाओं के सम्मुख (दमे दमे) गृह गृह में (निषसाद) उपदेशादि कार्य्य के लिये बैठता है। वह अखिल कष्ट से बचाता है। इत्यादि आगे वर्णन आता है।

'पञ्चजात शब्द'

"पञ्च जाता वर्धयन्ती" ६।६१।१२ नदी, पञ्च जात अर्थात् पांचो प्रजाओं को सुख देती है। यहां 'पञ्च जात' 'पञ्च जन' अर्थ में आया है।

'पाञ्चजन्य शब्द'

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः॥ ८।६३।७॥

राजा का यह वर्णन है (यद्) जब (पञ्च जन्यया) पांचो प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी (विशा) प्रजा (इन्द्रे) राजा के निमित्त (घोषा असृक्षत) यह हम लोगों का राजा है इसे हम स्वीकार करते हैं इस प्रकार जब घोष=शब्द अर्थात् घोषणा (Proclaimation) की जाती है तब (सः) वह (विपः) मेधावी (अर्यः) सब का स्वामी और (मानस्य+क्षयः) मान=सम्मान की भूमि बन (बर्हणा) बज्रादि शस्त्र से (अस्तृणात्) शत्रु का हनन करता है अर्थात् प्रजा की ओर से नियुक्त होने पर राजा युद्धादि व्यापार आरम्भ करता है।

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्य मृबीसा दत्रिं मुञ्चथो गणेन ।

हे (नरौ) राजा और रानी आप दोनों (पांचजन्यम्) पांचों प्रकार के मनुष्यों के हित करने वाले (अत्रिम्) त्रिगुण रहित अर्थात् शुद्ध (ऋषिम्) ऋषि की (ऋवीसात्+अंहस.) जाज्वल्यमान पापानल से पृथक् करके (गणेन) परिवार सहित (मुञ्चथः) छुड़ा कर रक्षा किया कीजिये ।

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु । तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषावस्तोर्हवमानास इन्द्रम्॥ ५।३२।११॥

किस को राजा बनाना चाहिये इस की शिक्षा देते हैं । सर्वप्रधान ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र ! (त्वा+नु) आप को सब में (एकम्) मुख्य (शृणोमि) मैं सुना करता हूं । आप कैसे हैं (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक पुनः (पाञ्च-जन्यम्+जातम्) पांचो प्रकार के मनुष्यों के हित के लिये उत्पन्न पुनः (जने-षु+यशसम्) सब मनुष्यों में यशस्वी । अब प्रजाओं की ओर देख कर कहते हैं। (तम्+नविष्ठम्+इन्द्रम्) ऐसे अतिशय माननीय राजा को (दोषा+वस्तोः) रात दिन (हवमानासः) अपने अपने कार्य्य के लिये आवाहन करती हुई और (आशसः) कामनाओं की पूर्ति की इच्छा करती हुई (मे) मेरी सहमत प्रजाएं (जगृभ्रे) ग्रहण करें । यहां सायण "पाञ्चजन्यं पञ्चजनेभ्यो मनुष्येभ्यो हितम्" 'पाञ्चजन्य' शब्द का पञ्चजन मनुष्यों के 'हित' अर्थ करते हैं ।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥ ९ । ६६ । २० ॥

यहां अग्नि के लिये पाञ्चजन्य शब्द आया है 'पाञ्चजन्य' शब्द 'पञ्चजन' से बन कर विशेषण होजाता है । पञ्चजन सम्बन्धी, पञ्चजन हितकारी, पञ्चजन-पुत्र आदि अर्थ होता है । अग्नि भी सब के हित करने वाला है अतः इसको 'पाञ्चजन्य' कहते हैं । अब आगे के मन्त्र से विस्पष्ट होगा कि वेद का तात्पर्य्य पांच प्रकार के मनुष्य से है ।

पंचकृष्टि शब्द ॥

अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम्॥२।२।१०।

यह प्रार्थना है (अस्माकम्) हमारे (पञ्च+कृष्टिषु) पांचों प्रकार के मनुष्यों में (उच्चा) अत्युत्तम=बहुत और (दुस्तरम्) दुस्तर अप्राप्य (द्युम्नम्) धन (स्वः+न) सूर्य्य समान (अधि शुशुचीत) अधिक देदीप्यमान होवे। स्वः सूर्य्य । न=इव । दुष्टरम्=दुस्तरम् । 'कृष्टि' नाम मनुष्य का है । पांचों प्रकार के मनुष्य धन धान्य, पशु, गौ, हिरण्य, पौत्रादिक से सम्पन्न रहें ऐसी प्रार्थना कोई ऋषि करते हैं ।

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या।६।४६।७

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! (नाहुषीषु+कृष्टिषु) मनुष्यसम्बन्धी प्रजाओं में (यद्+ओजः+नृम्णं+च) जो बल और धन (आ) अच्छे प्रकार से वर्तमान है और (पञ्च+क्षितीनाम्) पृथिवी के पाचों भागों में (यद्+वा+द्युम्नम्) जो धन है उस सब का (आभर) भरण पोषण अर्थात् रक्षा करें। और (सत्रा) महान् (विश्वानि) निखिल (पौंस्या) बल को सर्वत्र धारण पोषण करें।

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ।१०।५३।४

उस को (अद्य) आज (वाचः) वचन के (तत्+प्रथमम्) उस परम वीर्य को (मसीय) मानता हूं (देवाः) हे बलिष्ठ शूरवीर पुरुषो ! (येन) जिस वीर्य से (असुरान्+अभि+असाम) असुरों को हम सब परास्त करें (ऊर्जादः) हे अन्न खाने वाले मनुष्यो ! (उत+यज्ञियासः) हे यज्ञसम्पादको ! (पञ्च जनाः) हे पांचों प्रकार के मनुष्यो ! आप सब ही (मम+होत्रम्) मेरे यज्ञ को (जुषध्वम्) सेवें । दुर्गाचार्य्य "पञ्चजना मनुष्याः निषादपञ्चमावर्णाः" यहां "पञ्चजन" शब्द का चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांच हुए ऐसा अर्थ करते हैं इस से भी यही सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र यज्ञाधिकारी है ।

पञ्चजना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः॥१०।५३।५॥

(गोजाताः) पृथिवी पर जितने उत्पन्न हुए (पञ्चजनाः) पांच प्रकार के मनुष्य हैं वे सब ही (मम+होत्रम्+जुषन्ताम्) मदुपदिष्ट यज्ञ को सेवें और (ये+यज्ञियासः) जो यज्ञ के तत्त्व जानने वाले हैं वे भी सदा यज्ञ करें। यहां "पञ्चजना ममहोत्रं जुषन्ताम्" यह साफ पद है सब कोई यज्ञकरें यह आज्ञा सूचक वाक्य है फिर कौन कह सकता है कि 'शूद्र' यज्ञ न करे वा वेदोंका अध्ययन न करे।

इमा याः पञ्चप्रदिशः मानवीः पञ्च कृष्टयः ॥ अथर्व० ३।२४।४॥

ये पांच दिशाएं और ये मानवी पञ्च प्रजाएं हैं ऐसा वर्णन आता है।

पंचमानव कौन हैं ? ॥

मैंने यहां अनेक मन्त्र उद्धृत किये हैं जिन में पञ्चजन आदि शब्द आते हैं। अब यह विचार करना है कि ये पांच कौन हैं। यास्काचार्य निरुक्त ३।८ में कहते हैं "गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि इत्येके। चत्वारो वर्णा निषादः पंचम इत्यौपमन्यवः। गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस। ये पांचों मिल कर पंचजन कहाते हैं। औपमन्यव कहते हैं कि चार वर्ण और पंचम निषाद ये पांच 'पंचजन' हैं। मैं समझता हूं कि यास्क का प्रथम पक्ष ठीक है। सृष्टि के आदि में जो पांच प्रकार के मनुष्य उत्पन्न हुए उन के स्वभावानुसार गन्धर्व आदि पांच वैदिक नाम दिये गये हों। द्वितीय पक्ष समुचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि एक तो चार वर्णों का "चतुर्वर्णा वा चात्वारो वर्णाः" इस प्रकार के शब्दों से कहीं वर्णन नहीं और निषाद को चारों वर्णों से पृथक् मानने में कोई प्रमाण नहीं। पिछले ग्रन्थों में गन्धर्व पितर आदिकों को भिन्न २ जाति माना है। पुराणों में इस की बहुत चर्चा है। परन्तु निषाद एक भिन्न वर्ण है इस की चर्चा नहीं है ऐतरेय ब्राह्मण ३।३१ में इस प्रकार वर्णन है "पाञ्चजन्यं वा एतदुक्थम्। यद्वैश्वदेवम्। सर्वेषां वा एतत्पञ्चजनानामुक्थं देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पणाञ्च पितॄणाञ्च। एतेषां वा एतत्पञ्चजनानां मुक्थम्। सर्वएव पंचजना विदुः।

परन्तु वेद के एक स्थान में मनुष्य के पांच नाम साथ ही आए हुए हैं। मैं समझता हूं कि ऋषियों ने ये ही वैदिक पांच नाम पञ्च जनों को दिए हों यह सम्भव है। वह यह मन्त्र है।

यदिन्द्राग्नी युदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषुस्थः। अतःपरि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य॥ १। १०८। ८॥

यद्। इन्द्राग्नी। युदुषु। तुर्वशेषु। यद्। द्रुह्युषु। अनुषु। पूरुषु। स्थः। अतः। परि। वृषणौ। आ। हि। यातम्। अथ। सोमस्य। पिवतम्। सुतस्य।

स्वामिकृत भाष्यम्—यद्यतः। इन्द्राग्नी पूर्वोक्तौ। यदुषु=प्रयत्नकारिषु मनुष्येषु। तुर्वशेषु=तूर्वन्तीतितुरस्तेषांवशा वशं कर्तारो मनुष्यास्तेषु। यद्यतः। द्रुह्युषु=द्रोहकारिषु। अनुषु=प्राणप्रदेषु। पूरुषु=परिपूर्णसद्गुणविद्याकर्म्मसु मनुष्येषु। यदव इत्यादि पञ्चमनुष्य नाम। निघं० २।३। स्थः।अतः परि इतिपूर्ववत्।

अथ सायण भाष्यम्। अत्र यदुष्वित्यादीनि पञ्च मनुष्यनामानि। हे इन्द्राग्नी यद्यदि यदुषु नियतेषु परेषामहिंसकेषु मनुष्येषु स्थो भवथो वर्तेथे। यदि वा तुर्वशेषु हिंसकेषु मनुष्येषु वर्तेथे। यद्यादि द्रुह्युषु द्रोहं परेषा मुपद्रव मिच्छत्सु मनुष्येषु वर्तेथे। यदि वा अनुषु प्राणत्सु सफलैः प्राणैर्युक्तेषु ज्ञातृष्वनुष्ठातृषु मनुष्येषु अन्येषां हि प्राणा निष्फला ज्ञानहीनत्वात् अनुष्ठानाभावाच्च तेषु यदि भवथः। तथा पूरुषु कामैः पूरयितव्येष्वन्येषु स्तोतृजनेषु यदि भवथः। अतः सर्वस्मात्स्थानात्। हेकामाभिवर्षकाविन्द्राग्नी आगच्छतम्। अनन्तरमभिषुतं सोमं पिवतम्।

(इन्द्राग्नी) हे राजेन्द्र! और हे अग्निवद्देदीप्यमान मन्त्रिन्! (यद्) जिस हेतु आप दोनों (यदुषु) यदु मनुष्यों में (स्थः) रहते हैं। अर्थात् यदुयों की रक्षा के लिये उन में आप दोनों वास करते हैं। इसी प्रकार (तुर्वशेषु) तुर्वश मनुष्यों में (द्रुह्युषु) द्रुह्यु मनुष्यों में (अनुषु) अनु मनुष्यों में और (पूरुषु) पूरु मनुष्यों में अर्थात् यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पूरु इन पांचों प्रकार के मनुष्यों में आप (यत्) जिस हेतु उन की रक्षा के लिए रहते हैं (अतः) इस हेतु (वृषणौ) हे सुख के वर्षा करने वाले राजन् और मन्त्रिन्! आप (हि)

निश्चय, (आ+यातम्) हम लोगों के यज्ञ में भी आया करें और (सुतस्य+सोमस्य) प्रस्तुत=बनाया हुआ (सोमस्य) सोमरस (पिबतम्) पीवें।

यहां स्वामी जी तथा सायण इन यदु आदि पांचों शब्दों का अर्थ मनुष्य ही करते हैं। स्वामी जी कहते हैं। यदु=प्रयत्न कारी मनुष्य। तुर्वंश=हिंसक मनुष्यों को वश में करने वाले। द्रुह्यु=द्रोहकारी मनुष्य। अनु=प्राणप्रद मनुष्य। पूरु=अच्छे गुणविद्याआदि से पूर्ण मनुष्य। इस प्रकार ये पाचों मनुष्य के ही नाम हैं। सायण कहते है। यदु=दूसरों के अहिंसक मनुष्य। तुर्वश=हिंसक मनुष्य। द्रुह्यु=द्रोहकारी मनुष्य। अनु=प्राणधारी मनुष्य। पूरु=पूर्ण करने योग्य स्तुतिकारी जन। सायण इन शब्दों का धातु भी देते हैं। उपरमार्थक 'यम' धातु से यदु। हिंसार्थक 'तुर्वी' धातु से तुर्वश। जिघांसार्थक 'द्रुह' से द्रुह्यु। प्राणार्थक 'अन' से अनु। आप्यायनार्थक 'पूरी' से पूरु शब्द बनता है

निघण्टु में यदु आदि शब्द।

मनुष्याः। नराः। धवाः। जन्तवः। विशः। क्षितयः। कृष्टयः। चर्षणयः। नहुषाः। हरयः। मर्य्याः। मर्त्याः। मर्ताः। व्राताः। तुर्वशाः। द्रुह्यवः आयवः। यदवः। अनवः। पूरवः। जगतः। तस्थुषः। पञ्चजनाः। विवस्वन्तः। पृतनाः। इति पञ्चविंशतिर्मनुष्य नामानि।

मनुष्य, नर, धव, जन्तु, विट्, क्षिति, कृष्टि, चर्षणि, नहुष, हरि, मर्य्य, मर्त्य, मर्त, व्रात, तुर्वश, द्रुह्यु, आयु, यदु, अनु, पूरु, जगत, तस्थिवान्, पञ्चजन, विवस्वान्, पृतन, ये २५ पच्चीस नाम मनुष्य के हैं। मूल में सर्वत्र बहु वचन पाठ है।

यहां पर सामान्य रूप से मनुष्य के नामों में 'यदु' आदि पाचों शब्द आए हैं। वेदों में भी ये पांचों शब्द समानता से मनुष्य के ही नाम हैं अर्थात् किसी विशेष मनुष्य के नाम नहीं है। क्योंकि वेद में सामान्य नाम आते हैं। परन्तु वेद के शब्दों को लेकर ही ऋषियों ने पदार्थ और देशादिक के नाम रक्खे हैं अतः प्रतीत होता है कि उन पांचों प्रकार के मनुष्यों के नाम यदु आदि रक्खे हों।

महाभारत में यदु आदि पांच वंश ।

यतिं ययातिं संयातिमयातिं अयतिं ध्रुवम् ॥३०॥
नहुषो जनयामास षट् सुतान् प्रियवादिनः ।
ययातिर्नाहुषः सम्राडासीत् सत्यपराक्रमः ॥३२॥
तस्य पुत्रा महेष्वासाः सर्वैः समुदिता गुणैः ॥३३॥
देवयान्यां महाराज शर्मिष्ठायां च प्रजज्ञिरे ।
देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेवच ॥३४॥
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठायां जज्ञिरे ॥३५॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय ७५ से लेकर ९३ वां अध्याय तक ययाति राजा की आख्यायिका विस्तार पूर्वक आई है । यह इतिहासदृष्टि से अतिशय मनोहर और रोचक है और यदु आदि पांच वंशों की उत्पत्ति बतलाती है अतः संक्षेप से यहां इस का उल्लेख करते हैं नहुष (आप अभी देखा है कि नहुष भी मनुष्य के नामों में आया है) राजा के छः पुत्र हुए। यति, ययाति, संयाति, अयाति अयति और ध्रुव । इन में से ययाति राज्याधिकारी हुए । ययाति की दो स्त्रियां हुईं देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी से दो पुत्र हुए । यदु और तुर्वसु। और शर्मिष्ठा से तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु, और पुरु ।

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः ।
कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् । आदिपर्व ॥७६॥

महाराज जनमेजय पूछते हैं कि हे वैशम्पायन ! मेरे पूर्वज ययाति ने अति दुर्लभा शुक्र की कन्या से कैसे विवाह किया यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे सुनावें । वैशम्पायन बोले कि जिस समय देवगुरु बृहस्पतिपुत्र कच असुर गुरु शुक्राचार्य्य से विद्याध्ययन कर रहे थे उस समय शुक्रकन्या देवयानी ने कच की बड़ी सेवा की । विद्यासमाप्त होने पर गृह लौटने के समय बृहस्पति के पुत्र कच से देवयानी ने कहा कि आप मुझ से विवाह करें । परन्तु उसे गुरुपुत्री जान कच ने उस से विवाह करना उचित नहीं समझा । इस पर देवयानी ने क्रुद्धा

होकर शाप दिया "ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति" कि हे कच! मेरी प्रार्थना को नहीं स्वीकार करते हो। अतः आपकी विद्या सिद्धि को प्राप्त नहीं होगी। इस पर अनपराध शाप देती हुई देवयानी को देख कच ने भी शाप दिया कि "ऋषिपुत्रो न ते कश्चित् जातु पाणिं ग्रहीष्यति" कोई ऋषि पुत्र आप का पाणिग्रहण नहीं करेगा। तत्पश्चात् एक समय असुराधिपति वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी स्नानार्थ किसी वन में गईं। वहां इन दोनों में लड़ाई होगई। शर्म्मिष्ठा देवयानी को किसी कूप में गिरा घर आगई। इसी समय राजा ययाति वन में शिकार करते हुए तृषार्त हो उसी कूप के निकट आ देवयानी को कूप में गिरी हुई देख कुएँ से उसे निकाल बाहर किया। शर्मिष्ठा के सब चरित्र देवयानी ने अपने पिता से कह सुनाये और अन्त में यह कहा कि शर्मिष्ठा ने अपने को राजपुत्री और मुझ को पुरोहितपुत्री नीच समझ बड़ा अपमान किया है इस हेतु हे पिता! जब तक वह मेरी दासी नहीं होगी तब तक मैं गृह पर नहीं जाऊंगी। वृषपर्वा राजा ने पुरोहित पुत्री को क्रुद्ध जान उस के सन्तोषार्थ अपनी राजपुत्री शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाया। तत्पश्चात् पुनः एक समय वन में ययाति को देख उस से विवाहार्थ देवयानी ने कहा। ययाति नें कहा कि जब तक आप के पिता इस कार्य्य के लिये आज्ञा नहीं देवेंगे तब तक मैं आप का पाणिग्रहण नहीं कर सकता। इस पर देवयानी पिता से आज्ञा ले ययाति की पत्नी बनी और राजपुत्री शर्मिष्ठा के साथ पतिगृह पर निवास करने लगी। इस देवयानी से यदु और **तुर्वसु** दो पुत्र हुए। यद्यपि विवाह कर प्रस्थान करने के समय शुक्र जी ने ययाति राजा को चेता दिया था कि इस दासी शर्मिष्ठा को आप सब तरह से सम्मान करें परन्तु इससे सन्तान उत्पन्न न करें तथापि राजा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न कर शर्मिष्ठा की परमप्रीति और प्रार्थना से प्रसन्न हो शर्मिष्ठा से तीन पुत्र उत्पन्न किये, **अनु, द्रुह्यु** और **पूरु**। जब कुछ समय के अनन्तर देवयानी को यह वृत्तान्त विदित हुआ तब वह क्रोध कर अपने पिता के गृह पर चली गई और अपनी पुत्री से सब वार्ता जान शुक्राचार्य्य ने राजा ययाति को शाप दिया कि आप शीघ्र ही जरावस्था से अभिभूत होवेंगे। इस पर राजा ने सब वृत्तान्त

कह सुनाया। पुनः शुक्राचार्य्य ने यह कहा कि मेरे प्रभाव से आप अपनी वृद्धावस्था को किसी अन्य पुरुष में स्थापित कर सकते हैं। परन्तु आप के पुत्रों में से जो कोई अपनी युवावस्था आप को देगा और आप से वृद्धावस्था लेगा वही सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनेगा। इस प्रकार शुक्र से शापानुगृहीत हो ज्येष्ठ पुत्र यदु से आकर ययाति बोले।

ययातिरुवाच—जरावलीच मां तात पलितानि च पर्य्यगुः।
काव्यस्योशनसः शापात् न च तृप्तोऽस्मियौवने।
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। इत्यादि॥
यदुरुवाच—जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीष्य इति मे मतिः। इत्यादि

ययाति—हे प्रिय यदु! शुक्र जी के शाप से मुझ को वृद्धावस्था प्राप्त हुई है। परन्तु विषय भोग से अभी तक मैं तृप्त नहीं हुआ हूं। अतः इस जरावस्था को तुम लो और तुम्हारे यौवनावस्था से मैं विषय भोगूं।

यदु—हे पिता! जरावस्था में बहुत दोष हैं इस हेतु मैं इस का ग्रहण नहीं करूंगा। आप के अनेक पुत्र हैं। उन से आप जा कहें।

ययाति—हे यदु! जिस कारण मेरे शरीर से उत्पन्न हो के तुम मेरी जरावस्था को नहीं लेते हो अतः तुम्हारी प्रजा राज्याधिकारी नहीं होगी। इतना कह तुर्वसु से बोले कि हे तुर्वसु! तुम मेरी जरावस्था लो मैं तुम्हारी यौवनावस्था से विषय भोग करूं।

तुर्वसु—हे पिता! काम-भोग-प्रणाशिनी, बल-रूपान्तकारिणी और बुद्धि-प्राण-प्रणाशिनी जरावस्था को मैं ग्रहण नहीं करूंगा।

ययाति—हे तुर्वसु! जिस हेतु तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर मेरी जरावस्था नहीं लेते हो अतः तुम, जिनका धर्म्म और आचार भ्रष्ट है जो प्रतिलोम आचार करने वाले हैं जो गुरुदारापरायण हैं ऐसे भ्रष्ट म्लेच्छों में राजा होओगे इस प्रकार तुर्वसु को शाप दे शर्मिष्ठा के द्रुह्यु पुत्र से राजा बोले कि हे द्रुह्यु! तुम मेरी जरावस्था लो।

द्रुह्यु—हे पिता ! जीर्ण नर न गज न हय न सुख भोग सकता है अतः मैं जरावस्था नहीं लूंगा।

ययाति—हे द्रुह्यु ! जिस हेतु मेरी जरावस्था तुम नहीं लेते हो इस कारण जहां अश्व और रथों की गति नहीं है और जहां पर हाथी, गदहे, गाय और शिविका इन सबों की गति नहीं है। परन्तु जहां पर केवल नौका से ही कार्य्य होता है वहां का स्वामी तुम होवोगे।

हे प्रिय अनु ! तुम मेरी जरावस्था लो।

अनु—हे पिता ! वृद्ध पुरुष शिशुवत अपवित्र रहता है समय पर हवनादि कर्म्म नहीं कर सकता है। अतः मैं जरा नहीं लूंगा।

ययाति—जिस हेतु मेरी जरावस्था को नहीं लेतेहो और जरावस्था के दोष दिखलाते हो अतः तुम्हारी प्रजा यौवनावस्था में नष्ट हो जायगी और हवनादि कर्म्म दूषक तुम होवोगे।

हे प्रिय पुत्र पुरु ! तू मेरी जरावस्था ले।

पुरु—हे पिता ! मैं आपके वचन का पालन करूंगा। मुझे आप जरावस्था देवें और मेरी यौवन लेवें।

इस पर राजा बहुत प्रसन्न हो के अपनी जरावस्था दे और पुरु से यौवन ले बहुत दिन विषय भोग कर पुनः अपनी जरावस्था पुरु से ले उसे यौवन दे और उस को भारत खण्ड का राजा बना तपस्या के लिए वन चले गये।

आगे इसी पर्व के ८५ वें अध्याय में इस प्रकार कहा गया—

यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाःस्मृताः।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः॥ २४॥
पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव॥ ३५॥

वैशम्पायन राजा जनमेजय से कहते हैं कि हे राजन् ! यदु से यादववंश, तुर्वसु से यवनवंश, द्रुह्यु से भोजवंश, और अनु से म्लेच्छवंश उत्पन्न हुए और पूरु राजा से पौरव वंश जिस में आप उत्पन्न हुए हैं।

हे विद्वद्गण ! इस प्रकार महाभारत में पांच वंशों की चर्चा देखते हैं। विचारने की बात यहां यह है कि वेदों में ये पांचनाम मनुष्य मात्र के नाम हैं किसी विशेष आदमी के नहीं। परन्तु महाभारत में विशेष व्यक्ति के ये नाम हो जाते हैं। इतना ही नहीं किन्तु ये पांचों पांच वंशों के वंशधर हो जाते हैं। जो वंश सारी पृथिवी पर विस्तृत हुए। मनुष्यमात्र इस के अन्तर्गत हो जाते हैं। इस से अनुमान होता है कि सृष्टि की आदि में जो पांच प्रकार के मनुष्य उत्पन्न हुए जिस कारण प्रजामात्र का नाम पञ्चजन हुआ ऋषि लोगों ने वेद के मन्त्र में एक ही स्थान में ये पांच नाम पा गुण कर्म के अनुसार उन पांचों वंशों को ये ही पांच नाम दिये हों इस में कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं। बहुत समय व्यतीत होने पर जब लोग यादव पौरव आदि के वंशों के ठीक कारण न समझने लगे होंगे तो उस समय इस आख्यायिका की उत्पत्ति हुई हो। इस में एक और विचित्रता है कि राजा ययाति नहुष के पुत्र कहे गए हैं। परन्तु 'नहुष' यह नाम भी मनुष्य सामान्य का है। वेदों में यह नाम आता है ऋग्वेद ६। ४६। ७ में 'नाहुषी कृष्टि' अर्थात् नहुष सम्बन्धी प्रजा अर्थात् मनुष्य सम्बन्धी प्रजा ऐसा कहा गया है। ययाति शब्द का भी एक प्रकार से मनुष्य ही अर्थ है। जिस धातु से 'यदु' बनता है उसी से 'ययाति' भी बन सकता है। अथवा मनुष्यों के नामों में एक नाम 'जगत्' आता है वह 'गम्' धातु से बना है। इसी के समान 'या' धातु से 'ययाति' बन गया है। प्रायः गम् और 'या' का एक ही अर्थ होता है। अतः यह 'ययाति' नाम भी मनुष्य सामान्य का ही सिद्ध होता है। और भी इस में एक विलक्षणता है ब्राह्मण और असुर दोनों की कन्याओं से ययाति ने सन्तान उत्पन्न किये हैं। आर्य्यों का प्रतिनिधि ब्राह्मण और दस्युओं का प्रतिनिधि असुर माना गया है। मालूम पड़ता है कि जिस समय दस्यु लोग आर्य्यों के अधीन हुए हैं उस समय दोनों में परस्पर सम्बन्ध होने लगा है। अथवा दस्युओं की प्रसन्नतार्थ उन की कन्या से सन्तान उत्पन्न कर राज्याधिकारी बनाया गया हो और उस के यशोगान के लिये पौरववंशकी स्थापना हुई हो। जो कुछ हो अनुमान होता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने यदु, पूरु, अनु, द्रुह्यु और तुर्वसु ये पांच नाम उन पांचों वंशों को दिए जो आदि सृष्टि में उत्पन्न हुए।

'गीता और पांचजन्य शब्द'

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ।
पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥ गीता १ । १४ ॥

गीता में देखते हैं कि श्री कृष्ण जी के शंख का नाम 'पांचजन्य' है । इस में सन्देह नहीं कि श्री कृष्ण जी उस समय के पृथिवी पर के समस्त वंशों के नायक और चालक थे और सम्पूर्ण पृथिवी के राजाओं को एक सूत्र में ग्रथित करना चाहते थे । अर्थात् सब राजाओं को युधिष्ठिर के अधीन कर सम्पूर्ण पृथिवी पर शान्ति फैलाना चाहते थे । इसी हेतु विद्वित होता है कि कृष्णजी ने अपने शङ्ख का नाम 'पांचजन्य' रक्खा था अर्थात् पांचों प्रकार के पृथिवीस्थ मनुष्यों का हितकारी शङ्ख । सम्पूर्ण पृथिवी पर शान्ति स्थापन के लिये श्रीकृष्ण के हाथ में मानो यह एक चिन्ह था । इस से भी मालूम पड़ता है कि पृथिवी पर पांच प्रकार के वंश उस समय में भी विद्यमान थे ।

'पंचमानव पर आधुनिक विद्वानों की सम्मति'

श्रीयुत महाशय राय शिवनाथ जी निज ऋग्वेद भाष्य मण्डल १ सूक्त ७ मन्त्र नवम की टिप्पणी में लिखते हैं कि पांच मनुष्य जातियां जो इस पृथिवी पर पाई जाती हैं यह हैं ।

१–एण्डो यूरोपियन (Indo European) वा आर्य्यजाति जो हिन्दुस्तान फारस, यूरोप, यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका, और आइस लैण्ड में रहती है ।

२–मंगोलियन (Mongolean) जो चीन, जापान, रूस, ग्रीनलैण्ड और उत्तर अमेरिका में रहती है ।

३–नीग्रो (Negro) जो मध्य और दक्षिण आफ्रिका में रहती है ।

४–अमेरिकन (American) जो नौर्थ अमेरिका के मध्यभाग में और साउथ अमेरिका में रहती है ।

५-मलय (Malay) जो मले, सुमात्रा, बोर्निङ्ग, सेलिबीज, फिलिपाइन, फोर्मोजा, इत्यादि टापुओं में रहती है।

अन्य जातियां जो आज कल इस पृथिवी पर पाई जाती हैं। इन ऊपर की मुख्य जातियों के मेल से बनी है-जैसे मैक्सिको, पीरू, ब्राजील, इन देशों में इण्डो यूरोपियन मिक्स्ड (Indo European Mixed) अरब, ईजिप्ट, ट्रिपोली ऐल्जीर्या, मोरोको इन देशों में साइरो ऐरेबियन (Syro Arabian) यह संकर जातियां पाई जाती हैं। इनका निकास इण्डो यूरोपियन जाति से है। नीग्रो जाति में से एक संकर जाति पैपुअन नीग्रो (Papuan Negro) निकली है जो आस्ट्रेलिया के उत्तरवर्ती टापुओं में रहती हैं और मले जाति से एक संकट जाति आस्ट्रेलियन (Australian) निकली है जो आस्ट्रेलिया में रहती है।

यह आज कल के विद्वानों की सम्मति है। यद्यपि इस में आर्य्यवंश को अन्यान्य चार वंशों से पृथक् किया तथापि इस विषय में सब कोई सहमत है कि पृथिवी पर पांच प्रकार के वंश हैं। वेद के अनुसार इन सबों को आर्य्य कहना चाहिये क्योंकि पञ्चजन या पञ्चचर्षणि आदि शब्द जहां जहां आए हैं वहां २ सब आस्तिक मनुष्यों से तात्पर्य्य है क्योंकि इन में यज्ञ आदि व्रत का विधान पाया जाता है और ये सब मिलकर ईश्वर उपासना करें। राजा को चुनें। अपने गृह पर ऋषियों को बुलावें इत्यादि उपरिष्ट मन्त्र द्वारा अनुशासन पाया जाता है।

यहां एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि जहां जहां 'पञ्चजन' आदि शब्द आया है। वहां २ सायण प्रायः चार वर्ण और पञ्चम निषाद अर्थ करते हैं। इस से सिद्ध है कि मनुष्यमात्र वेद और यज्ञ के अधिकारी हैं। क्योंकि ये पांचों सब कार्य में समान हैं यह ऊपर के वाक्यों से विस्पष्ट किया गया है।

द्वितीय प्रश्न का समाधान।

प्रश्न-तब ब्राह्मण की इतनी प्रशंसा क्यों है? समाधान=गुण के कारण अर्थात् पूर्व में कह चुके हैं आवश्यकतानुसार अनेक वर्ण बनते गए "वर्ण" शब्दार्थ चुनना है "वृञ् वरणे" जिस को जो व्यवसाय पसन्द आता था वह उस को किया करता था और उसी व्यवसाय के नाम पर उस को लोग पुकारा

करते थे। यद्यपि वेदों में अनेक वर्णों के नाम आए हैं तथापि ऋषि लोगों ने व्यवहार की सिद्धि के लिए "ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्" इत्यादि वेदों में लक्षण देख और इस शरीर में भी इन ही चार प्रकार के कार्य्यों को होते हुए निरख मनुष्यजाति को कर्म्मानुसार चार नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र दिये। जैसे शरीर में शिर, हाथ, मध्यभाग और पैर सब ही एक प्रकार से बराबर हैं और एक दूसरे के सहायक हैं और चारों मिल कर ही एक सुन्दर शरीर बना हुआ है इन में से किसी एक के अभाव से इस का सर्व कार्य्य नहीं चलता वैसे ही मनुष्यजातिरूप शरीर में ये चारों वर्ण एक २ अंग हैं और एक दूसरे के सहायक हो परम सुन्दरता को बढ़ाते हैं इस में जन्म से न कोई श्रेष्ठ और न कोई नीच है। पुनः देखते हैं कि शैशवावस्था में सब ही अङ्ग शिथिल रहते हैं धीरे २ एक दूसरे की सहायता से सब अपने २ स्थान में पुष्ट होने लगते हैं। स्वभावतः इन में शिर सब से श्रेष्ठ बन जाता है क्योंकि दो नयन, दो कर्ण, दो घ्राण और एक जिह्वा ये सप्तर्षि इसी में निवास करते हैं इन की ही आज्ञा पर अन्यान्य अङ्गों को चलना पड़ता है इसी प्रकार जानिए कि जन्म समय में सब कोई बराबर हैं परन्तु जिस को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी गई स्वभावतः शिर के समान वह समाज में श्रेष्ठ बन जाता है क्योंकि प्रथम इस को अध्ययन का समय अधिक प्राप्त होता है इसी हेतु धार्म्मिक कर्म्मानुष्ठान का भार इसी के ऊपर छोड़ा जाता है वेद के पारंगत होने के कारण कर्तव्याऽकर्तव्य भी यही अधिक जानता है इस हेतु प्रत्येक व्यवस्था का कार्य्य भी विशेष कर इस की बुद्धि पर छोड़ा जाता है इस कारण ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवादी जन की अधिक प्रशंसा होती है और होनी भी चाहिए इसी नियमानुसार सर्वत्र ब्राह्मण की प्रशंसा गाई गई है। समझ की बात है, मानो, एक किसी शास्त्र में चारों वेद के जानने वाले की बहुत प्रशंसा और मूर्ख की निन्दा लिखी गई है और लोक भी चतुर्वेदवित् पुरुष को बड़ी प्रतिष्ठा आदर सत्कार और मूर्ख की निन्दा करते हैं। जो चारों वेदों को जानता है उसे चतुर्वेदी कहते हैं। अब आप समझें कि कोई मूर्ख अपना और अपने वंशजों का नाम 'चतुर्वेदी' रख जिस २ शास्त्रमें चतुर्वेदी की प्रशंसा है उस २ को ले लोगों को दिखलाता है कि देखो!

इस में चतुर्वेदी की कितनी प्रशंसा लिखी हुई है मैं चतुर्वेदी हूं मेरी पूजा सब कोई करो इत्यादि। आज यही लीला सर्वत्र है। आप लोग हम से पूछते हैं कि ब्राह्मण की प्रशंसा वेदों में भी है हम लोग ब्राह्मण हैं इसीहेतु हम श्रेष्ठ हैं अब आप विचारें कि इसी मूर्ख की सी यह बात है या नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि वेद ब्राह्मण की प्रशंसा करते हैं परन्तु ब्राह्मण कौन ? जो षडङ्ग वेद शास्त्रों को पढ़ सत्यासत्य विवेक से पूर्ण है वह ब्राह्मण। परन्तु आज कल क्या हुआ है। अनपढ़ पुरुष भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। क्या वे ब्राह्मण हैं ? यथार्थ में अज्ञानता के कारण यह सब बखेड़ा है। सच बात यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र आदि शब्द अध्यापक, उपाध्याय, योद्धा, वीर, व्यवहारी, व्यवसायी, परिश्रमी, अज्ञानी, मूर्ख, उत्तम, निकृष्ट, सुन्दर, कोमल, कठोर आदि शब्द के समान गुणवाची हैं और वैदिक समय में इन के प्रयोग भी वैसे ही होते रहे। जब अज्ञानता विस्तृत होने लगी उस समय में धीरे २ ये ब्राह्मणादिक नाम वंशपरक होगये। जैसे आज कल भी अनेकनाम वंशपर हो गये हैं और होते जाते भी हैं। यथा उपाध्याय, मुखोपाध्याय, पाठक, शास्त्री, द्विवेदी, चतुर्वेदी। जिस के समीप जाके विद्यार्थी अध्ययन करें उसे उपाध्याय; जो पढ़े पढ़ावे उसे पाठक; शास्त्र जाने उसे शास्त्री; दो वेद जाने उसे द्विवेदी इसी प्रकार चतुर्वेदी श्रोत्रिय आदि शब्दों के भी अर्थ समझें। परन्तु आज कल उपाध्याय आदि शब्द वंशपरक देखते हैं। मिथिला बंगाल आदि देशों में किसी वंश के लोग उपाध्याय कहलाते हैं कोई वंश श्रोत्रिय कोई चतुर्वेदी कोई शास्त्री इत्यादि। अर्थात् उस वंश का लोग परम मूर्ख भी हो एक अक्षर भी न जानता हो वह पढ़े या न पढ़े तथापि वह उपाध्याय वा श्रोत्रिय वा चतुर्वेदी आदि कहलाता ही रहेगा। मथुरा का चौबे एक अक्षर भी नहीं जानता हो परन्तु वह चतुर्वेदी पदवी से कदापि रहित नहीं हो सकता। मिथिला के सैकड़ों वंशों के पुरुष श्रोत्रिय कहते हैं परन्तु उन में से सैकड़े ९० कोरे निरक्षर हैं परन्तु इन की श्रोत्रिय पदवी कदापि नहीं चल सकती हैं। परन्तु आप यह भी जानते हैं कि यथार्थ में उपाध्याय श्रोत्रिय चतुर्वेदी आदि पुरुषों की शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा कथित है। अब यदि ये श्रोत्रिय, चतुर्वेदी, उपाध्याय, पाठक आदि निरक्षर

होने पर भी कहा करें कि शास्त्रों में हमारी परम प्रशंसा है अतएव हम सर्व-श्रेष्ठ हैं तो यह सत्य हो सकता है ? क्या वे शास्त्रीय वाक्य इन निरक्षरों में कदापि घटते हैं ? नहीं । कदापि नहीं । इसी प्रकार आप लोग समझें कि ये ब्राह्मण क्षत्रिय आदि शब्द भी धीरे धीरे आजकल के उपाध्याय श्रोत्रिय आदि शब्दवत् वंशपरक होगये । वे ब्रह्मवित् हों या नहीं परन्तु उस वंश के निरक्षर अज्ञानी भी ब्राह्मण कहलाते जावेंगे इसी प्रकार क्षत्रियादि भी जानिये । वेद और शास्त्र के वाक्य इन पर कदापि चरितार्थ नहीं होते । जो यथार्थ में ब्राह्मण हैं उन को ही वे वाक्य वर्णन करते हैं । ब्राह्मण यथार्थ में किस को कहते हैं इस का वर्णन वेद शास्त्रों में बहुत है । जैसे पशुओं में वा पक्षियों में वा जड़ आम्रादि वृक्षों में केवल आकृति वा रूप के देखने से उस २ जाति का बोध हो जाता है वैसा मनुष्य में नहीं है क्योंकि इस में चिन्ह की विशेषता नहीं इसी कारण मनुष्य एक जाति है यह भी अनेक प्रमाणों से पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं । मनुष्यों मे केवल गुणों से ब्राह्मणादिक पहचाने जाते हैं । इसी कारण इन के कृत्रिम और स्वाभाविक बाह्य और आन्तरिक गुणों के बहुत से विवरण शास्त्रों में कहे गये हैं जिन से हम शीघ्र पहचान कर सकते हैं कि यह कौन वर्ण है । यह भी यहां स्मरण रखना चाहिये ये ही लक्षण जिन में घटें वे ब्राह्मण । अन्यथा नहीं । और इस से यह भी सिद्ध होता है कि पश्वादिकवत् मनुष्य में जाति की भिन्नता नहीं । इस कारण प्रथम यहां यह भी अति संक्षेप से दिखा देना समुचित होगा कि यथार्थ में ब्राह्मण के कौन२ से लक्षण हैं । तब मालूम हो जायगा कि यथार्थ में ब्राह्मण कौन हैं और क्यों इन की इतनी प्रशंसा है ।

य मृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति । यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्कास्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥
८ । ५८ । १ ॥

(सचेतसः) सहृदय (ऋत्विजः) ऋत्विक्‌गण (यम्+इमम्+यज्ञम्) जिस इस यज्ञ को (बहुधा+कल्पयन्तः) अनेक प्रकार से कल्पित करते हुए (वहन्ति) सम्पादन कर रहे हैं और जिस यज्ञ में (यः+अनूचानः+ब्राह्मणः) जो मौनावलम्बी ब्राह्मण=ब्रह्मा (युक्तः+आसीत्) नियुक्त है (तत्र+यजमानस्य) उस यज्ञ के विषय में यजमान का (का+संवित्) क्या ज्ञान है ? ।

अनूचान=वेदाध्यायी, वा मौनावलम्बी। यज्ञ में ब्रह्मा को मौन रहना पड़ता है। अनु+ऊचान=अनूचान। अथवा न+ऊचानः अनूचानः। दोनों प्रकार से बन सकता है "अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती" अमर, इस से यह सिद्ध हुआ कि जो 'अनूचान' अर्थात् वेदाध्यायी हो अथवा यज्ञ में जो ब्रह्मा का कार्य सम्पादन करता हो और जिस के ऊपर यजमान का पूरा भरोसा हो। वह ब्राह्मण है। जो चारों वेदों के ज्ञाता होते हैं वे ही यज्ञ में ब्रह्मा बनाए जाते हैं। केवल ऋग्वेदी होता, केवल यजुर्वेदी अध्वर्यु, केवल सामवेदी उद्गाता और चतुर्वेदविद् ब्रह्मा होते हैं। इस से यह भी सिद्ध होता है कि एक वेदी ब्राह्मण नहीं हो सकता जो चारों वेद साङ्गोपाङ्ग सहित जाने वही ब्राह्मण है।

ओषधयः सम्वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ॥१०।९७।२२॥

यह आलङ्कारिक वर्णन है (सोमेन+राज्ञा+सह) ओषधीश्वर सोमनामक ओषधि से (ओषधयः+सम्वदन्ते) अन्यान्य ओषधिएं सम्वाद कर रही हैं कि (राजन्) हे सोमराजन्! (यस्मै) जिस रुग्ण पुरुष के निमित्त (ब्राह्मणः+करोति) ओषधिसामर्थ्यज्ञ ब्राह्मण चिकित्सा करता है (तम्+पारयामसि) उस रोगी को रोग से हम लोग पार कर देती हैं।

इस से सिद्ध है कि जो लोग ओषधियों के तत्त्वज्ञ हैं और जानकर रोगियों की चिकित्सा करते हैं वे ब्राह्मण हैं। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि पृथिवी पर के जितने क्या लताएं क्या वनस्पति क्या सुवर्ण लोहादि धातु क्या विविध पशु पक्षी पदार्थ हैं इन सबों के जानने वाले और प्रत्येक वस्तु के स्वभाव गुणादि के तत्त्वज्ञ हैं वे ब्राह्मण हैं क्योंकि वैद्यों को इस सब के ज्ञान की परम आवश्यकता होती है।

सम्वत्सरं शशयाना: ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥७।१०३।१॥

(व्रतचारिणः+ब्राह्मणाः) व्रतचारी ब्राह्मण के समान (संवत्सरं+शशयानाः) शरद् से लेकर वर्षा ऋतु के आगमन तक अपने बिल में ही सोते हुए

(मण्डूकाः) मण्डूक=दादुर वर्षा ऋतु में (पर्जन्यजिन्वताम्) मानो, पर्जन्य प्रीतिकर (वाचम्+प+अवादिषुः) वाणी बोल रहे हैं ।

वेदाध्ययन, सत्यभाषण, सत्यरक्षण, विद्यादानादि व्रत जो सदा किया करते हैं वे ब्राह्मण हैं । यह इस से सिद्ध होता है ।

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः । त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥ १०।७१।९

(इमे+ये) जो ये लोग (न+अर्वाङ्+न+परः) न कुछ ऐहलौकिक न पारलौकिक (चरन्ति) पर्य्यालोचना करते हैं । और जो (न+ब्राह्मणासः) न वेदाध्ययन न ग्रन्थादि विचार करते हैं । और इस कारण जो (न+सुते+करासः) सोमादि यज्ञ नहीं कर सकते हैं । (ते+एते+अप्रजज्ञयः) वे ये अविद्वान् पुरुष (वाचम्+अभि+पद्य) लौकिक भाषा जान (पापया) पापा अर्थात् हास्यादि से भरी हुई वाणी से युक्त होके (सिरी=सिरिणः) केवल हलग्राही बन (तन्त्रम्) कृषिलक्षण तन्त्र को (तन्वते) विस्तारित करते हैं वा वस्त्रादि वयन सम्पादन करते हैं । अर्वाक्=नीचे अर्थात् इस लोक का कार्य्य । परः=ऊपर पारलौकिक कार्य्य । सुत=अभिषुत सोम । "सुतंसोमंकुर्वन्तीति सुतेकराः याज्ञिकाः" । सिरी सिरी=हलग्राही । तन्त्र=कृषि या पट । अप्रजज्ञि="ज्ञा अव बोधने" धातु से 'कि' प्रत्यय होकर जज्ञि बनता है । यहां ब्राह्मण शब्द का अर्थ वेदाध्यायी है । जो वेदों को नहीं जानता वह यज्ञाधिकारी नहीं है । इससे सिद्ध होता है जो वेदोंको पढ़े पढ़ावे वे ही सचमुच ब्राह्मण हैं परन्तु आज उलटी बात है वेद का एकाक्षर भी न जाने परन्तु श्रोत्रिय कुल में जन्म हो तो वह झट सर्वाधिकारी बन जाता है ।

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः । सम्वत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७।१०३।७

यह वर्षा ऋतु के मण्डूक का वर्णन है ; (अतिरात्रे+सोमे) अतिरात्र नामक सोमयाग में (ब्राह्मणासः+न) ब्राह्मण के समान अर्थात् सोम यज्ञ के कुस में रात्रि में एकाएकी जैसे ब्राह्मण लोग मन्त्र उच्चारण करते हैं वैसे ही (मण्डूकाः) हे मण्डूको ! आप सब भी (न) इस समय (पूर्णम्+सरः) पूर्ण सरोवर में

(अभितः+वदन्तः) चारों तरफ ध्वनि करते हुए (सम्वत्सरस्य+तद्+अहः) वर्षा ऋतु के दिन में (परि+स्थ) चारों तरफ फैल जाते हैं । (यत्) जिस से (प्रावृषीणं+बभूव) वर्षा का दिन आया यह प्रतीत होने लगता है । "ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत" । ऋ० ७।१०३।८ ॥ सोम सम्पादी वेदवित् पुरुष जैसे भाषण करते हैं "उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि" ॥ २ ४३ । २ ॥ जैसे यज्ञों में उद्गाता ऋत्विक् गाता है जैसे ब्रह्म पुत्र स्तोत्र पढ़ता है तद्वत् ये पक्षिगण गा रहे हैं । इत्यादि अनेकशः मन्त्र गण सूचित करते हैं कि ब्रह्मविद् ही ब्राह्मण है । ये प्रमाण वेदों से दिये अब आगे अन्यान्य आर्ष प्रमाण को भी सुनिये !

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाऽथभिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतस्तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद्बाल्यञ्च पाण्डित्यञ्च निर्विद्याथ मुनिरमौनञ्च मौनञ्च निर्विद्याथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद्येनस्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्त्तं ततो कहोलः कौषीतकेय उपरराम ॥ बृ० ३।१॥

अर्थः–इसी परमात्मा को जान कर ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणाओं से पृथक् हो पश्चात् शरीर निर्वाहार्थ भिक्षाचर्य्य करते हैं । जोही पुत्रैषणा है वही वित्तैषणा है और जो वित्तैषणा है वही लोकैषणा है यह दोनों एषणाएं अर्थात् कामनाएं हैं इसहेतु ब्राह्मण पाण्डित्य को अच्छे प्रकार जान बाल्यभाव से स्थित रहे और बाल्य और पाण्डित्य को जान तब मुनि होता है और अमौन और मौन को जान तब ब्राह्मण होता है वह ब्राह्मण किस से होता है जिस से होवे उस से ऐसा ही होवे इस के अतिरिक्त सब दुःखग्रस्त है । तब कहोल कौषीतकेय चुप होगया ।

इस वाक्य से विस्पष्ट है जो ब्रह्मविद् और पूर्ण विवेकी और ईश्वर में परम विश्वासी और सांसारिक क्षणिक सुख से सदा विमुख परम ज्ञानी है । वह ब्राह्मण कहलाता है । पुनरपि इसी उपनिषद् में कहा गया है "यो वा एत-

दक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वा-स्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः। बृहदारण्यक उपनिषद् । ३ । ८ । १० । हे गार्गि ! जो इस अक्षर ब्रह्म को न जान कर इस लोक से प्रस्थान करता है वह कृपण है और हे गार्गि ! इस अक्षर ब्रह्म को जान कर इस लोक से जो प्रस्थान करता है वह ब्राह्मण, इस से भी यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मवित् को ही ब्राह्मण कहते हैं। इस प्रकार सर्वआर्षग्रन्थ इसी भाव का उपदेश देते हैं आगे महाभारतादि ग्रन्थ से भी प्रमाण दिये जावेंगे। यहां इतना समझना चाहिये कि वेद, शास्त्र जिन गुणों के कारण मनुष्य को ब्राह्मण कहते हैं निःस्सन्देह वे गुण बहुमूल्य अनर्घ हैं इस हेतु एतद्गुणविशिष्ट पुरुषों की प्रशंसा सर्वत्र कथित होना उचित है। अब आप समझ सकते हैं कि वेद में ब्राह्मणों की क्यों प्रशंसा है। आगे मैं महाभारतादिकों से ब्राह्मण के लक्षण पुनरपि निरूपण करूंगा। इस समय जिन ऋचाओं को द्वितीय प्रश्न में आपने प्रमाणत्वेन उपन्यास किया था उन का सत्यार्थ श्रवण कीजिये।

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ यजुः।९।४०॥

राज्याभिषेक काल में इस मन्त्र के द्वारा राजा होने की घोषणा की जाती है। (देवाः) हे ऋषि मुनि गणो ! हे विविध देशाऽऽगत विद्वद्गणो ! हे सेनाध्यक्षादि वीर पुरुषो ! हे प्रजानायको ! आप सब कोई मिल कर (इमम्) इस वृत राजा को (असपत्नम्+सुवध्वम्) शत्रु रहित बना कर अपनी २ रक्षा में प्रेरणा कीजिये। किस निमित्त ? (महते+क्षत्राय) महाबल के निमित्त (महते+जैष्ठ्याय) महान् ज्येष्ठता के लिये (महते+जानराज्याय) मनुष्यों के महान् आधिपत्य के लिये और (इन्द्रस्य+इन्द्रियाय) आत्मा के वीर्य्य के लिये अर्थात् आत्मज्ञान के लिए इन सब कार्य्यों के लिए इस वृत राजा को शत्रु रहित बनाओ। अब आगे राजा के माता पिता के और जिन प्रजाओं में वह राजा बनाया जाता है उनका नाम लिया जाता है सो आगे कहते हैं (अमुष्य+पुत्रम्) अमुक पुरुष का पुत्र (अमुष्यै+पुत्रम्) अमुक स्त्री का पुत्र (अस्यै-

विशः) इस कुरु देश वा पाञ्चाल देश अथवा महाराष्ट्रादि देश की प्रजाओं का अधिपति अमुक पुरुष बनाया जाता है इस को आप लोग स्वीकार करें। अब प्रजाओं की ओर देख कर कहते हैं कि (अमी:) हे अमुक देश की प्रजाओ ! (वः) आप लोगों का (एषः+राजा) यह राजा है । (अस्माकम्+ब्राह्मणानाम्) हम ब्राह्मणों का (सोमः +राजा) सोम अर्थात् ईश्वर राजा है । इस का भाव यह है कि ब्रह्मवित् परमज्ञानी सदा परोपकार परायण निःस्वार्थ ब्रह्मवादी पुरुष का नाम ब्राह्मण है यह निरूपण हो चुका है । इस हेतु निःस्सन्देह ऐसे पुरुष का शासक ईश्वरातिरिक्त अन्य कौन हो सकता है । अन्तिम वाक्य से ब्रह्मवित् पुरुष की गुणस्तुति गाई गई है ।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ यजु० २० । २५॥

(तम्+लोकम्) उस देश को मैं (पुण्यम्+प्रज्ञेषम्) पुण्य समझता हूं (यत्र) जिस देश में (ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च) ज्ञान और बल और ज्ञानी और बलिष्ठ (सह+चरतः) साथ ही सर्व व्यवहार का अनुष्ठान करते हैं । वे दोनों कैसे हैं (सम्यञ्चौ) साथ २ अच्छे प्रकार ईश्वर की उपासना करने वाले । पुनः वह देश कैसा है (यत्र+देवाः+सह+अग्निना) जहां पर के विद्वान् सदा अग्नि के साथ रहते हैं अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म्मों में सदा रत रहते हैं । इस से यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञान और बल मिल कर के जहां व्यवहार करते हैं यथार्थ में वह देश पवित्र है क्योंकि वहां अकारण धर्म्मरहित व्यर्थ मनुष्यादि वध नहीं होता है । अन्यथा बलिष्ठ पुरुष अकारण ही मनुष्यों को सर्व प्रकार से लूट मार करते हैं । कौन ऐसा आज देश है कि अज्ञानी परन्तु बलसम्पन्न राजा के कारण सहस्रों मनुष्यों का संहार नहीं होता रहता। पुनः आगे कहा गया है कि "यत्र देवाः सहाग्निना" केवल ज्ञान और बल से भी कार्य्य में कभी २ विघ्न पड़ जाता है । इस के साथ २ कर्मानुष्ठान की भी परम अपेक्षा है क्योंकि कर्मानुष्ठान ईश्वर में विश्वास दिलाता है । ईश्वर-विश्वासी ज्ञानी और बलिष्ठ कर्म्म में प्रवृत्त होते हैं ऐसे पुरुष सदा ईश्वर की आज्ञा से डरते रहते हैं इसी कारण ऐसे २ राज्य में अकारण हिंसा आदि दोष कदापि नहीं होते यह वेद का भाव है । पुनः ।

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्यदायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः । अथर्व० ।५।१८।६

(अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानविज्ञानरूप ज्योति से प्रकाशमान (ब्राह्मणः+न+हिंसितव्यः) ब्राह्मण की हिंसा नहीं करनी चाहिए । (प्रियतनोः+इव) जैसे अपने प्रिय शरीर के किसी भाग को हानि कोई नहीं पहुंचाना चाहता है तद्वत् ब्राह्मण को क्षति न पहुंचावे । (हि) क्योंकि (सोमः+अस्य+दायादः) ईश्वर इस का बन्धु बान्धव है और (इन्द्रः) पृथिवीश्वर (अस्य+अभिशस्तिपाः) इस के यश का रक्षक हैं । हम पूर्व में कह चुके हैं कि ब्राह्मण किस को कहते हैं । ऐसे ब्राह्मण की हिंसा करने से क्या कभी देश में कुशल हो सकता है । नहीं । इस हेतु बारम्बार वेद भी कहते हैं कि ज्ञानी की रक्षा करो। परन्तु अज्ञानता की बात यहां यह है कि जैसे कोई अज्ञानी पुरुष अपने को चतुर्वेदी नाम रख शास्त्रोक्त चतुर्वेदी की प्रशंसा अपने पर घटावे वैसी ही आज लीला है । विद्वानो ! सोचो विचारो ! जो यथार्थ में ब्राह्मण हैं उन की तो प्रतिष्ठा मर्य्यादा होनी आवश्यक है। परन्तु ये वाक्य क्या किसी जाति विशेष पर घटते हैं ? नहीं । यह सब वर्णन सामान्य रीति से ब्रह्मज्ञानी पुरुष का है। ब्रह्मज्ञानी की परम वृद्धि होवे इस कारण अथर्ववेद ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञानी की स्तुति करता है न कि यह वेद किसी जाति की खास तौर पर कीर्ति गाता है । अब आप विचार सकते हैं कि अथर्ववेद क्यों ब्राह्मण की प्रशंसा करता है । यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि वेदों में वंशानुगत वर्ण नहीं है किन्तु गुणानुगत वर्ण है ।

तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते ॥ अथर्व० । ५ । १९ । ९॥

(नारद) हे नारद ! अर्थात् ईश्वरीय ज्ञानरत पुरुष ! (यः) जो कोई (ब्राह्मणस्य+सद्+धनम्) ब्राह्मण के परोपकारी परिश्रमोपार्जित धन को (अभि+मन्यते) निष्कारण छीनता है वा उस पर अपना अधिकार स्थापित करता है (तम्+वृक्षाः+छायाम्+अपसेधन्ति) उस पुरुष को जड़ वृक्षादिक भी शरण नहीं देते हैं और प्रत्येक अज्ञानी पुरुष उस से कहते हैं कि ऐ ब्रह्महा पुरुष ! (नः) हम लोगों के निकट तू (मा+उपगा) मत आया कर ।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का व्याख्यान बहुत कर चुके हैं। आप लोगों ने अब बहुत कुछ वेदों के मन्त्रों पर विचार कर लिया होगा क्योंकि मैंने अनेक मन्त्र आप लोगों को सुनाए। अब आप विद्वद्गण निष्पक्षभाव से मीमांसा करें कि वेद किस प्रकार के वर्ण विभाग मानते हैं और किस हेतु ब्राह्मण की इतनी प्रशंसा है। द्वितीय प्रश्न का समाधान अच्छे प्रकार से होगया अब आप लोगों का सन्देह भी दूर होगया होगा ऐसा हम विश्वास करते हैं।

इति तृतीयं ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्यादि व्याख्यान निर्णयप्रकरणं समाप्तम्।

अथ तृतीयादि प्रश्न समाधान प्रकरणम्।

तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम आदि प्रश्नों के समाधान जानने के लिये प्रथम इसकी आवश्यकता है कि वैदिक सिद्धान्त की रक्षा के लिये प्राचीन ऋषियों ने कौनसे उपाय किये थे। आप लोग श्रवण कर चुके हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों समाज के अंग हैं। केवल दस्यु वा दास उपद्रवी पुरुष को कहते हैं। वे आर्य्यों से पृथक् गिने गये हैं। परन्तु 'शूद्र' समाज से शरीर से चरणवत् पृथक् नहीं "तपसे शूद्राय" कठिन काठिक कार्य्य सम्पादक को शूद्र कहते हैं। इन चारों का पठन पाठन में, यज्ञादि शुभ कार्य्य में तुल्याधिकार है यह 'पञ्चमानव' प्रकरण में अच्छे प्रकार सिद्ध हो चुका है। अब आप वैदिक ज्ञान की रक्षार्थ प्राचीन लोगों ने जो उपाय किये सो सुनिये! प्रथम नियम किया गया कि मनुष्य मात्र विद्याध्ययन करें और उनका एक नाम 'द्विज' रक्खा जाय। इस द्विज में विद्या के न्यूनाधिक के विचार से तीन भाग किये जायं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और जो न पढ़ें उनकी संज्ञा व्रात्य, असंस्कृत, वृषल, शूद्र आदि रक्खी जाय। जो पञ्चम वर्ष से लेकर १६ सोलहवें वर्ष तक भी गुरुकुल में प्रविष्ट हो व्रतादि धारण पूर्वक ४८ वा ३६ वर्ष केवल विद्याध्ययन में लगावे वह द्विज ब्राह्मण कहला सकता है। जो सोलवें वर्ष तक भी गुरुकुल

में प्रविष्ट न हो सके अथवा होकर भी पूर्ण समय तक अध्ययन न कर पावे वह यदि २२ बाईसवें वर्ष तक भी गुरुकुल में प्रविष्ट होवे तो वह क्षत्रिय बन सकता है। ब्राह्मण नहीं। इसी प्रकार २२ वें वर्ष में गुरुकुल में प्रविष्ट न हो सके किन्तु २३ वें अथवा २४ वें वर्ष में प्रविष्ट हो तो वह ब्राह्मण और क्षत्रिय पद को तो प्राप्त नहीं कर सकता किन्तु वह वैश्य बन सकता है। इस के साथ २ एक यह भी नियम था कि जिस का माता पिता अथवा वंश का वंश अथवा वंशपरम्परा अध्ययन व्रत के छूटने से शूद्र होगई है वह यदि अपने सन्तान को विद्या पढ़ाना चाहता हो तो नियमानुसार वह बालक ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य बन सकता है। इस प्रकार विद्याध्ययन न करने वाले को केवल व्रात्य वा शूद्र ही कह कर नहीं रहजाते थे किन्तु इन असंस्कृतों के साथ द्विज न तो पठन पाठन का और विवाहादिक का सम्बन्ध न रखते थे। वे व्रात्य समाज वहिष्कृत होजाते थे। इन में दो एक प्रमाण देते हैं वे ये हैं।

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत् ॥१॥ गर्भैकादशेषु क्षत्रियम् ॥२॥ गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ॥३॥ आषोडषाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवत्याऽऽद्वाविंशात् क्षत्रियस्याऽऽचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ॥ गोभिलीय गृह्यसूत्र द्वितीय प्रपाठक दशमी काण्डिका ॥

ऐसे ही वचन अन्यान्य गृह्य सूत्रों में भी हैं। भाव यह है कि गर्भ के दिन से अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का, गर्भैकादश वर्ष में क्षत्रिय का, गर्भ से द्वादश वर्ष में वैश्य का उपनयन होना चाहिये। यदि इस काल में न हो सके तो १६ वें वर्ष तक ब्राह्मण का, २२ वें तक क्षत्रिय का और २४ वें तक वैश्य का उपनयन अवश्य हो जाना चाहिये। मनुस्मृति में भी ऐसे ही वचन हैं यथाः—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत-ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भैकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३६ ॥ मनु० २
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥

इस का भी अर्थ पूर्ववत् ही है। अब आगे दिखलाते हैं कि इतने समय में

भी जो विद्याध्ययन के हेतु गुरुकुल में प्रविष्ट नहीं हुआ है उस के साथ किसी प्रकार का व्यवहार नहीं करे। यथा—

अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ५ ॥ नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयु र्न याजयेयुर्नैभिर्विवहेयुः ॥ गोभिलीय गृह्यसूत्र ॥

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः ॥३९॥ मनु०२
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धान् आचरेन्मानवैःसह ॥ ४० ॥

इस के अनन्तर मनुष्य वेदाधिकार से रहित होजाते हैं। इन को पुनः उपनयन न करावे, न पढ़ावे, न यज्ञ करावे, न इन के साथ विवाहादि व्यवहार करे। मनु जी भी यही कहते हैं। विशेष यह है कि अध्ययन व्रत से रहित पुरुष 'व्रात्य' कहलावें और आर्य्यों में वे निकृष्ट नीच माने जांय। आपत्तिकाल में भी इन अपवित्र मनुष्यों के साथ ब्राह्म और यौन सम्बन्ध अर्थात् वेदाध्ययनाध्यापन और विवाहादिक सम्बन्ध न जोड़े।

अब इस पर विचार कीजिये कि ब्राह्मण कौन है और शूद्र किस को कहते हैं?। बात यह है कि हम लोग धर्म ग्रन्थों पर ध्यान नहीं देते हैं। प्रचलित व्यवहार को धर्म्म मान सर्वथा धर्म्म विच्छेद करते हैं। आप लोग देखते हैं कि मनुप्रभृति धर्म्म तत्त्ववित् पुरुष वर्णव्यवस्था किस पर निर्भर रखते हैं। इन का विस्पष्ट कथन है कि उन्हीं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के पुत्र अनधीत रहने पर परम अग्राह्य अस्पृश्य शूद्र बन जाते हैं। इतनाही नहीं किन्तु इन के साथ जन्म भर किसी प्रकार के व्यवहार न करे। इस हिसाब से आज प्रायः सब ही महाशूद्र हैं क्योंकि नियम से कोई एक पुरुष भी गुरुकुल में अध्ययन नहीं करता है और इसी नियमानुसार शूद्रों की निन्दा है क्योंकि धर्म शास्त्रादिकों में इन्हीं असंस्कृत व्रात्यों को शूद्र पदवी दी गई है अब आप लोगों को प्रतीत होगया होगा कि शूद्रों की निन्दा क्यों कथित है। शूद्र कोई जाति विशेष नहीं अनधीत पुरुष का नाम ही शूद्र यहां है, आगे चल कर मनुजी बड़े जोर देकर कहते हैं कि:—

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् ।
तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यानिति निर्दिशेत् ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपनी सवर्णा स्त्रियों में भी यदि अव्रती पुत्रों को उत्पन्न करें अर्थात् अपने पुत्रों को उपनयन संस्कार न करें करावें तो वे वेद के अनधिकारी माने जांय और उन की संज्ञा 'व्रात्य' होवे। इस प्रकार अध्ययन के ऊपर ही वर्णव्यवस्था बांधी है।

ऐतरेयादि ऋषि और वर्णपरिवर्तन।

अब हम आपको बहुत से उदाहरण दिखलाते हैं कि जो दास दासी के पुत्र थे परन्तु वे ऐसे विद्वान् हुए कि जिन के लिखित ग्रन्थ पढ़ पढ़ाकर लोग वैदिक बनते हैं। उन में से प्रथम ऐतरेय ऋषि हुए हैं। इन्होंने ऋग्वेद के ऊपर अनेक ग्रन्थ लिखे। ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेयोपनिषद् आदि। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ही संपूर्ण ऋग्वेदीय श्रौत और गृह्यसूत्र हैं और इसी के अनुसार सारे वैदिक याग सम्पादित होते हैं। वे ऐतरेय ऋषि दासी पुत्र थे। 'मही' इन की माता का नाम था और इन की माता नचिजाति की दासी थी इस कारण इस को 'इतरा' भी कहते थे। 'इतरा' शब्दार्थ ही नीच है यथा-"इतरस्त्वन्यनीचयोः" अमरकोश॥ ये दासीपुत्र होने पर भी इतने बड़े विद्वान् हुए हैं कि जिन के लिखित ग्रन्थ विना ऋग्वद का तत्त्व ही नहीं खुलता है। द्वितीय कवष ऐलूष हुए हैं। इन के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण इस प्रकार लिखता है यथाः–

"ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत। ते कवषमैलूषं सोमादनयन्। दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति ? तं बहिर्धन्वोदवहन्। अत्रैनं पिपासा हन्तु। सरस्वत्या उदकं मा पादिति। स बहिर्धन्वोदूढः पिपासयावित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत्। तेवाऋषयोऽब्रुवन् त्रिदुर्वा इमंदेवा इमं ह्वयामहै इति तथेति। इत्यादि॥ ऐतरेयब्रा० २।१९।

ऋषि लोग सरस्वती के तट पर यज्ञ करते थे। उन्हों ने कवष ऐलूष को यज्ञ से बाहर निकाल दिया क्योंकि एक तो वह दासीपुत्र और दूसरा कितव (जुआरी) था और अपने आचरणों से बहुत ही भ्रष्ट था। पश्चात् इस

ने अध्ययनरूप महाव्रत को धारण किया है और सम्पूर्ण ऋग्वेद का अध्ययन करने पर उसे वेद के नवीन २ विषय भासित होने लगे। यह देख ऋषियोंने उसे बुलवाया इतनाही नहीं किन्तु उसे आचार्य बनाकर यज्ञ किया। आप देखें कि एक दासीपुत्र की कितनी प्रतिष्ठा हुई। तृतीय सत्यकाम जाबाल हैं। यह वेश्यापुत्र थे इन की चर्चा आगे पुनः कीजायगी ये ऐसे वेदान्ती हुए जिन के अनुकरण से आज लोग वेदान्ती बनते हैं। अब पुराणों से अनेक उदाहरण यहां दिखलाते हैं। इन पर विचार कीजिये।

मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत्।
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तुमानवाः ॥१५॥ आदिप०७५ ॥

महाभारत के इस श्लोक से सिद्ध है कि मनुजी से सब मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। इसी कारण मनुष्य वा मानव वा मनुज नाम प्रसिद्ध हुआ। इन से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हुए। मनु कौन हैं इस का भी वर्णन बहुत कुछ हो चुका है। यहां संक्षेप से दिखाया जाता है कि सूर्य्य और चन्द्र दो वंश क्षत्रियों के कहे जाते हैं इन का वंश किस प्रकार बना और इन में कैसे नानावर्ण उत्पन्न हुए। यह प्रकरण रोचक है। हम प्रथम विष्णु पुराण से आरम्भ करते हैं। विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश के प्रारम्भ से ही देखिये। मैत्रेयउवाच० "श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशांस्तांस्त्वं प्रब्रूहि मे गुरो"। अ० १। २॥ प्रथम पराशर जी से मैत्रेय पूछते हैं कि हे गुरो! आपने कृपा कर मुझ को नित्य नैमित्तिक कर्म्म, वर्णधर्म्म और आश्रमधर्म्म कह चुके अब मैं वंशों का वर्णन सुनना चाहता हूं। सो आप कहें। पराशर उवाच "मैत्रेय श्रूयतामयमनेक यज्विवीरशूरभूपालालंकृतो ब्रह्मादि मानवो वंशः"। हे मैत्रेय! इस मानव वंश को सुनो। जिस से अनेक याज्ञिक शूर, वीर, भूपाल, हुए हैं और जिस का मूल कारण ब्रह्मा है।

ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षःप्रजापतिर्दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वान् विवस्वतोमनुः मनोरिक्ष्वाकु नृग धृष्ट शर्य्याति नरिष्यन्त पांशुनाभागनेदिष्ठ करूष पृषध्राद्याः पुत्रा बभूवुः ४।१।७

'ब्रह्मा के दक्षिण अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति हुए। दक्ष की अदिति कन्या हुई। अदिति से विवस्वान्। विवस्वान् से मनु उत्पन्न हुए और मनु के इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्य्याति, नारिष्यन्त, प्रांशु, नाभागनेदिष्ठ, करूप और पृषध्र। मनुजी से इस प्रकार अनेक वंश चले। अब मनु के पुत्रों के विषय में पृथक् २ लिखते हैं।

१ पृषध्र।

पृषध्रस्तु गुरु-गोवधाच्छूद्रत्वमगमत्। विष्णु पु०। ४। १। १४।

गुरु की गौ के वध से पृषध्र शूद्र होगया। इसी विषय में हरिवंश कहता है।

पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय।
शापाच्छूद्रत्व मापन्नः ॥ ६५६ श्लोक।

हे जनमेजय! पृषध्र गुरु की गौ मारकर शूद्र होगया। इस विषय में भागवत यों कहता है।

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरणा कृतः।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥
एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥
एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा।
तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससारह ॥ ५ ॥
खड्ग मादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि।
अजानन्नहनद् बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया ॥ ६ ॥
मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा।
अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रूं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥
तं शशाप कुलाचार्य्यः कृतागस मकामतः।
न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्म्मणा भविताऽमुना ॥९॥
एवंशप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः।
अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥

एवं प्रवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्नि मुत्थितम् ।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥

मनु-पुत्र पृषध्र को गुरु वसिष्ठ ने गोपालक बनाया वह तत्पर हो रात्रि में बीरासन लगा गौवों की रक्षा करने लगा ॥३॥ एक समय रात्रि में मेघ बरसते हुए एक व्याघ्र गोशाला में आघुसा । गौएं उठ कर भयभीत हो गोष्ठ में हलचल मचाने लगीं ॥४॥ उस व्याघ्र ने एक गौ पकड़ ली । वह गौ भयातुर होकर बहुत चिल्लाने लगी । उस का रोदन सुन पृषध्र निकला ॥५॥ रात्रिमें अन्धकार छागया था । तारागण भी नहीं थे वह पृषध्र हाथमें खड्ग ले व्याघ्रकी शंका से अपनी कपिला गौ के शिर पर मारा ॥६॥ उस ने समझा कि शार्दूल मरा। परन्तु प्रातः काल उठ देखता है कि कपिला गौ मरी हुईहै । वह बहुत दुःखित हुआ ॥८॥ अज्ञानतः अपराधी पृषध्र को कुलाचार्य ने शाप दिया कि इस कर्म्म से क्षत्रियों में अधम होकर भी नहीं रहेगा किन्तु शूद्र ही होगा ॥९॥ इस ने कृतांजलि हो गुरु के शाप को ग्रहण किया । इस के अनन्तर वह शूद्र होकर ऊर्ध्वरेता हो मुनिप्रिय तपस्या करने लगा भगवान में बड़ी प्रीति और भक्ति की अन्त में वन में दावाग्नि देख अपने शरीर को दग्ध कर दिया और ब्रह्म को प्राप्त हुआ (१)

२ करूष ।

करूषात् कारूषा महाबलाः क्षत्रियाः बभूवुः । विष्णुपु० ४।१।०५

करूष से महाबलिष्ठ क्षत्रिय उत्पन्न एहु । इस पर भागवत की सम्मति ।

कारूषान्मानवा दासन् कारूषाः क्षत्रजातयः
उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्म्मवत्सलाः । भा० ९।२।१६

मनु-पुत्र कारूष से कारूष नामक क्षत्रिय हुए जो उत्तर देश के रक्षक और धर्म्मवत्सल और ब्राह्मण हुए ।

(१) यह पृषध्र शूद्र होने पर भी बड़ो तपस्या की और अन्त में ब्रह्ममें लीन हुआ । परन्तु रामायण में शूद्र की तपस्या निषिद्ध है ।

३ नाभाग ॥

नाभागो नेदिष्ठपुत्रस्तु वैश्यतामगमत् । वि० ४।१।१६

नेदिष्ठ पुत्र नाभाग वैश्य हुए ।

यद्यपि नाभाग वैश्यवृत्ति करने लगे परन्तु इनके सन्तान पुनः राजा भी हुए हैं अर्थात् वैश्य से पुनः क्षत्रिय हुए । इन का वंश इस प्रकार विष्णु पुराण में कहा है । नाभाग, भलन्द, वत्सप्रि, प्रांशुखनित्र, चक्षुप, विंश, विविंश चरनीनेत्र, अतिभूति, करंधम अविक्षि, मरुत्त । ये उत्तरोत्तरपुत्र और पूर्व पूर्व पिता हैं ऐसा जानना ।

मरुत्त के विषय में विष्णुपुराण कहता है

यस्येमावद्यापि श्लोकौ गीयेते । मरुत्तस्य यथायज्ञस्तथा कस्या भवद्भुवि । सर्वं हिरण्मयं यस्य यज्ञवस्त्वति शोभनम् ॥१८॥

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारः सदस्याश्चदिवौकसः ॥१९॥
मरुत्तश्चक्रवर्ती नरिष्यन्तनामानं पुत्रमवाप इत्यादि ।२०।

आज भी मरुत्त चक्रवर्ती राजा के सम्बन्ध में ये दो श्लोक गाए जाते हैं । मरुत्त का जैसा यज्ञ हुआ पृथिवी पर वैसा यज्ञ किस का हुआ । जिस के यज्ञ में सब ही वस्तु हिरण्यमय थी । सोमरस से इन्द्र अत्यानन्दित हुए और दक्षिणायों से ब्राह्मण । देव सदस्य और मरुद्गणा उस यज्ञ में अन्न परोसने वाले थे । इत्यादि । यह मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुए । इन के एक पुत्र नरिष्यन्त हुआ । इस वैश्य वंश में अनेक ऋषि भी हुए हैं ।

श्रीमद्भागवत नवमस्कन्ध द्वितीयाध्याय में भी इसी प्रकार का वर्णन है । यथा

तस्यावीक्षित् सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ।
संवर्तो याजयद्यं वै महायोग्यंगिरः सुतः ॥२६॥
मरुत्तस्य यथायज्ञो नतथाऽन्यस्यकश्चन ।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥

हरिवंश (११) में कहा गया है कि नाभागरिष्ट के दो पुत्र वैश्य से ब्राह्मण हुए। यथाः-

नाभागारिष्ट पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतांजातौ।

४ धृष्ट

धृष्टस्यापि धार्ष्टकं क्षत्रं समभवत् । वि० ४।२।२

विष्णुपुराण कहता है कि धृष्ट से धार्ष्टक क्षत्रिय उत्पन्न हुए। इसी विषय में भागवत कहता है।

धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतांक्षितौ । ९।२। २७ ॥

धृष्ट से धार्ष्ट क्षत्रिय हुए। पुनः क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए।

५ अग्निवेश्य ।

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः ॥२१॥
ततो ब्रह्मकुलं जातमग्निवेश्यायनं नृप ॥२२॥

अग्नि वेश्य के विषय में भागवत कहता है देवदत्त के पुत्र अग्नि वेश्य हुए। कानीन जातूकर्ण ऋषि नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इन के वंश में अग्निवेश्य गोत्रवाला ब्राह्मण वंश उत्पन्न हुआ। इत्यादि

६ रथीतर ।

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चांगिरसः स्मृताः ।
रथीतरस्य प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥२॥

विष्णुपुराण चतुर्थ अंश द्वितीयाध्याय में लिखा है कि नभग, नाभाग, अम्बरीष, विरूप, पृषदश्व, और रथीतर उत्तरोत्तर पुत्र हुए। ये सब यद्यपि क्षत्रिय थे परन्तु रथीतर गोत्र के ब्राह्मण होगए।

इस विषय में भागवत कहता है।

रथीतरस्याप्रजस्य भार्य्यायां तन्तवेऽर्थितः ।
अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥२॥

एतेक्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरिसाः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेताः द्विजातयः ॥२३॥ ९।६।

उस रथीतर के सन्तान हीन होनेपर पुत्रोत्पत्ति के लिये प्रार्थित अङ्गिरा ने रथीतर की स्त्री में अनेक ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र उत्पन्न किये । वे आंगिरस गोत्र वाले ब्राह्मण हुए। रथीतर की अन्य स्त्री के पुत्र रथीतर गोत्र वाले क्षत्रिय हुए । इत्यादि कथा देखिये ।

७ हारीत

अम्बरिषस्य मांधातुस्तनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत् ।
तस्माद्धरितो यतोऽङ्गिरसो हारीताः ॥ वि० ४।३।५ ॥

मांधाता का पुत्र अम्बरीष । उस का पुत्र युवनाश्व । इस के वंश में हरित। हरित से जो वंश चले वे अंगिरस और हारीत गोत्र वाले ब्राह्मण हुए । लिङ्ग पुराण कहता है किः—

हरितो युवनाश्वस्य हारीता यत आत्मजाः ।
एतेह्यङ्गिरसः पक्षे क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥

युवनाश्व का पुत्र हरित । हरित के हारित पुत्र हुए । वे आङ्गिरा के पक्ष में हुए अर्थात् क्षत्रिय से ब्राह्मण बने । वायु पुराण कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन करता है यथाः—

हरितो युवनाश्वस्य हारीता भूरयः स्मृताः ।
एतेह्यंगिरसः पुत्राः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥

युवनाश्व का पुत्र हरित हुआ । इस के गोत्र में अनेक हारीत कहलाने लगे वे अङ्गिरा स हुए और पीछे क्षत्रिय से ब्राह्मण बने ।

८ शौनक ।

क्षत्रवृद्धात् सुनहोत्रः पुत्रोऽभवत् काश,लेश, गृत्समदा, स्त्रयोऽस्याभवन् । गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्य प्रवर्तयिताऽभूत ॥ १ ॥ काशस्य काशिराजस्ततो दीर्घतमापुत्रोऽभूत धन्वन्तरिस्तुदीर्घतमसोऽभूत ॥ वि० पु० ४ । ८ । १ ॥

क्षत्रवृद्ध का सुनहोत्र पुत्र। सुनहोत्र के काश, लेश और गृत्समद तीन पुत्र हुए। गृत्समद का शौनक पुत्र हुआ। इसी ने चारों वर्णों की व्यवस्था चलाई। काश का काशिराज। उस से दीर्घतमा। उस से धन्वन्तरि। वायुपुराण इस विषय में यों कहता है:—

पुत्रोगृत्समदस्य च सुनकोयस्य सौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच॥
एतस्य वंशेसंभूता विचित्रा कर्म्मभिर्द्विज।

गृत्समद का पुत्र सुनक। सुनक का पुत्र सौनक इस सौनक से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण कर्म्मों से बने।

हरिवंश की सम्मति अध्याय॥ २९॥

पुत्रोगृत्समदस्यापि सुनको यस्य शौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच॥

९ गृत्समति।

इस के विषय में ऐसा ही हरिवंश ३२ अध्याय में कहा है:—

सचापिवितथः पुत्रान् जनयामास पञ्चवै।
सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं गर्गं तथैवच।
कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम्॥
काशकश्च महासत्वस्तथागृत्समतिर्नृपः।
तथागृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः॥

वितथ के पांच पुत्र हुए। सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग, कपिल। सुहोत्र के महासत्त्व काशक और गृत्समति दो पुत्र हुए। गृत्समति के सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों हुए। क्षत्रवृद्ध के विषय में भागवत॥ ९। १७। २

क्षत्रवृद्धसुतस्यासन् सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः।
काश्यः कुशो गृत्समद इतिगृत्समदादभूत्॥
शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः।

क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र। सुहोत्र के तीन पुत्र हुए। काश्य, कुश, गृत्समद। गृत्समद का शुनक। और शुनक से शौनक जो ऋग्वेदियों में श्रेष्ठ मुनि हुए।

गृत्समद ॥

द्वितीय मण्डल के आरम्भ में सायण इस प्रकार कहते हैं।

मण्डलद्रष्टा गृत्समद ऋषिः। स च पूर्वमांगिरसकुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञकालेऽसुरैर्गृहीतः इन्द्रेणमोचितः। पश्चात्तद्वचनेनैव भृगुकुले शुनकपुत्रो गृत्समदनामाऽभूत्। तथाचानुक्रमणिका।

य आङ्गिरसः शौनहोत्रोभूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्।

द्वितीय मण्डल के द्रष्टा गृत्समद ऋषि हैं। वह प्रथम आंगिरस कुल में शुनहोत्र के पुत्र थे। यज्ञ में असुरों ने उन्हें पकड़ लिया। तब इन्द्र ने रक्षा की। इन के ही वचन से भृगुकुल में शुनक पुत्र गृत्समद के नाम से प्रसिद्ध हुए जैसा कि अनुक्रमणिका में लिखा है। जो शौनहोत्र आंगिरस थे पीछे वह शौनक भार्गव गृत्समद हुए जिन्हों ने द्वितीय मण्डल देखा।

महाभारत अनुशासन पर्व में वीतहव्य की आख्यायिका के साथ गृत्समद का वर्णन आया है।

वीतहव्य और गृत्समद।

युधिष्ठिर उ०—श्रुतं मे महदाख्यान मेतत्कुरुकुलोद्वह।
सुदुष्प्रापं यद्ब्रवीषि ब्राह्मण्यं वदताम्वर ॥ १ ॥
विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्त मित्युत।
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥ २ ॥
वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतोमे विप्रतांगतः।
स केनकर्म्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तम ३ अनु० ॥ ३०

भीष्मपितामह से युधिष्ठिर पूछते हैं कि आप कहते हैं कि ब्राह्मणत्व दुष्प्राप है। परन्तु विश्वामित्र ब्राह्मण हुए। यह भी सुना है कि वीतहव्य भी ब्राह्मण हुए। हे पितामह! वीतहव्य की कथा सुनाइये। किस तपस्या से वह ब्राह्मण हुए

भीष्म उवाच–शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः।
राजर्षिर्दुलभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम् ॥ ५ ॥

भीष्म कहते हैं कि सुनो जिस प्रकार वीतहव्य ब्राह्मण हुए। वीतहव्य और काशि-राज के सन्तानों में बराबर युद्ध होता रहा। सर्व नाश होने पर काशीराज दिवोदास भरद्वाज की शरण में गए। भरद्वाज के यज्ञ करने से दिवोदास को एक पुत्र प्रतर्दन नाम का हुआ। इस ने वीतहव्य के सकल दायादों को युद्ध में मार गिराया। वीतहव्य भागकर भृगु के आश्रम में जा छिपे वहां पर भी प्रतर्दन पहुंचे और भृगु से कहा कि आप के आश्रम में आए हुए वीतहव्य को दीजिये। भृगु ने कहा कि राजन्! यहां क्षत्रिय कोई नहीं है किन्तु सब ही द्विज ही हैं यह सुन वहां से प्रतर्दन चले गये।

"भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितांगतः" भृगु के वचन मात्र से वह ब्रह्मर्षि हुए। "वीतहव्यो महाराजो ब्रह्मवादित्व मेव च। तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः। यत्रगृत्समदो ब्रह्मन् ब्राह्मणैः स महीयते। स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोभवत्।" वीतहव्य का गृत्समद पुत्र हुआ यह भी ब्रह्मर्षि हुआ इत्यादि कथा अनुशासन पर्व में आई है।

दिवोदास=दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रायुर्नृपः।
मैत्रायणास्ततःसोमा मैत्रेयास्तु ततस्मृताः।
एते वै संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः।

दिवोदास का पुत्र मित्रायु ब्रह्मर्षि हुआ। मित्रायु से सोम मैत्रायण हुए। उस वंश का नाम इस कारण मैत्रेय हुआ। यद्यपि ये क्षत्रिय वंश के थे परन्तु पीछे भार्गव ब्राह्मण हुए।

काश=भार्गस्य भार्गभूरतश्चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिः ।
इत्येते काशयां भूपतयः कथिताः ॥ वि०पु० ४ । ८ । ९

भार्ग के पुत्र भार्गभू हुए । इससे चारों वर्णों की प्रवृत्ति हुई । ये सब काश के सन्तान भूपति हुए ।

वेणुहोत्र सुतश्चापि भर्गोनाम प्रजेश्वरः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात् ॥
एतेह्याङ्गरसः पुत्रा जाता वंशेऽथभार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः ॥ हरिवंश २६

वेणुहोत्र के पुत्र प्रजेश्वर भर्ग हुए । वत्स के पुत्र वत्सभूमि और भार्गव के भृगुभूमि । ये आङ्गिरा के पुत्र भृगुवंशी हुए । इन से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के वंश चले ।

सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ।
सुतोऽभवन्महातेजा राजा परम धार्मिकः ॥
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गवात् ।
एतेह्याङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथभार्गवे ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ ॥ हरिवंश ३२

वायु पुराण में इस प्रकार है ।

वेणुहोत्र सुतश्चापि गार्ग्यो वै नाम विश्रुतः ।
गार्गस्य गार्गभूमिस्तु वत्सो वत्सस्य धीमतः ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्मिकाः ।
रम्भ=रंभस्य रभसः पुत्रो गभीरश्चाक्रियस्ततः ॥
तस्य क्षेत्रे ब्रह्म यज्ञे शृणु वंश मनंनसः ॥ भा०पु० ९।१७।१०

रम्भ का रभस । रभस से गभीर और अक्रिय । अक्रिय की स्त्री में ब्राह्मण कुल उत्पन्न हुआ ।

बलि=हेमात्सुतपास्तस्माद्बलिस्तस्य क्षेत्रे दीर्घतमा अंग वंग कलिङ्ग सुह्य पुण्ड्राख्यं बालेयञ्च क्षत्रमजीजनत् । तन्नामसन्तति संज्ञाश्च विषया बभूवुः ॥ विष्णुपु० ४ । १८ । १-२ ॥

हेम से सुतपा । उस से बलि । बलि के क्षेत्र में दीर्घतमा ने अंग, वंग, कलिङ्ग, सुह्य, और पुण्ड्र, ये पांच क्षत्रिय उत्पन्न किये । इन के नाम से ये पांचों देश भी हुए ।

"एक एक पुरुष के चारों वर्ण के पुत्र"

अब अनेक उदाहरण आप को सुनाए गये । इन पर विचार करना आप का काम है । इस प्रकरण में प्रथम मैंने दिखलाया है कि विद्याध्ययन के ऊपर प्राचीन लोगों ने वर्णव्यवस्था चलाई और इसी के अनुसार ब्राह्मण-वंश से शूद्र और शूद्र-वंश से ब्राह्मण होते रहे और इसी नियम के वश एक एक पुरुष के पुत्र चारों वर्ण के हुए हैं । "गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्तयिताऽभूत्" वि०पु० । "पुत्रो गृत्समदस्यच शुनको यस्य शौनकः । ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच । एतस्य वंशे संभूता विचित्रा कर्म्मभिर्द्विज" वा०पु० "पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः । ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः पुत्रास्तथैव च" हरिवंश । विष्णु, वायु और हरिवंश आदिक सब ही कहते हैं कि शौनक के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण हुए । निःसन्देह यह उदाहरण हमें सूचित करता है कि निष्पक्ष वैदिक तत्त्ववित् शौनक ने गुण कर्म्म देख कर अपने पुत्रों को योग्यतानुसार ब्राह्मणादिक चारों पद दिये । यथार्थ में यही वैदिक सिद्धान्त है । केवल शौनक ही ऐसे नहीं हुए किन्तु भार्ग भूमि और गर्ग आदि अनेक ऋषि हुए हैं जिन्होंने ऐसी व्यवस्था चलाई । पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्राह्मणवंश से शूद्रवंश और शूद्र वंश से ब्राह्मण वंश होते थे । यदि ब्राह्मणादिवर्ण कृत्रिम न होते तो इन में परिवर्तन होने की कब संभावना होती अतः पश्वादिकवत् मनुष्य में भिन्न जातिता नहीं, यह भी सिद्ध होता है ।

"व्रात्य और शूद्र"

अब पुनः विचार के लिये यह कुछ बाकी रह गया है कि वेद के अनुसार शूद्र एक वर्ण है। समाज का एक अंग है। वेदों में शूद्रों की कहीं निन्दा नहीं प्रत्युत चारों का दर्जा अपने २ ठिकाने पर तुल्य है फिर क्या कारण है कि शास्त्र और स्मृति में शूद्रों की निन्दा देखी जाती है ? इस का उत्तर यह है कि धर्म्म शास्त्रों में शूद्र किस को कहा है क्या किसी जाति विशेष को अथवा किसी व्यक्ति विशेष को ? जब तक इस को अच्छे प्रकार नहीं समझेंगे तब तक इस विवाद से पार नहीं उतर सकते, अतः इस को आप लोग अच्छे प्रकार समझ लेवें। जैसे वेदों में "दास" शब्दार्थ बहुत नीच था परन्तु धीरे २ इस का अर्थ बहुत उच्च हो गया। क्योंकि "सेवक" के अर्थ में इस का प्रयोग होने लगा। पूर्व प्रकरण में इस का वर्णन किया है। परन्तु 'शूद्र' शब्द में इस की विपरीत कार्य्यवाही हुई। जिस को अनध्ययन के कारण ऋषियों ने 'व्रात्य' संज्ञा दी थी। वही व्रात्य धीरे २ शूद्र कहलाने लगा अर्थात् वह व्रात्य शब्द धीरे धीरे 'शूद्र' शब्द का पर्य्याय बन गया इस के प्रयोग में किञ्चित भी भेद नहीं रहा। इस प्रकार का बहुत हेर फेर शब्द शास्त्र में हो जाता है। जैसे वेदों में असुर शब्द ईश्वर, शूरवीर, सूर्य्य, मेघ, देव आदि अर्थों में विद्यमान था परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर यावत् संस्कृत ग्रन्थों में अब इस का केवल दुष्ट ही अर्थ रह गया इसी प्रकार यम, यमी, अश्वी, उर्वशी आदि शब्दों के अर्थ में बहुत परिवर्तन होगया है। इसी प्रकार वेदों में उत्तम अर्थ रखने वाला भी शूद्र शब्द ब्राह्मण, धर्म्म शास्त्रादिकों में निकृष्टवाचक होगया अर्थात् वेदों के विचार से यह विस्पष्ट है कि वेदों में जिस को दस्यु और दास कहते हैं उसी को ब्राह्मण, मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में 'शूद्र' कहते हैं। और इसी हेतु शूद्र के नाम के साथ २ दास शब्द का प्रयोग मन्वादिकों में विहित है। पूर्व में हम कह चुके हैं कि चोर, डाकू, नास्तिक, दुष्कर्म्मी आदि परम नीच पुरुष का नाम दास वा दस्यु है। वेदों में कहीं भी शूद्र को दास वा दस्यु की पदवी नहीं दी गई है। वेदों में शूद्र का दर्जा ब्राह्मणादिक के तुल्य ही था। क्रमशः धीरे २ शूद्र शब्द का अर्थ बहुत नीचे गिर गया। इस भाव को जब तक लोग नहीं समझेंगे तब तक कदापि

वेदाशय प्रतीत नहीं हो सकता। हे विद्वानो! ऐसा परिवर्तन सर्वदा होता रहता है। इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहां हमें विचार करना है कि किस प्रकार व्रात्य शब्द शूद्र वाचक होगया। अतः प्रथम 'व्रात्य' किस को कहते हैं यह जानना आवश्यक है।

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्। तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानिति निर्दिशेत। मनु १०। श्लो० २०। अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः। नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्। ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेन्मानवैः सह। मनु० अ० २। अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्नैभिर्विवहेयुः। गोभिलीय गृह्यसूत्र।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो अपनी सवर्णा स्त्रियों में भी असंस्कृत अर्थात् गर्भाधानादि संस्कार रहित सन्तानों को उत्पन्न करते हैं। वे असंस्कृत, गायत्री परिभ्रष्ट सन्तान 'व्रात्य' नाम से पुकारे जाते हैं। जिन का उपनयन २४ वें वर्ष तक भी नहीं हुआ जो उपनयनपूर्वक वेदाध्ययन नहीं करते हैं वे द्विज सन्तान कर्म से पतित होके 'व्रात्य' कहलाने लगते हैं वे क्या ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य के पुत्र हों असंस्कृत रहने पर वे 'व्रात्य' ही कहलावेंगे। इन व्रात्य संज्ञक मनुष्यों के साथ आपत्ति काल में भी कोई सम्बन्ध न करे। इन को अब उपनयन कर न तो पढ़ावे और न इन के साथ विवाहादि सम्बन्ध करे। गोभिल आदि सब आचार्यों की यही सम्मति है। अब आप विचारें कि इस 'व्रात्य' को ही शास्त्रों में शूद्र कहा है। क्योंकि यहां आप देखते हैं कि 'व्रात्य' को पठन पाठन इस के साथ सम्बन्ध और उपनयन निषिद्ध है एवं शूद्रों के साथ भी यही निषेध है इस कारण शूद्र और व्रात्य दोनों ही एक हैं अर्थात् शूद्र और व्रात्य दो भिन्न जातिएं नहीं किन्तु दोनों एक हैं। इस में एक यह भी कारण है कि "ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णाद्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रोनास्तितुपञ्चमः" मनु० १०। ४। इस मनु वचन के अनुसार वर्ण चार ही हैं। वे पतित व्रात्य

किस वर्ण में गिने जासक्ते हैं । निःसन्देह इन की गिनती शूद्रों में होगी। अतः शूद्र और दास दोनों एक ही हैं अब आप को मालूम होगया होगा कि मन्वादिकों ने शूद्र किस को कहा है।

'वृषल आदि शूद्र वाचक शब्द'

अब कतिपय शूद्र वाचक शब्दों पर विचार करने से भी प्रतीत होजायगा कि पढ़ने लिखने पर भी यदि कोई आचरण नहीं करता प्रत्युत धर्म्म विरोध करता है तो इस अवस्था में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों शूद्र कहलावेंगे यथा—मनुजी कहते हैं कि "वृषो हि भगवान् धर्म्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्म्मं न लोपयेत् । मनु० ८।१६" । "वृष" यह नाम भगवान् धर्म्म का है । इस को जो निवारण करता है अर्थात् जो न स्वयं धर्म्म करता और न करवाता किन्तु धर्म्म कर्म से क्या होता है इत्यादि वार्ता जो कहा करता है उसे विद्वान् लोग 'वृषल' अर्थात् शूद्र समझते हैं इस कारण धर्म्म लोप नहीं करना चाहिये । पुनः "शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेनच । पौण्ड्रकाश्चौड्र द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः । पारदापह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः । मनु० अ० १० । श्लोक ४३,४४" । ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय जातिएं उपनयनादि क्रियाओं के लोप के कारण और याजन अध्यापन और प्रायश्चित्तादि के निमित्त ब्राह्मणों के दर्शन न होने से धीरे २ शूद्र होगये । वे ये हैं पौण्ड्रक, चौड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद अपह्लव, चीन, किरात, दरद और खश । इन प्रमाणों से सिद्ध है कि जो धर्म्म कर्म्म रहित हैं वे शूद्र कहाते हैं । पौण्ड्रक आदि क्षत्रिय वर्ण विदेश में जाने के कारण अध्ययन अध्यापनादि व्रत छूटने से वे शूद्र होगये । यदि आप कहें कि यहां तो वृषल शब्द है न कि शूद्र शब्द ! सुनिये वृषल नाम शूद्र का ही है "शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः" अमरकोश के अनुसार शूद्र, अवरवर्ण, वृषल और जघन्यज आदि नाम शूद्र के ही हैं । सब कोश यही कहते हैं । यहां पर आपने विस्पष्ट रूप से देखा कि धर्म्म के लोप करने वाले को शूद्र कहते हैं न कि किसी जाति विशेष को । अध्ययन अध्यापन के पश्चात् भी

लोग धर्म-लोपक बन जाते हैं । ऐसे पुरुष अवश्य निन्दनीय और शूद्र पद-वाच्य हैं । इस में अब सन्देह नहीं रहा कि शूद्र किस को कहते हैं । शूद्र किसी जाति विशेष का नाम नहीं किन्तु अध्ययनव्रतरहित तथा धर्मद्रोही पुरुष का नाम शूद्र है । व्रात्य भी इसी को कहते हैं इस हेतु व्रात्य और शूद्र एक ही हैं । पूर्व लेख से आप को प्रतीत होगया है कि व्रात्य नाम अव्रती पुरुष का है । इसी अव्रती को वेदों में दास और दस्यु कहा है । परन्तु मन्वादि धर्म्म शास्त्रों में शूद्र को दास कह कर पुकारा है अतः सिद्ध हुआ कि वैदिक दास दस्यु धर्म्म शास्त्र के शूद्र हैं । यही महान् अन्याय चल पड़ा जिस से आज सब कोई शास्त्रीय भ्रम में पड़ रहे हैं ।

अब आप को यह भी मालूम होगया होगा कि शूद्र को वेदाध्ययनादि निषेध क्यों है । विद्वानो ! जिस द्विज सन्तान को २४ वर्ष तक भी उपनयन संस्कार नहीं हुआ उस को राजा के तरफ से यह दण्ड मिला कि अब इस को न कोई पढ़ावे न उपनयन करावे न कोई द्विज इस को अपनी कन्या देवे इत्यादि । यह धर्म्म-नियम मनुष्य कल्याणार्थ ऋषियों ने चलाया कि इस भय से भी लोग पठन पाठन करें करवावें । अब चौबीस वर्ष के अनन्तर यदि किसी को होश आया कि आहा ! मेरा जीवन यों हीं बीत रहा है । मैंने मनुष्य देह धारण कर धर्म्म-संचय नहीं किया अब चल कर कुछ वेदादि शास्त्र अध्ययन कर जीवन को सफल करें । इत्यादि विचार कर वह किसी गुरु के पास जा पढ़ाने के लिये निवेदन करता है कि हे गुरो ! मुझे विद्या सिखलावें । गुरु आचार्य उस धर्म्म नियम के वश हो कहते हैं कि तेरी आयु अब २८, २६, ३० होगई तू अब व्रात्य संज्ञक होगया है । अब तुझ को कैसे पढ़ावें । अब तुझे विद्या भी नहीं आसकती इत्यादि । इस प्रकार इस को अब किसी पाठशाला में शरण नहीं मिलती है । आज भी देखते हैं कि जिस विद्यार्थी के आचरण पर गुरु को सन्देह होता है उसे निकाल देते हैं और सर्वत्र घोषणा करवा देते हैं कि इस को कोई भी अपनी पाठशाला में न पढ़ावे । वैसा ही होता है । इसी प्रकार आप समझें कि यहां संस्काररहित पतित का नाम शूद्र रक्खा है । इस हेतु सर्वत्र शूद्रों को पठन पाठन निषेध है । अब तृतीय प्रश्न का उत्तर समझ गये होंगे । जब यह

सिद्ध हो चुका कि पतित अज्ञानी का नाम शूद्र है तो वह यज्ञ के योग्य कैसे हो सकता है। इसी हेतु शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस व्रात्य शूद्र को अयज्ञार्ह कहा है। जब इस ने कुछ पढ़ा ही नहीं तो यज्ञ कैसे करे करवावे। और अभी कह चुके हैं कि धर्म्मस्थिति के लिये इन पतित जनों को उपनयन निषेध किया गया है पतित का नाम ही शूद्र और संस्कृत का नाम ही द्विज है। अतः द्विज अग्न्याधानादि करसकता शूद्र नहीं। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि शूद्र कोई भिन्न वर्ण वा जाति नहीं किन्तु असंस्कृत धर्म्म लोपी मनुष्यमात्र शूद्र है। तृतीय प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब चतुर्थ का उत्तर श्रवण कीजिये।

"चतुर्थ प्रश्न का समाधान"

तृतीय समाधान के अन्तर्गत ही इस का भी समाधान है। तथापि इस प्रश्न में वेदान्त के कतिपय सूत्र और मनुस्मृति वाक्य उद्धृत किये गये हैं। अतः उस का कुछ विशेष विचार करते हैं। आपने कहा है कि "श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च" शूद्र को वेदों का श्रवण और अध्ययन दोनों निषिद्ध हैं और इस में स्मृति का भी प्रमाण है। इत्यादि। मैं इस के समाधान में कहता हूं कि यह बात बहुत ठीक है। जब मैंने आप को निर्णय करके बतला दिया कि शूद्र नाम पतित पुरुष का है। जिसने २४ वर्ष तक भी एक अक्षर नहीं पढ़ा है उस व्यक्ति का नाम शूद्र है तो ऐसे के लिये निषेध होना उचित ही है इस में कोई भी विरोध की बात नहीं क्योंकि अब इस की अवस्था वेदाध्ययन के योग्य नहीं रही। इस अवस्था में भी यदि उसे होश हो तो वह अन्यान्य सरल ग्रन्थ पढ़ तब वेद पढ़ सकता है। आगे इस को दिखलावेंगे। यह नियम धर्म्मस्थिति के लिये चलाया गया था। अब मनुस्मृति के वाक्यों पर ध्यान दीजिये। "न शूद्रे पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्म्मेऽस्ति न धर्म्मात्प्रतिषेधनम्" शूद्र में पातक नहीं लगता। वह संस्कार के योग्य नहीं। धर्म्म में इस को अधिकार नहीं। एवं धर्म्म से प्रतिषेध भी नहीं। इस का संक्षिप्त भाव यह है कि जब यह निश्चय हो चुका है कि पतित पुरुष का नाम शूद्र है किसी खास वंश वा जाति का नाम शूद्र नहीं। इस अवस्था में जो किसी कारण वंश पतित हो चुका है उस

को सन्ध्यादि कर्म्म न करने से जो पातक लगता है वह पातक नहीं लगता क्योंकि वह सन्ध्यादि करना जानता ही नहीं। जिस हेतु वह पतित ठहर चुका है अतः इस का पुनः संस्कार भी नहीं हो सकता है। संस्कार न होने से यज्ञादि धर्म्म कार्य्य में इस को अधिकार नहीं मिल सकता। परन्तु भगवत् स्मरणादि रूप जो धर्म्म है उस से इस को निषेध भी नहीं। पुनः "शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्य्यो धनसंचयः। शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते"। समर्थ होने पर भी शूद्र धन संचय न करे। क्योंकि धन पाकर ब्रह्मवित् पुरुषों को ही वह बाधा देता है। इस का भी भाव विस्पष्ट है। जो पतित हो गया है जिस ने जन्म भर ज्ञानाभ्यास नहीं किया जो निरक्षर है वह यथार्थ में आदमी नहीं किन्तु वह पशु है। ऐसे पशु प्रायः अन्याय से धन एकत्रित करते हैं अथवा अन्यान्य उपायों से भी यदि वे धनसम्पत्ति इकट्ठी करलें तब भी इन का धन जगत् में हानिकारी के सिवाय लाभकारी कदापि नहीं होता। प्रथम तो अज्ञानी होने के कारण धन को कैसे खर्च करना चाहिये वे नहीं जानते हैं। वे उन धनों को अन्यायवर्धक कार्य्य में खर्च करते हैं बड़े व्यसनी बन जाते हैं अपने साथ अनेकों को व्यसनी बना बड़े उपद्रवी हो जाते हैं जिस से प्रजाओं में बड़ा ही उपद्रव मचने लगता है इत्यादि। दूसरा धन के बल से वे अज्ञानी जन अपने वश में विद्वानों को भी कर लेते हैं उन्हें नीचे दिखलाते हैं अथवा किन्ही पढ़े लिखे पुरुषों को भी विद्या से इस हेतु घृणा होने लगती है कि विना अध्ययन से ही धन हो सकता है तो पुनः अध्ययन में इतने परिश्रम से क्या लाभ इस प्रकार पठन पाठन की रीति बिगड़ देश में बड़ा ही अन्याय बढ़ने लगता है। इस भारत देश में इस का उदाहरण प्रत्यक्ष है। जब से अज्ञानी जन धन संग्रह करने लगे तब से दानादिक की यथोचित व्यवस्था न होने से कैसा भयङ्कर अधर्म्म फैल गया। बड़े बड़े अज्ञानी निरक्षर जन अपने बाप की सम्पत्ति पा राजा बन कैसा अन्धकार देश में फैला रहे हैं। भारतभूमि को नरकमयी बना रहे हैं। हे विद्वानो! इस प्रकार ब्रह्मवित् पुरुषों से स्थापित व्यवस्था को वे अज्ञानी धन पाकर तोड़ डालते हैं जिस से ब्राह्मणों (वेदवित् पुरुषों) को बड़ा ही क्लेश पहुंचता है। यही ब्राह्मणों को बाधा डालनी है यही मनुस्मृति का आशय है। विचार

करो और संसार की ओर दृष्टि उठाकर देखो आज अज्ञानी जन धन पाकर जगत् को कैसा नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं । इस हेतु मनुजी ने कहा है कि शूद्र को धन संचय नहीं करना चाहिये । शूद्र नाम अज्ञानी जन का ही है किसी जाति विशेष का नहीं अब आप सम्पूर्ण मनुस्मृति तथा अन्यान्य ग्रन्थों की भी संगति इसी प्रकार लगा सकते हैं । विस्तार भय से अधिक नहीं लिखते ।

"पञ्चम प्रश्न का समाधान"

पञ्चम का भी समाधान पूर्ववत् ही है । पतित को शूद्र कहते हैं । जिस से लोगों को प्रतीत हो कि यह पुरुष वर्ण वहिष्कृत है अतः इस के अभिवादन प्रत्यभिवादनादिक व्यवहार भी भिन्न २ हैं । अब जो आपने कहा है कि "शूद्र दो प्रकार के होते हैं" यह भी कुछ सिद्धान्त विरुद्ध नहीं क्योंकि जो द्विज सन्तान असंस्कृत अज्ञानी हुए वे ही शूद्र हैं । उन में से कोई २ अपनी जीविका के लिये अतिघृणित कार्य्य करने लगे जैसे श्मशान में निवास कर के मृतकों का वस्त्रादिक लेना । मृत पशुओं के चर्म्म निकाल उसे विक्रय करना अथवा मृत पशुओं का भी मांस खाके अपना निर्वाह करना अथवा जंगल में शृगालादिकों के भी मांसों से दिन काटना इत्यादि । ऐसे जो व्रात्य हुए वे किसी प्रकार समाज में नहीं मिलाए गये अर्थात् उन के हाथ के जलादिक ग्रहण से भी लोग घृणा करने लगे और जिन व्रात्यों ने सेवकादि कर्म्म उठा लिये अथवा खेती आदि व्यवसाय कर निर्वाह करने लगे वे समाज से सर्वथा पृथक् नहीं किये गए इन के हाथ के अन्न पानी लोग ग्रहण करते रहे । ये ही दो प्रकार के शूद्र या व्रात्य हैं । यहां सर्वत्र स्मरण रखना चाहिये कि इन स्थानों में जाति शूद्र कोई नहीं । आज इसी लिये कोलाहल हो रहा है कि वंश के वंश को लोग शूद्रादि वर्ण मान रहे हैं । यही अन्याय है । इति ।

"षष्ठ प्रश्न का समाधान"

इस प्रश्न का समाधान ७२ वें पृष्ठ में 'अध्यारोपित जाति' शब्द पर देखिये ।

व्रात्य संस्कार ।

यद्यपि व्रात्य पुरुष के लिये कोई पुनः संस्कार नहीं है तथापि दयालु ऋ-

षियों ने इन परम पतित पुरुषों पर अनुग्रह कर के कहा है कि अधिक वयःक्रम होने के कारण वेद के योग्य तो ये नहीं रहे परन्तु यदि वे धर्म के पिपासु होवें तो इन्हें त्यागना भी उचित नहीं। इन्हें प्रथम वेदवर्जित व्याकरणादि शास्त्र पढ़ावे। परन्तु इन्हें उन लघु वयस्क ब्रह्मचारियों के साथ न रक्खे। इस प्रकार यदि ये दिन २ अपने आचरण शुद्ध करते जांय और विद्याध्ययन में अधिक २ रुचि बढ़ाते जांय तो इन्हें वेद भी पढ़ावे। इस प्रकार व्रात्य हुए हुए पुरुष की भी सद्गति हो सकती है। मनुष्यों को अपने सुधार के लिए बारम्बार जीवन भर मौका देना चाहिए। अतएव कहा गया है कि "शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके" कुल गुण सम्पन्न शूद्र को भी पढ़ावे।

"व्रात्य सन्तान का उपनयन संस्कार"

जो द्विज सन्तान शूद्र हो गये हैं। वे यदि अपने २ सन्तानों को उपनयन करवाना चाहें तो उनका संस्कार हो सकता है अर्थात् शूद्र के सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों हो सकते हैं। वह शूद्र बालक उतना ही निष्पाप और अधिकारी है जितना किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का बालक। बालक का कोई अपराध नहीं। इस कारण यदि कोई शूद्र अपने बालक को ५ पञ्चम वर्ष से लेकर षोड़श तक आचार्य कुल में उपनयन पूर्वक वेदाध्ययन के लिए भेजता है और वह उपनीत बालक पूर्णतया ३६ वा ४८ वर्ष तक वेदाध्ययन सांगोपांग करता है तो निःसन्देह वह ब्राह्मण-पद को पा सकता है। इसी प्रकार व्यवस्थित नियम के अनुसार विद्या के न्यूनाधिक्य से क्षत्रिय वैश्य भी हो सकता है यदि आप इस में उदाहरण पूछें तो ऐतरेय, कवष और सत्यकाम जाबाल प्रभृति का उदाहरण जागृत है और जब शौनकादि ऋषियों के पुत्र चारों वर्ण हो सकते हैं तो शूद्र के पुत्र चारों क्यों नहीं हो सकते। एवमस्तु। ऐतरेय और कवष ऐलूष की जीवनी इस प्रकरण के आदि में ही सुना चुके हैं। सत्यकाम जाबाल की जीवनी के विषय में इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् कहती है।

"सत्यकाम जाबाल और उपनयन"

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरं मा मन्त्रयाञ्चक्रे ब्र-

ब्रह्मचर्य्यं भवति ! विवत्स्यामि किं गोत्रोहमस्मीति । सा हैनमुवाच नाहमेतद् वेद तात ! यद् गोत्रस्त्वमसि । बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे । साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि । जबाला तु नामाहमस्मि । सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालोब्रवीथा इति ॥ २ ॥ स ह हारिद्रुमत गौतम मेत्योवाच ब्रह्मचर्य्यं भगवति वत्स्यामि उपेयां भगवन्तमिति ॥ ३ ॥ तं होवाच किं गोत्रो नु सोम्यासि । स होवाच नाहमेतद्वेद यद्गोत्रोहमस्मि अपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणा यौवने त्वा मलभे सोहमेतन्नवेद यद्गोत्रोस्त्वमसि जबालातु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति । सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥ तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति । समिधं सोम्य आहर । उप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति ॥छा० उ० ४ । ४ ॥

सत्यकाम जाबाल ने अपनी माता जबाला से पूछा कि हे माता ! मैं ब्रह्मचर्य्य के लिए बाहर जाऊंगा मेरा गोत्र क्या है सो बताओ । वह अपने पुत्र से बोली कि हे तात ! मैं यह नहीं जानती हूं कि तुम किस गोत्र के हो । मैं बहुत विचरण करती हुई परिचारिणी (सेवकिनी) रही । यौवनावस्था में तुम को मैंने प्राप्त किया । सो मैं यह नहीं जानती हूं कि तुम किस गोत्र के हो । परन्तु मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है । सो तुम (अपने आचार्य से) अपना नाम सत्यकाम जाबाल ही कहना । तब वह हारिद्रुमत गौतम के निकट जा बोला कि आप के निकट मैं ब्रह्मचर्य्य करूंगा इसी अभिप्राय से आप को प्राप्त हुआ हूं । गौतम ने उस से पूछा कि हे सोम्य ! तुम्हारा गोत्र क्या है ? उस ने कहा कि मैं यह नहीं जानता हूं कि मेरा गोत्र कौनसा है । मैं ने माता जी से जिज्ञासा की थी उस ने मुझ से कहा कि "मैं बहुत विचरण करती हुई परिचारिणी रही । यौवन में तुम को मैंने प्राप्त किया । सो मैं यह नहीं जानती हूं कि तुम्हारा गोत्र कौन है । मेरा नाम जबाला और तेरा नाम सत्यकाम है । इति । हे गुरो ! सो मैं सत्यकाम जाबाल हूं । यह सुन गौतम बोले कि अब्राह्मण पुरुष ऐसा प्रकाश नहीं कर सकता । हे सोम्य ! समिधा लाओ

तुम्हारा उपनयन मैं करूंगा। तुम सत्य से पृथक् नहीं हुए हो। इस प्रकार कह कर गौतम ने उसका उपनयन किया है। इत्यादि वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में देखिए।

इस से विस्पष्ट वर्णन है कि जबाला एक प्रकार की वाराङ्गना थी। क्यों कि "परिचारिणी" और "बहु+अहं चरन्ति" ये दोनों पद इस के साक्षी हैं। यहां केवल पति की सेवा से तात्पर्य्य नहीं हो सकता। यदि इस का कोई विवाहित पति रहता तो उस पति के नाम ग्राम पता आदि कुछ बतलाती। पति के मरने के बारे में भी कुछ नहीं कहती। केवल अपना ही नाम कहकर रह जाती है इस से विशद है कि यह वाराङ्गना थी। गौतम ऋषि ने बालक के सत्यभाषण से अति प्रसन्न हो उपनयन कर दिया। इस से यह भी सिद्ध होता है कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं किन्तु सत्यभाषणादि रूप गुण धारण करने से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है जैसा कि ऋषि ने कहा है कि "तुम सत्य से पृथक् नहीं हुए हो"। जिस हेतु वह बालक वेश्यापुत्र होने पर भी सत्यता से विरहित नहीं होने के कारण वह निश्चय ब्राह्मण था। अतः सत्ययुक्त पुरुष किसी घर में किसी कुल में किसी देश में क्यों न हों वे यथार्थ में ब्राह्मण ही हैं। इस उदाहरण से सिद्ध है कि असत् शूद्र के सन्तान को भी उपनयनादि संस्कार हो सकता है।

"खान्दानी वर्णव्यवस्था"

बहुत समय के अनन्तर इस देश में वर्ण व्यवस्था की रीति बदल गई। विद्याध्ययन के ऊपर वर्ण व्यवस्था नहीं रही। अनपढ़ निरक्षर आदमी भी श्रोत्रिय, पाठक, उपाध्याय, द्विवेदी, चतुर्वेदी आदि बड़ी २ पदवी से अपने को भूषित करने लगा इस महान् अन्धकार के समय में केवल नामधारी राजा और ब्राह्मण लोग मिल कर अपने को छोड़ सब को "शूद्र" ही कहने लगे। जिन के वंश में भी परम्परा से नाम मात्र का भी उपनयन हो रहा था उस को बलात्कार बन्द करवा दिया। यद्यपि इस महान्धकार के समय ब्राह्मण क्षत्रिय में भी नाममात्र का ही उपनयन संस्कार रह गया था अब भी वैसा ही चल रहा है तथापि अपनी ओर न देखके स्वर्णकार, लोहकार, कुम्भकार, तक्षा, गोप,

माली, कायस्थ, नापित आदिक अनेक वर्णों में जो परम्परा से उपनयन संस्कार होता आता था उसे बन्द करवा सबों को शूद्र पदवी देदी। और वंशानुगत वर्णव्यवस्था बांध दी गई। तब से यदि एक शूद्र कितना ही विद्वान् क्यों न हो वह कदापि ब्राह्मणादि पदवी योग्य नहीं होगा और एक ब्राह्मण कितना ही निरक्षर क्यों न हो वह ब्राह्मण का ब्राह्मण ही बना रहेगा। इस प्रकार देश में वंशानुगत वर्ण व्यवस्था चलने लगी। इस समय में भी बचे हुए विवेकी पुरुषों ने इस वंशानुगत वर्ण व्यवस्था का बड़ा विरोध किया और बड़ी २ कोशिश की कि वर्ण का परिवर्तन होना चाहिए अर्थात् ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण हो सकता है इस के दो एक उदाहरण यहां य हैं और पूर्व में अनेक उदाहरण दिए गए हैं।

"जाति परिवर्तन"

आपस्तम्ब कहते हैं कि "धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्ण मा पद्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्ण मा पद्यते जातिपरिवृत्तौ"। धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे। वैसे अधर्म्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीच २ वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे। यह आपस्तम्ब का वचन सूचित करता है कि गुण कर्म्मानुसार ही वर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। पुनः मनु जी कहते हैं "शूद्रो ब्राह्मणता मेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच" ॥ मनु० ६४ ॥ शूद्र ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्र वर्ण को प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से जो सन्तान उत्पन्न हुआ है वह भी गुण कर्म्मानुसार अपने से उच्च वा नीच वर्ण को प्राप्त हो सकता है। इस श्लोक के प्रथम मनु जी कहते हैं कि "शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद् युगात्" शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से जो सन्तान हो वह यदि श्रेय अर्थात् धर्माचरण से युक्त हो तो वह नीच होने पर भी सप्तम वर्ष के आरम्भ से वह उच्च जाति को प्राप्त हो सकता है। इस श्लोक का अर्थ लोग भिन्न प्रकार से करते हैं परन्तु इस का भाव यह

है कि ब्राह्मण से ब्राह्मणी स्त्री में उत्पन्न बालक उस बालक की अपेक्षा से श्रेष्ठ है जो ब्राह्मण से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न हुआ है । अर्थात् ब्राह्मणी कुमार से शूद्रा कुमार नीच है परन्तु कब तक ! निःसन्देह जब तक इस का उपनयन संस्कार नहीं हुआ है । अर्थात् यदि उस शूद्रा कुमार को गर्भाष्टम में विधि पूर्वक उपनयन हो गया तब उस दिन से वह श्रेय से युक्त हो आगे बढ़ने लगेगा । और यदि ब्राह्मणी कुमार को गर्भाष्टम में विधि पूर्वक उपनयन नहीं हुआ तो वह कुमार उस दिन से नीचे गिरने लगेगा । यदि दैववश १६ वें वर्ष में भी उस ब्राह्मणी कुमार का उपनयन नहीं हुआ तो वह अब ब्राह्मण वर्ण के योग्य कदापि नहीं रहेगा । इस प्रकार धर्माचरण से एक का आगे बढ़ना और अधर्माचरण से दूसरे का घटना लगा रहेगा । इस हिसाब से ब्राह्मण का सन्तान शूद्र और शूद्र का सन्तान ब्राह्मण होता जायगा । इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य में भी जानना । यही भाव दोनों श्लोकों का है । युग नाम यहां वर्ष का है क्योंकि उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो के योग से वर्ष होता है । प्रथम मास शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के योग से होता है । ऋतु भी दो दो मासों के योग से होते हैं इस प्रकार अनेक दो दो मिल कर वर्ष होता है अतः यहां युग नाम वर्ष का है । और इसी धर्म शास्त्र में कहा गया है कि "गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः" ब्राह्मण का गर्भ से अष्टम वर्ष में राजा का एकादश में वैश्य का द्वादश में उपनयन संस्कार होना चाहिए । इस नियमानुसार जन्म से सातवें वर्ष के आरम्भ से ब्राह्मण कुमार उपनयन योग्य होता है । अतएव सप्तम युग पद यहां आया है और इसी कारण मैंने यहां 'युग' पद का वर्ष अर्थ किया है । कुल्लूक भट्ट 'सप्तम युग' पद से सप्तम पीढ़ी लेते हैं । मैं नहीं कह सकता कि इन्होंने किस प्रमाण से युग शब्दार्थ पीढ़ी किया है । एवमस्तु । यहां सप्तम युग उपलक्षण है क्षत्रिय पक्ष में एकादश और वैश्य पक्ष में द्वादश वर्ष का भी ग्रहण है । इस प्रकार मनुस्मृति के अनुसार भी जाति परिवर्तन सिद्ध है । कुल्लूकभट्टादिकों का अर्थ इस लिए भी ठीक नहीं कि इसी अध्याय में मनु जी कहते हैं कि "तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे । उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ १० । ४२ ॥ तप और

बीज के प्रभाव से मनुष्य युग युग इसी जन्म में उत्कर्ष और अपकर्ष को प्राप्त होता आया है। यहां 'इहजन्मतः' पद से विस्पष्ट है कि एक ही जन्म में मनुष्य अपने से उच्च वा नीच वर्ण को प्राप्त हो सकता है जैसे विश्वामित्र और ऋष्य शृंगादिक हुए हैं और इस के अतिरिक्त पूर्व में अनेक उदाहरण दिखलाये गये हैं फिर कुल्लूकादिक कैसे कह सकते हैं कि सात जन्मों के अनन्तर जाति का परिवर्त्तन होगा। पुनः "यस्माद्बीज प्रभावेण तिर्य्यग्जा ऋषयोऽभवन्। पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते" १०।७२॥ बीज के प्रभाव से अनेक निकृष्ट योनिज भी पुरुष विद्याध्ययनादि व्रत धारण कर बड़े पूज्य और प्रशस्त ऋषि हुए। इस से सिद्ध है कि शूद्राकुमार यदि ब्राह्मणादिक से उत्पन्न हुआ है तो एक ही पीढ़ी में वह ब्राह्मण हो सकता है। यहां इतनी बात स्मरण रखनी चाहिए कि यहां दो प्रकार की विधि कही गई एक यह कि जो शूद्र हो गया है उस का सन्तान यदि चाहे तो चारों वर्णों के योग्य हो सकता है। दूसरा शूद्रा स्त्री में ब्राह्मणादिक से उत्पन्न होने के कारण वर्णसङ्कर होने पर भी सद्गुण प्राप्त करने पर वह कुमार ब्राह्मणादिक हो सकता है यह मनुस्मृति का भाव है। इस से यह जानना चाहिए कि ख़ान्दानी वर्ण व्यवस्था जिस समय चली थी उस समय में भी अपवाद विद्यमान था।

'वाल्मीकि रामायण और शूद्र'

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्, स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्य फलत्वमीयात्, जनश्चशूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्॥

वाल्मीकीय रामायण के प्रथमाध्याय का यह अन्तिम श्लोक है। मुनि वाल्मीकि जी कहते हैं कि इस रामायण के पढ़ने से ब्राह्मण बड़ा सुवक्ता ऋषि होगा। क्षत्रिय भूपति होगा। वैश्य अच्छा लाभ प्राप्त करेगा और शूद्र महान् होगा। यहां रामायण के पढ़ने में चारों वर्णों का समान ही अधिकार देखते हैं। कहा जाता है कि यह रामायण गायत्री का वर्णन है क्योंकि प्रथमाध्याय के "तपः स्वाध्याय निरतम्" इस प्रथम श्लोक में तकार और "जनश्च शूद्रोपि-महत्त्वमीयात्" इस अन्तिम श्लोक में "यात्" पद के आने से और २४ चौबीस

अक्षरों की गायत्री और २४००० चौबीस ही सहस्र श्लोकबद्ध रामायण के होने से अनुमान होता है कि यह रामायण गायत्री-वर्णन-परक है। परन्तु गायत्री वेदों का तत्त्व है, अतः वेदों से लेकर सर्व ग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन में शूद्रों का अधिकार सिद्ध है। पुनः रामायण में बड़े २ अश्वमेधादि यज्ञ कर्म्मकाण्ड और तत्त्वज्ञान की चर्चा है॥ फिर क्या जिस शूद्र को रामायण पढ़ने का अधिकार दिया गया है वह तत्त्वज्ञानी, तपस्वी, विद्वान्, विवेकी नहीं होगा। यदि कहो कि इसी रामायण के उत्तरकाण्ड में लिखा है कि "शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः। देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः। न मिथ्याहं वदे राम देवलोक जिगीषया। शूद्रंमां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूको नाम नमतः। भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरं प्रभम्। निष्कृष्य कोषाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः"। एक ब्राह्मण के बालक के मरने पर श्री रामचन्द्र को मालूम हुआ कि कोई शूद्र तपस्या कर रहा है जिस पाप के कारण यह अन्याय हुआ है। तब राम ने तपस्या करते हुए उस शम्बूक नाम के शूद्र का शिर काट लिया है। इस से सिद्ध है कि शूद्र को तपस्या करना सर्वथा निषेध है। उत्तर सुनिये। यह रामचन्द्र के ऊपर किसी अज्ञानी स्वार्थी धूर्त्त ने कलङ्क मढ़ा है। प्रथम तो उत्तरकाण्ड रामायण वाल्मीकि जी का बनाया हुआ नहीं है और जब फलश्रुति में वाल्मीकि जी स्वयं कहते हैं कि शूद्रों को भी रामायण पढ़ना चाहिये तब तपस्या का निषेध कैसे कर सकते हैं। क्योंकि पढ़ने से तात्पर्य यह होता है कि ग्रन्थ के भाव को अच्छे प्रकार समझे और उस के अनुसार कर्म्म करे। इस अवस्था में जो शूद्र पढ़ेगा क्या वह इस के अनुसार आचरण नहीं करेगा। यदि कहो कि आचरण करेगा तो मैं कहता हूं कि प्रथम अध्ययन से बढ़कर कौनसी तपस्या है और दूसरा इस की शिक्षा पर चलने वाले के लिये कौनसी तपस्या बाकी रह जायगी। इस कारण यह शम्बूक की आख्यायिका सर्वथा रामायण विरुद्ध है। किसी अज्ञानी ने वाल्मीकि के नाम पर लिख इस में मिलाया है। इस में अन्यान्य हेतु भी सुनिये आप लोग यह जानते होंगे कि दशरथ के वाण से अकस्मात् जो बालक मर गया वह वर्णसंकर शूद्र था परन्तु वह वेदशास्त्र सब कुछ जानता था। यह आख्यायिका अयोध्याकाण्ड के ६४ वें अध्याय में आई है। यथाः–

न द्विजातिरहं राजन् माभूत्ते मनसो व्यथा ॥ ५० ॥
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ॥ ५१ ॥ अ० ६३ ॥
कस्य वाऽपररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥ ३२ ॥
को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्यत्युपासीनं पुत्रशोकभयार्दितम् ॥ ३३ ॥ अ० ६४ ॥

स्वयं वह बालक कहता है कि हे राजन् ! आप को मानसी व्यथा न हो। मैं द्विज नहीं हूं। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हूं इत्यादि इस से सिद्ध है कि वह बालक वर्णसंकर था। इस के पश्चात् इस मृत बालक को दशरथ जी ने इस के माता पिता के निकट ला सब वृत्तान्त कह सुनाया। पश्चात् इस का पिता विलाप करता है कि अब मैं अपर रात्रि में पढ़ते हुए किस के मधुर और हृदयंगम वचन को सुनूंगा। कौन अब स्नान, सन्ध्योपासन और हवन कर मुझे प्रसन्न करेगा, इत्यादि। इस से यह सिद्ध होता है कि वह बालक वेदादि शास्त्र जानता और पढ़ता था, इस की माता शूद्रा होने पर भी तपस्विनी थी। इत्यादि कारणों से शम्बूक की कथा वाल्मीकि विरुद्ध है यह मानना पड़ेगा। **शबरी स्त्री की तपस्या**—शबर जाति बहुत निकृष्ट और अति शूद्र वा असच्छूद्र मानी जाती है इस के हाथ का पानी नहीं चलता है एक तो शबर ही नीच दूसरा शबर स्त्री और भी नीचतमा हुई क्योंकि आज कल चारों वर्णों की स्त्री शूद्रावत् मानी जाती है। परन्तु रामायण में देखते हैं कि यह शबरी तपस्या करते २ सिद्धा हुई यथा "तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृतांजलिः। पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः। पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्। कच्चित्ते निर्जिता विघ्ना कच्चित्ते वर्धते तपः। इत्यादि। रामेणतापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता। शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता। अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया। इत्यादि" अब सिद्धा शबरी राम और लक्ष्मण को देख उठ कृतांजलि हो चरण पकड़ प्रणाम कर पैर धोने और आचमन के लिये विधिपूर्वक जल दे खड़ी होगई। तब राम जी

उस तपस्विनी धर्म्म संस्थिता शबरी से बोले कि क्या आप को कोई तपोविघ्न तो नहीं। क्या आप की तपस्या दिन दिन बढ़ती जाती है। इत्यादि। रामचन्द्र के इस वचन को सुन वह सिद्धा और सिद्धपुरुषों से पूजिता वृद्धा शबरी बोली कि आप के दर्शन से आज मुझे तपःसिद्धि प्राप्त हुई। इत्यादि। आप लोग देखते हैं कि एक निकृष्टजाति की स्त्री भी तपस्या कर परम सिद्धा हुई और किसी ब्राह्मण वा अन्य वर्ण का बालक नहीं मरा और इस की तपस्या से न किसी विघ्न की ही चर्चा पाई जाती फिर, उत्तरकाण्ड की बात कैसे मानी जाय। इस कारण विद्वानों की दृष्टि में शम्बूक की कथा सर्वथा गप्प है।

पुराण और शूद्र ॥

जिस समय वैदिक धर्म्म नष्ट होगया था शूद्र की एकजाति बन गई थी। वंश-परम्परानुगत वर्णव्यवस्था चल पड़ी थी। उस समय में भी भागवत आदि पुराण शूद्र को आजकल के समान नीच नहीं मानते थे। इस विषय में श्रीमद्भागवत का सिद्धान्त है कि महाभारत और अष्टादश पुराण और उपपुराण आदि ग्रन्थ विशेष कर शूद्रों के लिये ही रचे गये। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि जो ग्रन्थ शूद्रों के लिये बनाए गए थे आज ब्राह्मणत्वाभिमानी जन इन को सर्वोत्तम पुस्तक मानते हैं। भागवत कहता है कि "स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा। कर्म्मश्रेयसि मूढ़ानां श्रेय एवं भवेदिह। इति भारत माख्यानं कृपया मुनिना कृतम्' । भागवत १। ४। २५ ॥ स्त्रियों, शूद्रों और द्विजबन्धुओं अर्थात् द्विजाधम व्रात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को वेदों में अधिकार नहीं है परन्तु इन का भी कल्याण होना चाहिये। इस कारण कृपा कर व्यास मुनि ने महाभारत आख्यान रचा। यहां भारत पद उपलक्षण है इस से सब पुराणों का ग्रहण है क्योंकि महाभारत से ही सब पुराण निकले हैं। जब महाभारत ही शूद्र के लिये रचा गया तो पुराणों की कथा ही क्या रही। सुतरां इस से सिद्ध है कि पुराण अवश्य शूद्रों के लिये भी है।

'सूतजी पौराणिक'

समस्त पुराण सूतजी से कहे हुए हैं। वर्णसंकर शूद्र को 'सूत' कहते हैं।

इस के विषय में मनुजी कहते हैं "क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः" मनु० १० । ११ ॥ ब्राह्मण कन्या में क्षत्रिय से जो बालक उत्पन्न होता है वह जाति से 'सूत' कहलाता है अतः साधारण शूद्र से भी सूत जाति का दर्जा निकृष्ट है। पुराणों के अनुसार इसी निकृष्ट सूतजी ने सारे पुराणों को गा २ कर सुनाया है। इस से भी सिद्ध होता है कि पुराण शूद्रों के लिये है और उस पतित समय में भी शूद्र बड़े २ संस्कृत के विद्वान् ग्रन्थरचयिता, उपदेशकर्त्ता और ज्ञानी तपस्वी होते थे। और शूद्रों की इतनी निकृष्ट अवस्था नहीं थी इत्यादि अनेक बातें इस सूत और पुराणों के सम्बन्ध से सिद्ध होती हैं पुनः भागवत कहता है कि "विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्यो दधिमेखलाम् । वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात्॥ भा० १२ । १२ । ६४ ॥ इस भागवत को पढ़कर ब्राह्मण सुबुद्धि को, राजा पृथिवी को और वैश्य धन धान्य को पाता है। और शूद्र पातक से छूट शुद्ध होजाता है । इस से सिद्ध है कि शूद्र को भागवत पढ़ने का अधिकार है। आज कल पौराणिक लोग भागवत को सर्व वेदमय मानते हैं, और इसी भागवत में ओङ्कार युक्त अनेक मन्त्र कहे गये हैं जब इस भागवत को शूद्र पढ़ेगा तो क्या उन ओङ्कार युक्त मन्त्रों को छोड़ देवेगा। इस से भी सिद्ध है कि वेदों से लेकर भागवत पर्य्यन्त सब ग्रन्थों में और सर्व कर्म्मों में शूद्रों को अधिकार है।

अवतार आदि और शूद्रः=पौराणिक कहते हैं कि राम, कृष्ण आदि साक्षात् ब्रह्म अथवा विष्णु भगवान् के अंश हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार महाभारत रामायण और भागवतादि पुराणों में जो राम कृष्णादिकों के वाक्य हैं वे भी वेदों के तुल्य हुए। क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य हैं। परन्तु अभी मैंने इन्हीं ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि महाभारतादि ग्रन्थों को पढ़ने का अधिकार शूद्रों को दिया गया। इस कारण इस से यह भी सिद्ध होता है कि वेदों में भी शूद्रों का अधिकार है। पुनः मैं पूछताहूं कि राम कृष्ण शूद्रों के साथ भाषण करते थे या नहीं। यदि करते थे तो इन का भाषण इन की वाणी ही वेद है यह आप लोगों का सिद्धान्त है। तब शूद्रों ने साक्षात् ईश्वर से ही वेद वाणी सुनी या नहीं। फिर कौन निषेध कर

सकता है कि शूद्र वेद न पढ़ें। श्री रामचन्द्र जी ने बड़े प्रेम से गुह को छाती लगाया था। वह निषाद था अर्थात् अतिनिकृष्ट जाति का था। इस से मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने यह दिखलाया कि व्यवसाय से कोई नीच नहीं हो सकता है मनुष्य मात्र परस्पर तुल्य हैं। जब परम माननीय परम पवित्र परम पूजनीय रामचन्द्र ने ही शूद्र को छाती लगाया तब क्या शूद्रों से घृणा करनेवाले कभी राम वा कृष्ण के उपासक कहला सकते हैं ? श्री कृष्ण जी कहते हैं "मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्" हे पार्थ ! जो पापयोनि, स्त्रिएं, वैश्य और शूद्र हैं वे भी मेरी उपासना कर परम गति को प्राप्त होते हैं। हे विवेकशील पुरुषो ! अब आप विचार कर देखो जब शूद्र परमगति अर्थात् ईश्वर में मिल सकते इस के समीप जा सकते उस से भाषण कर सकते तब क्या ईश्वर से भी पवित्र द्विज हैं जो शूद्रों से घृणा करते। इस हेतु जो द्विज शूद्रों से घृणा करते हैं वे अपने स्वामी रामकृष्णादिकों की इच्छा से विपरीत चलते हैं। पुनरपि आप देखें। गंगा जी को पौराणिक लोग परम पवित्र मानते हैं। परन्तु गङ्गा के जल में शूद्र नहाते पीते दर्शन करते हैं। स्नानादि न करने का कहीं निषेध भी नहीं। जब शूद्र पवित्र गङ्गा से मिल सकता है तब ब्राह्मणादिकों से मिलने की बात ही क्या। पुनः "भगवान् के दरबार में सब बराबर हैं" इस अर्थ को सूचित करने के हेतु ही यहां के कतिपय ज्ञानियों ने जगन्नाथ जी को स्थापित किया था अभी तक जगन्नाथ पुरी में कोई भेद नहीं माना जाता। इस में सन्देह नहीं कि वह भाव अब वहां नहीं रहा। अब वहां भ्रष्टाचार हो रहा है। क्योंकि मन्दिरों में नर्तकी कन्याओं का नचाना, अति बीभत्स मूर्तियों का रखना, बासी और जूठा खाना आदि व्यवहार अति लज्जाकर धर्म्म विलोपक हो रहे हैं। एवमस्तु। परन्तु वहां सूचित किया जाता है कि ईश्वर के गृह में सब बराबर। पुनरपि देखिये। ईश्वर प्रदत्त सूर्य्य, चन्द्र, जल, पृथिवी आदि पदार्थ सब के लिये बराबर हैं इस हेतु ईश्वर प्रदत्त वेद भी मनुष्य मात्र के लिये है।

कई एक अज्ञानी कहते हैं कि शूद्र वेद पढ़ नहीं सकता। इस का उत्तर इतना ही काफी है कि पढ़ाकर परीक्षा करलो। आज जिन को आप शूद्र

कहते हैं उन में से सहस्रों पुरुष वेद पढ़े हुए हैं। केवल पढ़े हुए ही नहीं किन्तु वे वेदों का भाष्य कर रहे हैं। बहुतों ने किया भी है॥ भारतवर्षीय विद्वानो! सोचो विचारो। क्यों अन्धकार में लोगों को ढकेल रहे हो। सब मनुष्य बराबर हैं। जो भाई गिरे हुए हैं उन्हें उठाने के लिये कोशिश करो! सब भाई प्रेम से मिलो। देखो आंख खोलकर। इसी देश में तुम्हारे भाई मसीह कैसे उत्तम काम कर रहे हैं। लाखों जंगली कोल भील गोंद हवशी आदिकों को उच्च बना रहे हैं इन सबों की दशा पशुओं से भी गिरी हुई थी। उच्च और महापुरुष वह है जो गिरे हुओं को उठावे, उन्हें छाती से लगावे। और उन्हें अपने बराबर बनावे। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः' आप विचारें तो आप शूद्र किस को कहते हैं? क्या इन के लक्षण हैं? जिन में शूद्र के लक्षण पाये जांय उन्हें भले ही शूद्र कहें। परन्तु आप वंश के वंश को शूद्र पुकारते हैं उस वंश का कोई पुरुष यदि पढ़ भी जाय आचरणवान् सुशील भी होय तब भी आप उसे शूद्र ही कहेंगे। यह अन्याय और अधर्म्म की बात है अपनी ओर भी देखना चाहिये। यदि आप को यही पूर्ण विश्वास है कि पैर से शूद्रों की उत्पत्ति होने के कारण ये अपवित्र हैं तो गङ्गा नदी की भी पैर से उत्पत्ति है फिर इसे श्रेष्ठ क्यों मानते। पृथिवी का भी जन्म पैर से पुराण मानता है। फिर इस की पूजा क्यों करते! यदि आप विचार करें तो मालूम होगा कि जैसे पृथिवी के विना जीव नहीं रह सकता और जैसे यह पृथिवी सहस्रों अन्न फल फूल मूल कन्द प्रभृति उत्पन्न कर सब को पालन पोषण कर रही है। इस कारण पृथिवी को बारम्बार माता कहा है। वैसे ही शूद्रों के विना कोई कार्य्य नहीं चल सकता। ये शूद्र अपने परिश्रम से समाज को अनेक प्रकार से भरण पोषण कर रहे हैं इस हेतु इन्हें पितरवत् पूर्ण सत्कार करना चाहिये। प्रायः आप लोग हंसेंगे कि आप यह क्या कह रहे हैं। शूद्रों को 'पितर' कैसे कहेंगे। इस में सन्देह नहीं है कि आजकल लोग हंसेंगे परन्तु इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य क्या कहते हैं सो सुनिये।

स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च। बृहदारण्यकोपनिषद् ॥१॥ ४। १३।

इसका अर्थ शङ्कराचार्य्य करते हैं:—स परिचारकाभावात् पुनरपि नैव व्यभ-

वत्। स शौद्रं वर्णमसृजत शूद्र एव शौद्रः स्वार्थेऽणिः वृद्धिः कः पुनरसौ शूद्रोवर्णो यः सृष्टः पूषणं पुष्यतीति पूषा कः पुनरसौ पूषेति विशेषतस्तन्निर्दिशति। इयं पृथिवी पूषा स्वयमेव निर्वचनमाह। इदं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च।

सम्पूर्ण का भाव यह है कि यह शूद्र वर्ण पूषण अर्थात् पोषण करने वाला है और साक्षात् इस पृथिवी के समान है क्योंकि जैसे यह सब का भरण पोषण करती है। वैसे शूद्र भी सब का भरण पोषण करता है ऋषि यहां विस्पष्ट रूप से शूद्र को पृथिवी ही साक्षात् कहते हैं। अब आप इस से समझ सकते हैं कि शूद्रों को ऋषि ने 'पितर' माना या नहीं। कैसा उच्चभाव ऋषियों का है और आज कैसा नीचभाव लोगों का हो रहा है। यही आर्ष और अनार्ष में भेद है। मैं अन्त में यह पूछता हूं कि आप लोग चर्म्मकार को अतिनीच अति शूद्र मानते हैं। क्यों? क्या चाम का व्यवसाय करता है इसलिये? ब्राह्मण लोग जब बकरे भेड़ भैंसे मारते हैं तब क्या ये चाम के कार्य्य से अलग रहे?। क्या जब द्विज लोग हरिण, शूकर, शशक आदि वन्य पशुओं को मारते बनाते और खाते हैं तब कौनसा व्यवसाय बाकी रहगया। क्या बंगदेश के ब्राह्मणादिक सब वर्ण मत्स्य मांस नहीं खाते। क्या मृगचर्म्म या व्याघ्रचर्म्म पर बैठकर पूजा नहीं करते क्या शंख को मुंह में लगा कर नहीं फूंकते? क्या अनेक प्रकार की हड्डियों को डायन योगिनी से बचने के हेतु नहीं पहिनते? इत्यादि कार्य्य करने वाले भी चर्म्मकार को क्यों नीच समझें। सफ़ाई के साथ मृत पशुओं के चर्म्मों से यदि कोई व्यवसाय कर रहा है तो वह कदापि नीच नहीं, वह यथार्थ में वैश्य कहलाने योग्य है। आप यह भी जानें कि यदि चर्म्मकार नहीं होता तो क्या मृत गौ भैंस वगैरह को मृत हरिणादिवत् अपने हाथों से द्विज लोग पृथक् नहीं करते फिर मैं नहीं कह सकता कि चर्म्मकार को लोग क्यों नीच मानते हैं। हां यदि आप यह कहें कि वे बड़े अशुद्ध रहते हैं। इन के गृह चर्मों से भरे रहते हैं दुर्गन्ध अधिक रहती है वे नियम पूर्वक स्नान ध्यान नहीं करते इन में शिक्षा नहीं है इत्यादि कारणों से इन्हें नीच निकृष्ट मानते हैं तो मैं इस को स्वीकार करता हूं परन्तु क्या द्विजों के गृह वैसे नहीं पाते हैं? सैकड़ों मछलियों से दुर्गन्धित नहीं रहते हैं? क्या सहस्रों द्विज आज बिना सन्ध्या स्नान के नहीं देखे जाते? क्या बड़े २ निरक्षर परम अपवित्र

द्विज पद धारी नहीं हैं ? जब ये सब दशाएं अपनी ओर भी हैं तो इन गरीब विचारे पर ही क्यों मार है ? परन्तु मैं विशेष रूप से यह कहता हूं कि इन की दशा के सुधार के लिये कोशिश क्यों न कीजाय इन में शिक्षा क्यों न फैलाई जाय। ये क्यों न शुद्ध बनाए जांय । इन की दूकानें रहने के गृह से पृथक् की जांय। इस प्रकार मनुष्यों को नीचता से उच्चता की ओर लेजाने के लिये बड़ों को सदा प्रयत्न करना चाहिये न कि इन्हें उसी अवस्था में छोड़ इन से अलग होना चाहिये। हमें शोक के साथ यह प्रकाश करना पड़ता कि कई एक सहस्र वर्षों से यहां के प्रधान लोग इन को गिराने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं और बलात्कार स्वर्णकार, कुम्भकार, लोहकार, तैलकार, चर्म्मकार, तन्तुवाय, अहीर, धानुक आदिक व्यवसायी वर्णों को शूद्र पदवी दे इन्हें प्रत्येक शुभ कर्म्मों से पृथक् कर दिया। इन में से कोई विद्याध्ययन करना भी चाहता था तो यथाशक्ति ये लोग बाधा डालते रहे। इन को हरेक प्रकार से नीच कुत्सित कुचेल पशु बना ही छोड़ा। इस का परिणाम यह हुआ कि आज सम्पूर्ण भारत एकसा बन गया। सब कोई पौराणिक-शूद्र और वैदिक-दास एक प्रकार से बन बैठे। अब भी सोचो ! जागो !! उठो !!!

'वेद और शूद्र'

सत्य बात यह है कि साक्षात् वेद जो कहैं वहीं हम सबों को करना उचित है धर्म्मशास्त्रकार अथवा स्मृति बनाने वाले स्वयं कहते हैं कि "या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः"। स्मृतिएं अर्थात् जो धर्म्मशास्त्र वेदविरुद्ध हैं और जो शास्त्र असत् तर्कों से युक्त हैं उन सबों को निष्फल और तामस जानने चाहिये पुनः "एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येत द्विजोत्तमः। स विज्ञेयः परो धर्म्मो नाज्ञाना मुदितोऽयुतैः" वेदों का जानने वाला एक भी विद्वान् जिस धर्म को स्थिर करे उसी को परम धर्म्म जानना चाहिये। परन्तु अज्ञानी पुरुष १०००० दस सहस्र भी मिल कर यदि धर्म्म स्थिर करें तो उसे नहीं मानना चाहिये। इत्यादि अनेक वाक्यों से सिद्ध है कि वेद जो कहैं वही हमारा मन्तव्य होना चाहिये। अभीतक इस प्रकरण में मैंने आप लोगों से शास्त्रों के आशय का वर्णन किया और इस प्रकार से सकल शास्त्रों की संगति लग सकती है यह भी कहा है, परन्तु हम सब मनुष्यों का

एक यह सिद्धान्त अथवा मन्तव्य होना चाहिये कि जो वेद कहैं उसी को मानें उसी पर चलें क्योंकि मनुष्यकृत ग्रन्थों में भूल होने की बहुत संभावना है। इसी कारण मैंने प्रत्येक विषय का निर्णय वेदों से ही विशेष कर किया है। अब संक्षेप से शूद्र सम्बन्धी विषय भी वेदों से साक्षात् सुनें।

ऋग्वेद में शूद्र शब्द—ऋग्वेद में 'शूद्र' शब्द एक ही बार आया है यथा:-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ १०। ९०। १२॥

सम्पूर्ण ऋग्वेद आप ढूंढ़ आवें कहीं भी शूद्र की निन्दा नहीं पावेंगे और न कहीं यह कहा है कि शूद्रों को यज्ञादि कर्म नहीं करना चाहिये बल्कि हरएक विषय में ऋग्वेद चारों वर्णों को बराबर अधिकार देता है।

अथर्ववेद और शूद्र—अथर्ववेद में प्रायः 'शूद्र' शब्द ७ सात स्थानों में आया है। यथाः—

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य्यः॥ ४। २०। ४॥
उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्य्यम्॥ ४। २०। ८॥
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि॥ ५। २२। ७॥
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्त्तारं बन्ध्वृच्छतु॥ १०। १। ३॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ १९। ६। ६॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते॥ १९। ३२। ८॥
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्य्ये॥ १९। ६२। १॥

यजुर्वेद और शूद्र—नव दशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येता महोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् ॥ १४ । ३० ॥ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेयि रुचारुचम् ॥ ॥ १८ । ४८ ॥ यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । तच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयम् । यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि ॥ २० । १७ ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशुमन्यते । शूद्रा यदर्य-जारा न पोषाय धनायति ॥ २३ । ३० ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्य्यायै जारो न पोषं मन्यते ॥ २१ । ३१ ॥ यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातु रिह भूयास मयं मे कामः समृध्यता मुप मादो नमतु ॥ २६ । २ ॥ ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्॥३०।५॥

अशूद्रा अब्राह्मणास्तेप्राजापत्याः । मागधः पुंश्चलूः कितवः क्ली-बोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ ३० । २२ ॥

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः यदभ्याꣳ शूद्रो अजायत ॥ ३१ । ११ ॥

इन ऋचाओं में से बहुत ऋचाओं का अर्थ पीछे कर आए हैं इन सब ऋ-चाओं में आप देखते हैं कि सब को समान अधिकार दिया हुआ है । फिर कौन कह सकता है कि शूद्र छोटा वा निकृष्ट है । निःसन्देह चारों वर्ण परस्पर बराबर हैं । इस के अतिरिक्त वेदों में ईश्वर कहीं भी ऐसी आज्ञा नहीं देता है कि जिस से यह सिद्ध हो कि शूद्र को नीच निकृष्ट अस्पृश्य अदृश्य अयाज्ञिय और वेदानधिकारी है प्रत्युत क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य क्या शूद्र सब के लिये समान प्रार्थना, समान आशीर्वाद आदि आता है जिस से विदित होता है कि ये चार समान हैं और जाति से सब ही बराबर हैं। हां ! व्यवसाय इन का भिन्न भिन्न कहा है "रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु ॥ यजुः १८ । ४८ ॥ प्रियं मा दर्भ अथर्व० १९ । ३२ । ८ ॥ और प्रियं मा कृणु देवेषु । अथर्व० १९ । ६२ । १ ॥ इत्यादि मन्त्र विस्पष्टतया उपदेश देते हैं कि सब को बराबर मानो ।

शूद्रों का विशेष सम्मानः—इतना ही नहीं बल्कि वेद भगवान् शूद्र को बहुत आदर देते हैं। यजुर्वेद षोडशाऽध्याय (१६) में जिन को आज कल शूद्र महाशूद्र कहते हैं उन के लिए भी नमस्कार कहा गया है यथाः—

> **नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो,**
> **नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो,**
> **नमो निषादेभ्यः पुंजिष्ठेभ्यश्च वो नमो,**
> **नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ १६ । २७ ॥**

महीधर भाष्यम्—तक्षाणः शिल्पजातयस्तेभ्यो नमः। रथं कुर्वन्तीति रथकाराः सूत्रधारविशेषास्तेभ्यो वो नमः। कुलालाः कुम्भकारास्तेभ्यो नमः। कर्म्मरा लोहकारास्तेभ्यो वो नमोस्तु। निषादा गिरिचरा मांसाशिनो भिल्लास्तेभ्यो वो नमः। पुंजिष्ठाः पक्षिपुञ्ज घातकाः पुल्कसादयस्तेभ्यो वो नमः। शुनो नयन्ति ते श्वन्यः श्वकण्ठ बद्धरज्जुधारकाः श्वगणिनः नयतेर्हस्व आर्षः तेभ्यो नमः। मृगान् कामयन्ते ते मृगयवः..................मृगयवो लुब्धकास्तेभ्यो वो नमः।

(तक्षभ्यः नमः) तक्षा जो शिल्प जातिएं हैं। (बढ़ई, खाती, तखान) उनको नमस्कार हो। (रथकारेभ्यः+वः+नमः) रथ के बनाने वाले जो सूत्रधार जातिएं हैं उन आप सबों को नमस्कार हो (कुलालेभ्यः+नमः) कुलाल अर्थात् कुम्भकार=कुम्हारों को नमस्कार हो। (कर्मारेभ्यः+वः नमः) कर्म्मार अर्थात् लोहकारों को नमस्कार। (निषादेभ्यः नमः) निषाद अर्थात् गिरिचर मांसाशी भिल्लों (भील) को नमस्कार। (पुञ्जिष्ठेभ्यः) पुञ्जिष्ठ जो पक्षिसमूह घातक पुल्कस आदि जातिएं हैं उन्हें नमस्कार। (श्वनिभ्यः) श्वनी अर्थात् कुत्तों को ले चलने वालों को नमस्कार। एवं (मृगयुभ्यः) मृगयु जो लुब्धक व्याध उन को भी नमस्कार।

इस में सन्देह नहीं कि आज कल निषाद पुञ्जिष्ठ आदि जातिएं बहुत निकृष्ट मानी जाती हैं अमरकोश कहता है कि "निषाद श्वपचावन्तेवासि चाण्डाल पुक्कसाः" ।निपाद, श्वपच, अन्तेवासी पुक्कस आदि चाण्डाल के नाम हैं परन्तु

वेदों में इन को सत्कार देना चाहिए ऐसी आज्ञा है। इस से सिद्ध है कि व्यवसाय के कारण वेद किसी को निन्द्य नहीं मानता। पुनः यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र १९ में स्थपति, मन्त्री, वणिक् आदिकों को भी नमस्कार कहा है। पुनः इसी अध्याय में नमः सूताय (१८) सारथि को भी आदर कहा है। यदि कहो कि यह सब तो रुद्र का वर्णन है मनुष्य का नहीं, तो इस का उत्तर यह है कि इस अवस्था में शूद्रों का और भी अधिक सम्मान होना चाहिए, क्योंकि जब ये निषाद, पुञ्जिष्ठ, तक्षा, कुम्भकार, लोहकार, सूत, स्थपति आदि जातिएं श्री रुद्र भगवान् के स्वरूप हैं तो महादेव के समान ही ये भी पूज्य, प्रणम्य, स्तुत्य आदरार्ह होनी चाहियें, किसी प्रकार से आप लोग मानें वेद इन को नीच नहीं मानते हैं।

शूद्रों का यज्ञों में अधिकारः—वेदों का यह सिद्धान्त है कि शूद्र कोई आर्य्य जाति से भिन्न नहीं। आर्य्यों की ही संज्ञा कार्य्यवश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है जैसे चार भाई चार काम काज उठा लेवें तो वे चारों बराबर ही माने जायेंगे। इन चारों का साथ ही खान पान होगा। और अपने अपने कार्य्य में सब ही एक दूसरे से अधिक समझे जायेंगे। इसी प्रकार ये चारों वर्ण चार भाइयों के समान हैं। इस अवस्था में आप समझ सकते हैं कि निखिल वैदिक कर्म्मों में सबों का अधिकार बराबर होगा। यदि आप कहें कि शूद्र मूर्ख अनपढ़ होते हैं वे कर्म कैसे करेंगे? उत्तर--सुनो भाई! वेदों में ऐसी आज्ञा कोई नहीं। वेदों में अनपढ़ को शूद्र नहीं कहा गया है। हां! स्मृतिशास्त्रों में तो अनपढ़ को शूद्र कहा है। परन्तु वेदों में "तपसे शूद्रम्" यजुः। कठिन २ कार्य्य साधन करने वाले को शूद्र कहा है अभी आगे इस का वर्णन करेंगे मैंने अनेक मन्त्र यहां उद्धृत किए हैं क्या कोई मन्त्र कहता है कि मूर्ख को शूद्र कहना चाहिए। यदि वेद ऐसा नहीं कहता है तो हम कैसे शूद्र को मूर्ख बतलावें। अब आप विचार सकते हैं कि जनमते ही कोई पुरुष कठिन २ कार्य्य नहीं करता। जब युवावस्था प्राप्त होती है तब कार्य्य करना आरम्भ करता है। उतनी अवस्था में वह अवश्य कुछ पढ़ले सकता है कार्य्य करता हुआ भी नित्य स्वाध्याय सन्ध्योपासन अग्निहोत्र आदि यज्ञ कर सकता है। हां! जो जन्म से निपट मूर्ख ही बना रहा बेशक वह कर्म्म नहीं कर सकता परन्तु इस अज्ञानी को वेद-शूद्र

नहीं कहता है अज्ञानी को अज्ञानी ही कहता है। परन्तु वह अज्ञानी भी यज्ञ स्थलों में बैठ कर कर्म देख सकता है, वेद पाठ सुन सकता है। यदि धनिक होतो पुरोहित के साथ पढ़ता हुआ कर्म्म कर सकता है। देखिए वेद कहते हैं:-

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ ऋ०

यजमान के तरफ से कहा जाता है कि (पञ्च+जनाः) पांचों प्रकार के मनुष्य (मम+होत्रम्) मेरे यज्ञ को (जुषन्ताम्) प्रीति पूर्वक सेवें (गोजाताः) पृथिवी पर के जितने मनुष्य हैं वे सब ही यज्ञ करें (उत) और (ये+यज्ञियासः) जो यज्ञार्ह हैं ये भी बराबर यज्ञ किया करें। (नः) हम को (पृथिवी) पृथिवीस्थ मनुष्य (पार्थिवात्) पार्थिव (अंहसः) पापों से (पातु) पालें और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षचारी (दिव्याम्) अन्तरिक्षस्थ अपराध से (अस्मान्+पातु) हम को पालें। यहां "गोजाताः" शब्द का अर्थ "भूम्यामुत्पन्नाः" सायण कहते हैं॥ इस 'गोजात' शब्द से ही सिद्ध है कि पृथिवी पर के निखिल मनुष्य यज्ञ को करें। पुनः "पञ्चजन" शब्द के ऊपर यास्काचार्य्य कहते हैं। "पञ्चजना मम होत्रं जुषन्ताम्। गन्धर्वाः पितरः देवाः असुरा रक्षांसीत्येके चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इति औपमन्यवः" निरुक्त ॥ ३ । ८ ॥ गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये पञ्चजन हैं। औपमन्यवाचार्य्य कहते हैं कि चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांचों मिल कर "पञ्चजन" कहाते हैं। इस से भी सिद्ध हुआ कि शूद्र और अति शूद्र जो निषाद इन को भी यज्ञ में अधिकार है पुनः--

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आरोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीलुं चिदद्रिमभिनत्परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥

इस मंत्र का पीछे अर्थ कर आए हैं। इस में विस्पष्ट पद है कि "जना यदग्निमयजन्त पञ्च" पांचों प्रकार के मनुष्य अग्नि का यजन करते हैं। अर्थात् ब्राह्मण से लेकर निषाद पर्यन्त सब मनुष्यों को यज्ञ करने का अधिकार है। इस प्रकार वेदों के देखने विचारने से प्रतीत होता है कि संसार के

व्यवहार के लिये जैसे अध्यापक मास्टर, वकील, मुख़तार, जज्ज, कमिश्नर, सेनानायक और सिपाही आदि आज कल होते हैं वैसे ही वेद की आज्ञानुसार ये चारों वर्ण हैं। इन में जाति कर के न तो कोई भेद और न नीचता उच्चता है वेदों में शूद्र किस को कहते हैं, इस का क्या लक्षण है सो ध्यान से सुनिये।

तपसे शूद्रम्। यजुः। ३०। ५॥

बहुत परिश्रमी कठिन कार्य करने वाला साहसी और परमोद्योगी आदि पुरुष का नाम शूद्र है। जैसे दुर्ग हिमालय पर्वतादिक से भी नाना प्रकार की ओषधियों को यज्ञ के हेतु ले आना, समुद्र के पार जाकर भी लोगों की रक्षा करनी, सम्पूर्ण रात्रि जागरण कर, चोर, डाकू, लुच्चे, बदमाश और लम्पटों से ग्राम नगर निवासियों को बचाना, दुर्गम पर्वत पर वा अगम्य टापू आदि में भी छिपे हुए दुष्टों का विनाश करना इत्यादि जो बड़े २ साहस के काज हैं उन्हें जो करे करवावे उस पुरुष का नाम वेदों में शूद्र है। इसी हेतु वेद कहते हैं कि "तपसे शूद्रम्" तप अर्थात् कठिन से कठिन कार्य्य का साधन। उस को जो करे वह शूद्र है। यहां पर साक्षात् 'तप' शब्द का प्रयोग है अर्थात् तपश्चरण के लिये 'शूद्र' है जो सब कार्य्य किसी से न हो उस का करना निःसन्देह तपस्या का कार्य्य है। अथवाः--

"पद्भ्यां शूद्रो अजायत"

जैसे सब से नीचे रह करके भी पैर ही इस सम्पूर्ण शरीर का भार उठा रहा है। पैर के बिना शिर बाहु, पेट आदि किसी अंग की गति एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं हो सकती, पैर को ही प्रथम कंटक चुभने आदि का क्लेश उठाना पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्यों में से जो कोई सब मनुष्यों का भार अपने ऊपर लेरहा है, नाना क्लेश सहकर भी सब का हित ही चाहरहा है। उसी का नाम वेदों में शूद्र है और इसी भाव को शब्दार्थ भी बतलाता है यथाः--

"शुचा शोकेन द्रवतीति शूद्रः"

जो कोई मनुष्यों के विविध क्लेशों को देख के शोक से द्रवीभूत होवे अर्थात् क्लेशों को देख जिस के मन में यह उपजे कि हाय! इन क्लेशों का नाश

कैसे होगा ? मनुष्य इन दुःखों से कैसे छूटेंगे। इन की क्या दवाई है इस प्रकार के विचारों से जिस का हृदय आर्द्र होजाय और इन की निवृत्ति के लिये सोच विचार कर शीघ्र प्रवृत्त होजाय उस का नाम शूद्र है । इसी भाव को ऋषियों ने भी स्वीकार किया है।

"जानश्रुति पौत्रायण"

छान्दोग्योपनिषद में पौत्रायण जानश्रुति की आख्यायिका इस भाव को विस्पष्ट रूप से सूचित करती है। किसी एक राजा का नाम जानश्रुति था। वह बड़ा दानी था। श्रद्धा भक्ति से इस ने अपने राज्य भर में धर्म्मशालाएं स्थापित कीं थी कि सब कोई मेरे यहां ही खाया करें परन्तु यह राजा वैसा ज्ञानी नहीं था। एक रात को इस के मन में अनेक विचार उपस्थित हुए। पश्चात् उसे बड़ी ग्लानि हुई कि मैं ज्ञानी विज्ञानी नहीं हूं। वह उस समय के महान् ज्ञानी रैक्क ऋषि को खोज करवा के उन के निकट विद्याध्ययन के लिये गया। वह ऋषि विवाह करना चाहते थे। राजा जानश्रुति ने ऋषि की यह इच्छा देख अपनी दुहिता दे उन से ब्रह्म ज्ञान का उपदेश लिया। यही कथा का सार है अब इस में विचार ने की बात यह है कि जब यह राजा बहुतसा धन धान्य लेकर ऋषि के निकट पहुंचा है तब ऋषि ने इस को "शूद्र" कह कर पुकारा है। यथा "तमुह परः प्रत्युवाच हीरेत्वा शूद्र" क्षत्रिय होने पर भी इस को ऋषि ने शूद्र क्यों कहा यह शङ्का होती है । इस शङ्का की निवृत्ति के हेतु वेदान्त सूत्र इस प्रकार निर्णय करता है किः—

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् ॥ ३५ ॥
क्षात्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ॥ ३६ । १ । ३ ॥

यद्यपि यह क्षत्रिय था परन्तु (अस्य+शुक्) इस को शोक उपस्थित हुआ और उस शोक से (तदा+द्रवणात्) तब द्रवीभूत हुआ इस हेतु इस को ऋषि ने शूद्र कहा। भाव इस का यह है कि उस को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये शोक प्राप्त हुआ कि मुझ को किस प्रकार ब्रह्मज्ञान मिलेगा। अपनी दुहिता (कन्या) देकर भी इसने ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया। आप यहां देखते हैं कि इस ने कैसा तप का कार्य किया। कैसा प्रशंसनीय इस का साहस है ? अतः इस को ऋषि ने शूद्र कहा।

इस से यह सिद्ध होता है कि इस प्रकार के कार्य्यानुष्ठान करने वाले को शूद्र कहना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण हैं।

अब आप यह भी विचारें कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस वेद का आशय यह है कि प्रत्येक मनुष्य का शरीर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों से बना हुआ है। इस शरीर में शिर ब्राह्मण, हाथ क्षत्रिय, मध्य भाग अर्थात् गर्दन से नीचे और कटि से ऊपर का भाग वैश्य और पैर शूद्र है। इस हेतु हरएक आदमी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों है। इस से सिद्ध हुआ कि कोई पुरुष अकेला ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य वा शूद्र हो ही नहीं सकता। जब होगा तब चारों ही होगा ईश्वर की ऐसी ही सृष्टि है इस का कौन निवारण कर सकता। प्रत्यक्षतया लोक में देखते भी हैं कि प्रत्येक मनुष्य चारों कार्य्य करता है। ज्ञानी से ज्ञानी पुरुष को उदाहरण के लिये ले लीजिये। कभी वह ईश्वरीय ज्ञान में निमग्न रहेगा। लोगों को पढ़ाता लिखाता वा उपदेश करता रहेगा इत्यादि इस का कार्य्य ब्राह्मण सम्बन्धी है। जब कभी चोर वा डाकू घर लूटने को आता है अथवा देश पर शत्रु आक्रमण करता है तो यथाशक्ति लड़ता भी है अथवा अपने शरीर की ही रक्षा के लिये उसे बहुत उद्योग करना पड़ता है कभी देह पर से मक्षिकादि निवारण करना, कभी व्यायाम करना। बाल्यावस्था में दौड़ना खेलना इत्यादि कार्य्य उस का क्षत्रिय सम्बन्धी है। पुनः वह अपने लिये वा दूसरों के लिये विद्या वा धनसंग्रह करता है दूसरों से लेता देता है इत्यादि कार्य्य वैश्य सम्बन्धी है। बड़े परिश्रम से विद्योपार्जन करना अपूर्व अपूर्व विद्या के आविष्कार के लिये मनोवशीकरणादिरूप तपश्चरण गुरु आचार्य्य अतिथि आदि की शुश्रूषा इत्यादि कार्य्य शूद्र सम्बन्धी है। पुनः हम देखते हैं कि बड़े २ मनस्वी स्वतन्त्रताप्रिय विज्ञानी जन साथ २ चारों वर्णों के कार्य्य करते हैं। प्रातः सन्ध्योपासन कर विद्यार्थियों को पढ़ाते वा मनुष्यों को उपदेश देते वा लिखते लिखाते। साथ ही कुछ खेती और व्यापार कर लेते अपने हाथ से लकड़ी वगैरह फार चीर कर संग्रह करते लोगों की रक्षा में सदा तत्पर रहते, इस प्रकार आप यदि विचार से देखेंगे

तो मालूम हो जायगा कि प्रत्येक आदमी एक ही काल में चारों वर्णों से युक्त है। अब जो एक एक व्यक्ति में एक एक ब्राह्मणत्वादि का व्यवहार होता है सो इस लिये होता है कि एक एक गुण की उस २ में प्रधानता और अन्यान्य गुणों की अप्रधानता रहती है। जैसे प्रत्येक में यत् किञ्चित् कामक्रोधादि रहने पर भी जिस में बहुत शान्ति है उसे शान्त साधु कहते हैं। तद्वत्। अब समझ सकते हैं कि वेदानुसार केवल न कोई ब्राह्मण और न कोई शूद्र है अथवा मान भी लिया जाय कि ये चारों भिन्न २ हैं तथापि यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि इस शरीर में पैर शूद्र है। इस हेतु जो शूद्र से घृणा करता है उसे प्रथम उचित है कि अपने शरीर से पैर को काटकर अलग करदे। पैर न छूवे पैर के भर पर न चले। एवं उसे पृथिवी पर भी नहीं रहना चाहिये। क्योंकि पूर्व में याज्ञवल्क्य ऋषि के वाक्य से सिद्ध कर चुके हैं कि शूद्र और पृथिवी बराबर हैं। एवंच पौराणिकों को गङ्गा में स्नानादिक भी नहीं करना चाहिये क्योंकि गङ्गा की उत्पत्ति भी पैर से है। परन्तु वैसा करता हुआ कोई भी पुरुष देखा नहीं जाता। अतः शूद्रों से भी घृणा रखनी सर्वथा अज्ञानता है। प्रत्युत पृथिवी और गङ्गा के समान शूद्रों को पूर्ण सत्कार करते हुए और इन को उच्च बनाते हुए इन से बड़े २ कार्य्य करवाने चाहिये।

"प्रत्येक मनुष्य को चारों वर्ण होना चाहिये"

जब वेद शास्त्रों से सिद्ध है कि हरएक आदमी का शरीर चारों वर्णों के योग से बना हुआ है तब इस अवस्था में सब को यह भी उचित है कि चारों वर्णों के गुणों को अपने में पूर्णतया धारण करने के हेतु पूर्ण प्रयत्न किया करे। यथार्थ में तब ही मनुष्य मनुष्य हो सकता है। केवल एक एक गुण के धारण से मनुष्य तीन अंशों से रहित रहता है। सच मुच उस में एक ही अंश रह जाता है। यदि प्राचीन उदाहरणों को इस विषय में विचारेंगें तो बड़े बड़े महात्मा ऋषियों में चारों गुण प्रायः पावेंगे। वेद के ऋषि वसिष्ठ, विश्वामित्र, अंगिरा, गोतम, वामदेव, कण्व, जमदग्नि आदि महापुरुषों को हम न तो केवल ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र ही कह सकते। एक ओर तो

ये सब वेद के गूढ़ २ तत्वों के अन्त तक पहुंचे हुए थे। दूसरी ओर जगत के मंगलार्थ दुष्ट अव्रती दस्युओं को न्यून करने में भी वैसे ही तत्पर थे। एक ओर धन धान्य को तुच्छ समझते हुए भी खाद्य भोज्यादि पदार्थों से मनुष्यों को सुखी रखने हेतु सहस्रों प्रकार के वैभवों से युक्त थे। एक ओर प्रजाओं के स्वामी होते हुए भी अपने हाथों से खेत करते थे, नौका रथादि बनाते थे। बड़े२ पर्वतों पर जा नवीन २ पदार्थों को अन्वेषण करते थे। बड़े २ जहाज तय्यार कर अपने हाथों खेव पार जाया करते थे। परोपकार, दुर्बलों की शुश्रूषादि कर्म्म के लिये सदा तत्पर रहते थे। इस हेतु वैदिक ऋषियों का कोई एक वर्ण स्थिर नहीं कर सकते। क्या महर्षि याज्ञवल्क्य के मान्य शिष्य जनक महाराज को हम केवल क्षत्रिय ही कह सकते। नहीं नहीं इन्हें उच्च से उच्च ब्राह्मण की पदवी दे सकते हैं। इसी प्रकार महाराज पञ्चालाधिपति प्रवाहण जैवलि, केकयदेशाधिपति महाराज अश्वपति, काशिराज अजातशत्रु आदिक महात्माओं को केवल राजा वा क्षत्रिय ही नहीं कह सकते। आप विचार कर देखेंगे तो मालूम होगा कि महात्मा लोग चारों गुण धारण करने के लिये सदा प्रयत्न किया करते हैं। क्या वह महात्मा वा महापुरुष हो सकता है जो मनुष्य-समाज की शरीर मन वचनादि से शुश्रूषा नहीं करता है। रामचन्द्र कृष्णचन्द्र युधिष्ठिर हरिश्चन्द्र आदि इस कारण महापुरुष गिने जाते हैं कि सब प्रकार से इन्होंने मनुष्य सेवा की। इस हेतु प्रत्येक आदमी को साथ ही चारों वर्ण बनने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये! तब ही यथार्थ में मनुष्य पूर्णता को प्राप्त हो सकता है। अन्त में महाभारत के दो श्लोक कहकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं:-

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्म्मसु।
दाम्भिको दुष्कृतः प्रायः शूद्रेण सदृशो भवेत्॥
यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्म्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः। म० व० २१५।१३॥

क्षत्रिय और वेद।

न्यायपूर्वक क्षात्रधर्म्म से प्रजाओं में जितना ही अधिक लाभ है अन्याय पूर्वक क्षात्रधर्म्म को कार्य्य में लाने से उतनी ही बड़ी हानि है । एक एक स्वतन्त्र राजकुमार ने क्या क्या अत्याचार-घोर अकथनीय अवर्णनीय किया है उस के साक्षी इतिहास हैं । जिस के श्रवण मात्र से साधु पुरुष का हृदय कम्पायमान हो जाता है । परन्तु इस के साथ २ बल ही जगत् का रक्षक भी होता आया है । इस में भी सन्देह नहीं । वेदों में 'क्षत्र' शब्द के प्रयोग बहुत आए हैं । इसी से 'क्षत्रिय' पद भी बनता है । "क्षतंत्रायते इति क्षत्रम्" जो बल अर्थात् शक्ति दुर्बल पुरुष की रक्षा करती है उस बल का नाम वेदों में 'क्षत्र' है (१) उस क्षत्र (बल) से युक्त पुरुष का भी नाम 'क्षत्र' होता है । जैसे 'ब्रह्म' यह नाम वेद और ईश्वर का है । परन्तु उस वेद से और वेदप्रतिपाद्य ईश्वर से जो पुरुष युक्त है उस पुरुष का भी नाम ब्रह्म होता है । तद्वत् । क्षत्र और क्षत्रिय एकार्थक हैं यह वैदिक पद हमें सूचित करता है कि असमर्थ पुरुषों की रक्षा के लिये क्षत्रिय वर्ण की सृष्टि हुई न कि असमर्थों के सताने के लिये । अति प्राचीन काल में क्षत्र पद का अर्थ चरितार्थ था । जो अपने बल से और पुरुषार्थ से दूसरों की और अपनी रक्षा किया करते थे वे 'क्षत्र' वा "क्षत्रिय" कहलाते थे । और प्रजाएं चुनकर जिस क्षत्रिय को अपनी रक्षा के लिये अधिपति बनाती थीं । उस को 'राजा' वा 'सम्राट्' कहा करते थे । "राजते रज्यते वा राजा सम्यग् राजते सम्राट्" जो प्रजाओं के बीच बल वीर्य्य से सूर्य्यवत् देदीप्यमान हो और प्रजाओं के कार्य्यों में रक्त अर्थात् तत्पर हो उसे राजा वा सम्राट् कहते हैं । पूर्व समय में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के समान राजा भी कोई ख़ान्दानी नहीं होता था । अपने गरोह में से ही प्रजाएं किसी वीर्य्यवान्, तेजस्वी, वीर, विद्वान्, लौकिकज्ञानसम्पन्न पुरुष को राजा चुनकर बना लेती थीं । जब से यह राजपद भी वंशानुगत होने लगा अर्थात् एक ही वंश का कुमार राज्याधिकारी होने लगा तब से भारत की बहुत अवनति होने लगी । 'एक वंश के

(१) अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्नि वाजस्य परमस्य रायः ॥ ४ । १२ । ३ ॥ इत्यादि ऋचाओं में 'क्षत्रिय' शब्द का अर्थ सायण 'बल' ही करते हैं ।

ही पुरुष को राजा बनाते जाना" इस से बढ़कर देश में न कोई पाप न अन्याय और न अधर्म्म है। जिस देश में ऐसी प्रणाली है उस देश के निवासियों को मनुष्य-पदवी नहीं मिल सकती। वेदों की सम्मति इस पर सुनिये:—

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्चदेवीः। वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसूनि॥ अथर्ववेद ३। ४२॥

हे राजन्! (विशः) सब प्रजाएं (त्वाम्) आप को (राज्याय) राज्य के लिये (वृणताम्) चुनें। केवल पुरुष ही नहीं किन्तु (इमाः) ये (प्रदिशः) प्रत्येक पूर्व, पश्चिमादि दिशाओं में रहने वाली (पञ्चदेवीः) धर्म्म व्यवस्था जानने वाली देविएं=स्त्रिएं भी (त्वाम्) आप को चुनें। इस के पश्चात् आप (राष्ट्रस्य) राज्य के (वर्ष्मन्) शरीरवत् (ककुदि) अत्युच्च और प्रशस्त सिंहासन पर (श्रयस्व) बैठिये। तब बैठ (उग्रः) उग्ररूप धारण कर (नः) हम प्रजाओं को (वसूनि) विविध सुख (विभज) पहुंचाइये॥

यह मन्त्र सूचित करता है कि पुरुष और स्त्रिएं सब मिलकर जिस पुरुष को अपना 'राजा' बनाना चाहें वही राजा बन सकता है। किसी विशेष वंश के पुत्र ही राजा हों अन्य वंश के नहीं ऐसी व्यवस्था वा आज्ञा वेदों की नहीं पुनः अभिषेक काल में भी यह घोषणा की जाती है कि:—

विशस्त्वा सर्वावाञ्छन्तु॥ अथर्ववेद ४। ८। ४॥

हे राजन्! सब प्रजाएं तुम को चाहें।

पुनः=यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।

अस्तृणाद् बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः॥ ८।६३।७॥

(यद्) जब (पाञ्चजन्यया+विशा) राज्यों के समस्त प्रपञ्च और व्यवस्थाओं के जानने वाली पांचों प्रकार की प्रजाएं (इन्द्रे) राजा के निमित्त (घोषाः+असृक्षत) घोषणा करती हैं तब ही राजा बन सकता है। अन्यथा नहीं।

पुनः=सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत॥ अथर्व० १५।८।१॥

जो प्रजाओं में अनुरक्त होता है वही राजा हो सकता है। इन मन्त्रों से सिद्ध है कि समस्त प्रजाओं में से योग्य पुरुष को चुन कर राजा बनाना चाहिये।

'राजा की योग्यता'

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥१।२५।१०॥

(साम्राज्याय) साम्राज्य के लिये वह पुरुष योग्य है जिस ने (धृतव्रतः) प्रजा के पालन के लिये व्रत धारण किया है और (सुक्रतुः) जिस के समस्त कर्म्म प्रशंसनीय हैं और जो (वरुणः) सब प्रजाओं की ओर से चुना गया हो वह पुरुष (पस्त्यासु+आनिषसाद) प्रजाओं में राजा हो सिंहासन पर बैठ सकता है। पुनः-

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥७॥
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥८॥
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते॥९॥

जो पुरुष (अन्तरिक्षेण+पतताम्) आकाश मार्ग से चलने वाले (वीनाम्+पदम्+वेद) विमान आदिक यन्त्रों के तत्त्वों को जानता है और (वेद+नावः समुद्रियः) जो सामुद्रिक जहाजों की गति को जानता है। वह राज्याधिकारी है इस से यह उपदेश देते हैं कि समुद्र के द्वारा और आकाश मार्ग के द्वारा आक्रमण करने के जो जो साधन हैं उन्हें जो जाने वह राजा हो सकता है। इसी प्रकार १३ तेरहों महीनों और वायु की गति के जानने वाला राजा हो सकता है। भाव यह है कि पृथिवी पर किस मास में किस देश के जल वायु शीतता उष्णता आदि सब अच्छे रहते हैं इत्यादि विज्ञानवित् पुरुष राजा हो सकता। इत्यादि अनेक मन्त्र राजा की योग्यता सूचक हैं उन्हें वेदों में देखिये। पुनः-

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये॥१०।६६।८॥

(धृतव्रताः) क्षात्रव्रतधारी (क्षत्रियाः) बलधारी (यज्ञनिष्कृतः) याग सम्पादक (बृहद्दिवाः) महातेजस्वी (अध्वराणाम्+अभिश्रियः) यागों के सेवक (अग्निहोतारः) प्रतिदिन स्वयं अग्नि में हवन करने वाले (ऋतसापः) सत्य सेवक 'षप समवाये' (अद्रुहः) निष्कारणद्रोह रहित ऐसे वीर पुरुष (वृत्रतूर्ये) शत्रु संहारक संग्राम में (अपः) युद्ध कर्म्मों को (असृजन्) सृजन करते हैं।

यहां "क्षत्रिय" शब्द विशेषण में आया है। सायण भी "क्षत्रं बलं तदर्हाः" बलिष्ठ अर्थ करते हैं। इन गुणों से युक्त पुरुष, निश्चय, क्षत्रिय है।

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥ ८ । ६७ । १ ॥

(आदित्यान्) सूर्य्यवत् देदीप्यमान (सुमृळीकान्) सुख पहुंचाने वाले (तान्+नु+क्षत्रियान्) उन क्षात्रधर्म्म संयुक्त पुरुषों से (अभिष्टय+अवः) कल्याण के लिये रक्षा की (याचिषामहे) याचना हम करते हैं।

अवस्=रक्षण । इस से सिद्ध है कि जो सूर्य्य समान विघ्न रूप अन्धकार को नाश करे और प्रकाश स्वरूप रक्षा को फैलावे वह क्षत्रिय है ॥

ऋतावाना निषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू ।
धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८ । २५ । ८ ॥

(ऋतावाना) जो सत्यवान् (सुक्रतू) अच्छे कर्म्म करने वाले वा सुमज्ञ सुबुद्धिमान् राजा और मन्त्री हों (साम्राज्याय+निषेदतुः) वे राज्य के भार उठाने के लिये बैठें (धृतव्रता+क्षत्रिया) व्रतधारी, और बल सम्पन्न वे दोनों (क्षत्रम्+आशतुः) बल को प्राप्त करें। ऋतावाना=ऋतावानौ। धृतव्रता=धृतव्रतौ। क्षत्रिया क्षत्रियौ। ये तीनों पद द्विवचन हैं ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्म्मणो महिमा पिपर्तु ॥ ७।७५।१

जीमूत=मेघ । प्रतीक=शरीर, रूप । वर्मी=कवचधारी । समद्=संग्राम । पिपर्तु=पालन करे।

(समदाम्+उपस्थे) संग्रामों की उपस्थिति होने पर (यद्+वर्म्मी+याति) जब कवचधारी क्षत्रिय युद्धार्थ यात्रा करता है तब (जीमूतस्य+इव+प्रतीकम्+भवति) मेघ के समान उस का रूप होता है। हे राजन् ! (अनाविद्धया+तन्वा) अनाविद्ध शरीर से (स त्वम्+जय) वह तुम जय प्राप्त करो (वर्म्मणः+महिमा+त्वा+पिपर्तु) वर्म्म की महिमा तेरी रक्षा करें।

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

(धन्वना+गाः+जयेम) शत्रुओं की पृथिवी को हम धनुष से जीतें। (धन्वना+आजिम्) धनुष से संग्राम जीतें (धन्वना) धनुष से (तीव्राः+समदः+जयेम) असन्न उद्धत शत्रुसेनाओं को जीते (धनुः+शत्रोः+अपकामम्+कृणोति) धनुष शत्रु की कामना का नाश करता है। (धन्वना) धनुष से (सर्वाः+प्रदिशः) सब दिशाएं (जयेम) जीतें※।

यहां ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से अधिक वर्णन नहीं करते। आप लोग इस वैदिक सिद्धान्त पर अवश्य ध्यान देवेंगे कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्था कदापि न चलने पावे। इस से बड़ा २ अनर्थ उत्पन्न होता है। इति ॥

"वेद और वैश्य वर्ण"

विश् (विट्) शब्द के प्रयोग वेदों में बहुत आए हैं। इसी से "वैश्य" बनता है। विश् और वैश्य एकार्थक हैं "वैश्या भूमिस्पृशो विशः" अमरकोष॥ विश् यह नाम प्रजामात्र का अर्थात् सब मनुष्य का है। इसी कारण राजा को "विशांपति" अर्थात् प्रजाओं का पति कहा है। "विश एषवोऽमीराजा" यजु० ९।४०॥ परन्तु इस के प्रयोग व्यापारी अर्थात् वाणिज्यकर्ता में विशेष कर होने लगे। वेदों में इस अर्थ में भी बहुत प्रयोग हैं। यहां अधिक वर्णन न कर के संक्षेप से यह कहना चाहते हैं कि बड़े २ वाणिज्य के कार्य्य "गण" (Company) के साथ होने चाहिये। प्रायः लोग कहेंगे कि यह तो अंगरेजों की बात कहते हैं क्योंकि इन ही में कम्पनिएं हुआ करती हैं। सुनिए ऋषि कहते हैं "स नैव व्यभवत् स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुतः" इति॥ १२॥ बृ०उ०अ० १॥ जब ब्राह्मणों और क्षत्रियों से भी जगत् के व्यवहार नहीं चल सके तब वैश्यों को बनाया। जैसे देवों में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और मरुत एक एक गण प्रसिद्ध हैं और ये गण होने से वैश्य हैं वैसे ही मनुष्यों में वैश्यों का एक २ गण होना चाहिये। इस का भाव यह है कि जैसे वसु ८, रुद्र ११, आदित्य १२, विश्वेदेव ३३

* धनुष यहां उपलक्षण है। तपिष्ठ, हथ, अत्क, तपुषि, वकुर आदि अनेक आयुध अस्त्र शस्त्र के वद में नाम आए हैं।

और मरुत् ४६ हैं। वैसे ही वैश्य लोग भी ८। ८ वा ११। ११ वा १२। १२ वा ३३। ३३। वा ४९। ४९ मनुष्य मिल कर व्यापार वा वाणिज्य किया करें। यहां वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और मरुत की उपमा देने से और 'गणशः' के प्रयोग से निस्पष्ट है कि वैश्यों का गण (Company) होना चाहिए। ऋषियों के समय में बड़े २ व्यापार गणों से होते थे इसी कारण 'गण' में जिस जिस का भाग रहता था वह 'सार्थ' अर्थात् समानप्रयोजन वाला कहलाता था और इन सबों का जो प्रधान होता था उसे "सार्थवाह" कहते थे। यहां ८, ११, १२ आदि संख्या का भाव यह नहीं है कि ८ ही वा ११ ही वा ४९ ही मनुष्य मिल के वाणिज्य करें इस से न्यून अथवा अधिक न हों। यहां संख्या उपलक्षण मात्र है, केवल 'गण' से अभिप्राय है अर्थात् वैश्यों को व्यापार के लिए गण की आवश्यकता है यह सूचित करता है। यहां अन्त में मरुत् ४६ पद आया है यही संख्या सब से अधिक है। वेदों में वैश्यों को अनेक स्थल में 'मारुती मरुत्वती' अर्थात् मरुत सम्बन्धी कहा है। यथाः—

यदाते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नि येमिरे ॥ ८। १२। २९ ॥
अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम्।
उतोमरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ ८। १३। २८ ॥

यहां विश के विशेषण में 'मारुती' और 'मरुत्वती' प्रयोग हैं। इस से सिद्ध है कि गण में जितनी ही मनुष्यों की अधिक संख्या होगी उतना ही अच्छा है 'मारुती' पद से अन्यान्य अभिप्राय ये भी हैं कि सामुद्रिक यात्रा के लिए वैश्यों का वायु ही बड़ा भारी सहायक है पानी होने का भी कारण वायु होता है। वायु के द्वारा ही पर्जन्य=मेघ इधर उधर जा वैश्यों की कृषि को सींचते हैं। पुराणों में इसी हेतु वायु की जाति वैश्य कही गई है ॥ इति ॥

"विवाह"

मैं अनेक स्थलों में आप लोगों से कह चुका हूं कि वैदिक समय में प्रत्येक गृह चारों वर्णों से युक्त था। किसी का पिता गुणाधिक्य से यदि ब्राह्मण

प्रसिद्ध है तो इस के पुत्रों में से कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रिय कोई वैश्य और शूद्र है। किसी का पिता यदि शूद्र है तो उस के पुत्र ब्राह्मण हैं। (सब को सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिए कि वेदानुसार साहसी, तपस्वी, उत्कटवीर, सब के सब प्रकार से भार उठाने वाले और तन मन धन से समाज की सेवा करने वाले का नाम शूद्र है) बहुधा तो बड़े २ ऋषि या महात्मा स्वयं चारों वर्ण थे उन में ब्राह्मणत्व की प्रधानता से वे ब्राह्मण कहलाते थे। इस हेतु वैदिक समय में कोई ऐसी चर्चा ही नहीं थी कि किस का कहां विवाह हो, हां! गोत्र छोड़ कन्या जहां जिस को पसन्द कर लेती थी वहां उस का विवाह हो जाता था। इस में सन्देह नहीं कि दस्यु-दास अर्थात् अव्रती नास्तिक पुरुषों के साथ सब व्यवहार वर्जित था। परन्तु इस अवस्था में भी प्रायः ऋषि लोग उन ही दस्यु वा दासों की कन्याओं से उन के कल्याणार्थ विवाह कर लेते थे और उन कन्याओं को योग्य-ऋषिका बना छोड़ते थे। इसी हेतु मनु जी कहते हैं कि "अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा। शारंगी मन्दपालेन जगामाऽभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥ एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्ट प्रसूतयः। उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः सह ॥ २४ ॥ मनु० अध्याय ९ ॥ अर्थः–अधमयोनिजा अर्थात् निकृष्ट दस्यु वा दास की कन्या अक्षमाला और शारङ्गी नाम की कन्या ये दोनों क्रमशः ऋषि वसिष्ठ से और ऋषि मन्दपाल से संयुक्ता अर्थात् विवाहिता होने पर परमपूज्या बन गईं ॥ २३ ॥ इस के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतसी निकृष्ट पुरुषों की कन्याएं अपने २ स्वामी के गुणों से उत्कृष्टता को प्राप्त हुईं।२४। इस से सिद्ध है कि ऋषि लोग प्रायः दस्युओं की कन्या से उस के सुधार के लिए विवाह कर लिया करते थे। ऐतरेय और कवष बड़े ऋषि गिने जाते हैं परन्तु वे दोनों ही दासी पुत्र हैं। कलियुग के आदि में अर्थात् युधिष्ठिर के समय में भी ऐसा विवाह निन्दनीय नहीं माना जाता था क्योंकि महा जङ्गली राक्षस अर्थात् महापतित जो सर्वथा वर्जित मनुष्य मांस को भी खाया करता था ऐसे पतित घृणित पुरुष की कन्या से भी महाराज भीमसेन जी ने विवाह कर लिया, यथा–"सा दृष्ट्वा पांडवांस्तत्र सुप्तान् मात्रा सह क्षितौ। हृच्छयेनाभिभूतात्मा भीमसेनमकामयत ॥६४॥ हत्वा हिडिम्बंभीमोऽथ प्रस्थितो भ्रातृभिः सह। हिडिम्बामग्रतः कृत्वा तस्यां

जातो घटोत्कचः" ॥ १०९ ॥ महाभारत वनपर्व अ० १२ ॥ वह हिडिम्बा माता के साथ पृथिवी पर सोए हुए पाण्डवों को देख अत्यन्त अनुरक्ता हो भीमसेन की कामना वश हो गई। वह भीमसेन भी हिडिम्ब को मार और हिडिम्बा स्त्री को आगे कर अपने भाइयों के साथ आगे चले। उस हिडिम्बा में घटोत्कच उत्पन्न हुआ। (हिडिम्बा का भाई हिडिम्ब था) इसी कारण एक स्थल में मनु जी कहते हैं "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि" मनु० अ० २ श्लोक २३८ ॥ पतित कुल से भी स्त्री रत्न को ग्रहण करे। हां ! इस में सन्देह नहीं कि कन्या उच्च कुल में देवे। इस का भी यह भाव होगा कि सर्वदा नीच कुल की ही कन्या लेनी पड़ेगी क्योंकि सब कोई अपनी २ कन्या को उच्च कुल में देना चाहेगा (व्यवसाय से कोई उच्च वा नीच नहीं सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिये) यद्यपि किसी २ देवी के आने से पति और गृह दोनों सुधर गए हैं कभी २ देखा गया है कि अति नीच पुरुष भी अपनी धर्मपत्नी के गुणों और उपदेशों से भूषित हो शुद्धाचारी आचरणवान् हो गया है। बड़े सुशिक्षित घर की कन्याएं किसी कारणवश जब २ मूर्ख वा अनाचारी के गृह में विवाहिता होके गई तो प्रायः देखा गया है कि उस गृह का सुधार अच्छे प्रकार से होने लगा है ऐसे अनेक उदाहरण अब भी विद्यमान हैं इस से यह सिद्ध होता है कि उपकारके लिये नीच गृहमें भी यदि सुशिक्षिता कन्या जाय तो उस गृह का कल्याण ही होगा क्षति नहीं। तथापि मर्यादा और धर्म रक्षा के लिये भारतवर्षीय वनिताएं सहस्रों दुःख सहती हुई भी प्रायः अपने पति की इच्छा को कदापि भी नहीं दबातीं अर्थात् पति की आज्ञा में सदा पार्वतीवत् स्थिर रहती हैं और पति की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालती। इस का परिणाम यह होता है कि स्त्री के सदाचार का उतना प्रभाव पुरुष पर नहीं पड़ता, इस हेतु यह उचित है कि कन्या को उच्च कुल में देने के लिए सदा यत्न करे। इसी हेतु मनु जी कहते हैं कि "यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथा विधि। तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा" जैसे गुण वाले पुरुष के साथ स्त्री संयुक्ता होती है। वैसे ही गुणवाली हो जाती है जैसे समुद्र से मिल कर नदी।

"अनुलोम विवाह"*

जिस समय में वंशानुगत वर्ण व्यवस्था चल पड़ी है उस समय में भी अनुलोम विवाह बराबर जारी था इस के दो एक उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

अधिगम्य गुरोर्विद्यां गच्छन् स्वानिलयं प्रति ॥१४१॥ कक्षीवानध्वनि श्रान्तः सुष्वापारण्यगोचरः। तं राजा स्वनयो नाम भावयव्यसुतो व्रजन् ॥ १४२ ॥ क्रीडार्थं सानुगोऽपश्यत् स भार्यः स पुरोहितः। अथैनं रूपसम्पन्नं दृष्ट्वा देवसुतोपमम् ॥ १४३ ॥ कन्यादाने मतिं चक्रे वर्णगोत्राविरोधतः इत्यादि ॥ बृहद्देवता अ० ३ ॥

दीर्घतमा और राजा स्वनय की कन्याः–दीर्घतमा ऋषि के पुत्र कक्षीवान् गुरु से विद्याध्ययन कर अपने गृह को लोटते हुए मार्ग में श्रान्त हो किसी वन के किनारे सोगए। दैवयोग वश भावयव्य राजा के पुत्र स्वनय नाम के एक राजा अपनी धर्मपत्नी, पुरोहित और सेनाओं के साथ जंगल में शिकार के लिये जाते हुए इस देवकुमारसमान कक्षीवान् को रूपसम्पन्न देख कन्या दान के लिये विचार करने लगे पश्चात् उस कुमार को उठा उस के वर्ण गोत्रादिक सब पूछे तब उस ने कहा कि मैं औचथ्य दीर्घतमा का पुत्र हूं और मेरा नाम कक्षीवान् है। यह सुन राजाने इस को अनेकाभरण भूषिता कन्या को और इस के साथ बहुत से हय गज सोने भूषण आदि पदार्थ दे विदा किया ॥

राजर्षिरभवद्दाल्भ्यो रथवीतिरितिश्रुतः। स यक्ष्यमाणो राजात्रिमभिगम्य प्रसाद्य च ॥ अवृणीतार्षिमात्रेय मार्त्विज्यायार्चनानसम्। बृहद्देवता ५। ४९ ॥

श्यावाश्व और रथवीति की कन्याः–रथवीति नाम के एक राजर्षि ने यज्ञ करने की इच्छा से अत्रिगोत्रोत्पन्न अर्चनाना नाम के ऋषि से ऋत्विक्कर्म्मार्थ याचना की, वह अर्चनाना अपने पुत्र श्यावाश्व के साथ राजा के गृह यज्ञ करवाने

*उच्च वर्ण के कुमार के अपने से नीच २ वर्ण की कुमारी से विवाह होने का नाम अनुलोम है जैसा विप्र कुमार का विवाह क्षत्रियादि कुमारी से और नीच २ वर्ण के कुमार के अपने से उच्च २ वर्ण की कन्या से विवाह होने का नाम प्रतिलोम विवाह है जैसा क्षत्रिय कुमार का ब्राह्मणी कुमारी से।

को गए, राजा की एक कन्या परम सुन्दरी थी । उसे देख श्यावाश्व प्रेम विवश होगया । इस के पिता ने यह चरित्र देख राजा से कहा कि आप अपनी कन्या मुझे स्नुषा (पुत्रवधू पुतोहू) के हेतु देवें । यह सुन राजा ने अपनी महिषी से सब हाल कह सुनाया । उन की पत्नी ने यह कहा कि "नानृषिर्नो हि जामाता नैष मन्त्रान् हि दृष्टवान्" हम दोनों का जामाता अनृषि नहीं होसक्ता । यद्यपि इस ने वेदों को साङ्गोपाङ्ग पढ़ा है तथापि इस ने अभी मन्त्रों को नहीं देखा है अर्थात् इस ने मन्त्रों के तत्त्व को अभी तक नहीं समझा है । अपनी धर्म्मपत्नी की सुयोग्य सम्मति को अनुमोदन कर अर्चनाना ऋषि को पुत्रवधू के लिये कन्या नहीं दी । पश्चात् वह श्यावाश्व बड़े परिश्रम से मन्त्रद्रष्टा बना और उस राजकन्या से विवाह किया । बृहद्देवता के पञ्चमाध्याय में इस की कथा विस्तार पूर्वक कथित है ।

कर्दम और देवहूतिः—यह कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है कि राजा मनु की कन्या से कर्दम ऋषि का विवाह हुआ । भागवत कहता है कि कर्दम ब्राह्मण थे । इसी देवहूति से कपिलाचार्य्य उत्पन्न हुए हैं । ब्राह्मण चारों वर्णों की, क्षत्रिय तीन वर्णों की, वैश्य दो वर्णों की, शूद्र केवल एक ही वर्ण की कन्या से विवाह करते थे । इन सबों के भी बहुत उदाहरण हैं इस प्रकार यदि आप प्राचीन इतिहास ढूंढेंगे तो अनुलोम विवाह के बहुत से उदाहरण मिलेंगे । मनु जी भी कहते हैं कि:—

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य साच स्वाच विशःस्मृते ।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वाचाग्रजन्मनः ॥ ३ । १३ ॥

शूद्र की भार्या केवल एक शूद्रा ही होसकती है । वैश्य की भार्या शूद्रा और अपने वर्ण की कन्या । क्षत्रिय की भार्या, शूद्रा, वैश्या और अपने वर्ण की कन्या और ब्राह्मण की भार्य्या शूद्रा, वैश्या, क्षत्रिया और अपने वर्ण की कन्या हो सकती है । इस प्रकार देखते हैं कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्थित होने पर भी अनुलोम विवाह में बाधा नहीं थी । परन्तु धीरे २ यह अनुलोम विवाह की रीति भी सर्वथा बन्द होगई और करने वाले निन्दित समझे जाने लगे । इतना ही नहीं किन्तु आज कल एक देश के ब्राह्मण का विवाहादि सम्बन्ध दूसरे

देश के ब्राह्मण के साथ नहीं होता। बल्कि एक देशीय ब्राह्मणों में भी शतशः भेद इस प्रकार हो गए हैं कि एक दूसरे के हाथ का खा पी भी नहीं सकता। इसी प्रकार क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रों के भी अनेक भेद भाव हो गए हैं। इस विषय पर पुनः मैं कभी विस्तार पूर्वक वर्णन करूंगा।

'प्रतिलोम विवाह' *

परन्तु प्रतिलोम विवाह भी बहुधा हुआ करता था। लोग विचार के स्वतन्त्र थे। इस कारण प्रारम्भ म इन नियमों की परवाह नहीं करते थे। महाराज ययाति का विवाह ब्राह्मण कुमारी से हुआ। यह कथा महाभारत में बहुत प्रसिद्ध है। भागवतादि सब पुराण भी इस का वर्णन करते हैं। यद्यपि जब धीरे २ वर्ण प्रणाली वंशानुगत हो बहुत दृढ़ होती गई उस समय तो प्रतिलोम विवाह की निन्दा होने लगी, तथापि आज कल के समान उस समय में निन्दा नहीं थी बल्कि प्रतिलोम विवाह का समाजों में बड़ा आदर था किसी २ प्रतिलोम सन्तान की देश में बड़ी ही प्रतिष्ठा थी। क्षत्रिय से ब्राह्मण कन्या में जो सन्तान होता था उस की प्रतिष्ठा देश में कहीं बढ़ कर होती थी, प्रमाण के लिये यहां उदाहरण देखिये :—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागध वैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ॥ मनु०१०।११॥

क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में जो बालक होता है वह 'सूत' और वैश्य से क्षत्रिय की कन्या में जो बालक उत्पन्न होता है वह "मागध" और वैश्य से ही ब्राह्मण की कन्या में जो सन्तान होता है वह "वैदेह" कहाता है॥

सूतजाति का वर्णनः—अब आप विचार के देखेंगे कि यद्यपि सूतवर्ण प्रतिलोम से होता है तथापि इस की कितनी प्रतिष्ठा प्राचीन काल में थी। आप

* क्षत्रिय कुमार का ब्राह्मण कुमारी से, वैश्य कुमार का क्षत्रिय और ब्राह्मण कुमारी से, शूद्र कुमार का वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कुमारी से विवाह होने का नाम प्रतिलोम विवाह है।

लोग जानते होंगे कि दशरथ महाराज के सारथि का नाम 'सुमन्त्र' था। यह केवल सारथि ही नहीं थे किन्तु ये महाराज के मंत्री भी थे। परन्तु यह वर्णव्यवस्था के अनुसार 'सूत वर्ण' थे आप इन प्रयोगों से देखें। "सुमन्त्र ! राजा रजनीं रामहर्षसमुत्सुकः।.........तद्गच्छ त्वरितं सूत ! राजपुत्रं यशस्विनम्। राममानय भद्रं ते नात्र कार्य्या विचारणा। अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि। तच्छ्रुत्वा मंत्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत्। सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्.........इति सूतो मतिं कृत्वा हर्षेण महता पुनः॥ अयोध्याकाण्ड अ० १४ श्लोक ६०-६९॥ प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः। तदा जुहाव तं सूतं रामवृत्तान्त कारणात्। तदासूतो महाराजम्। राजातु रजसा सूतम्। सूत! मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः" । इत्यादि अनेकशः प्रयोग रामायण में विद्यमान हैं जिन से विदित होता है कि 'सुमन्त्र' वर्ण के सूत थे। परन्तु 'सूत' होने पर भी यह राजमन्त्री और 'सारथि' थे। मनुजी ने भी कहा है कि "सूतानामश्वसारथ्यम्" सूतों की जीविका अश्वसारथ्य है। प्राचीन काल में महाराजों का सारथि बड़ा विश्वासी पुरुष बनाया जाता था और इस की प्रतिष्ठा मन्त्री आदिक पुरुषों से न्यून नहीं होती थी। श्रीकृष्ण महाराज स्वयं अर्जुन के सारथि हुए थे। जिस कारण ब्राह्मण कन्या में क्षत्रिय से यह सूत नामक बालक होता था। इस हेतु इस पर पूर्ण विश्वास सब का रहता था। क्योंकि इस में अपनी माता से सत्यादि उच्च गुण और पिता से वीरतादि गुण प्राप्त होते थे इस कारण यह सूत सर्वदा विश्वासपात्र और महावीर माना जाता था इस हेतु इस को सर्वदा सारथि का कार्य्य सौंपाजाता था इस से बढ़ कर कोई विश्वास का कार्य्य नहीं। क्योंकि प्रतिक्षण क्या संग्राम में क्या गृह में सूत सारथि के हाथ में राजा का प्राण रहता है।

महाभारत और सूत पुत्रः—रामायण से बढ़ के महाभारत में "सूतजाति" की प्रतिष्ठा, गौरव, सम्मान देखते हैं। महाभारत में कहा गया है कि केवल चारों वर्णों के लोग ही नहीं किन्तु बड़े २ ऋषि और मुनि राजा और महाराज ब्राह्मण और मूर्ख सब कोई सूत पुत्र से महाभारत के समान उपदेश शिक्षा ग्रहण करते थे और बड़े प्रेम से सूतनन्दन को अपने से उच्च आसन पर

बैठा महाभारत की सारी कथा सुनते थे। जगत् में इस से बढ़ कर अन्य कोई प्रतिष्ठा नहीं होसकती। प्रथम आप लोग यह देखें कि जिस ने सम्पूर्ण महाभारत को ऋषि लोगों से कहा है वे सूत पुत्र थे या नहीं "विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः। महाभा० आदि० १। २॥ सूतपुत्र यथातस्य भार्गवस्य महात्मनः॥ आदि० ५। १२ लोमहर्पणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये। आ०प० १। १॥ निखिलेन यथा तत्त्वं सौते सर्वमशेषतः।" आ० १३। २॥ इत्यादि महाभारत के वचन से सिद्ध है कि जिसने महाभारत सुनाया है वह सूत वर्ण के अवश्य ही थे। यथार्थ में इनका नाम तो 'उग्रश्रवा' था परन्तु 'सूत' जाति के होने से इनको ऋषि लोग प्यार से सूत कहा करते थे। इन के पिता का नाम लोमहर्षण था यह साक्षात् सूत अर्थात् ब्राह्मण कन्या से क्षत्रिय कुमार थे। और जिस हेतु इसके पुत्र उग्रश्रवा थे इस कारण पिता के नाम से लौमिहर्षणि और सौति भी कहलाते थे। इसी हेतु कहीं 'सूतनन्दन' कहीं 'सूतपुत्र' कहीं 'सौति' कहीं 'सूत' कहीं 'लौमहर्षणि' इत्यादि पद आते हैं। इसी सूतपुत्र से शौनक आदि के समान बड़े २ ब्रह्मर्षि राजर्षि राजा महाराज सब कोई महाभारत कथा सुना करते थे। अब आप लोग विचार करें कि प्रतिलोम विवाह का कितना सत्कार था। यहां यह भी एक बात स्मरण रखनी चाहिये। इसी सूतजाति के ऊपर सम्पूर्ण इतिहास और पुराण लिखने का भार छोड़ा जाता था। इस हेतु इतिहास और पुराण सब ही सूत के लिखे हुए हैं।

पुराण और सूत—सकल अष्टादश पुराण इसी सूत ने सुनाये हैं। सर्व पुराण शिरोमणि श्रीमद्भागवत की सम्मति सुनिये "त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहताग्नयः। सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात्। ऋषयऊचुः। त्वयाखलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ। आख्यातान्यप्यधीतानि धर्म्मशास्त्राणि यान्युत" इत्यादि प्रथमस्कंध प्रथमाध्याय। एक समय सब ऋषि प्रातःकाल के हवनादिक कर्मों को समाप्त कर पूजित और सुखपूर्वक उपविष्ट सूत जी से यह आदर पूर्वक पूछने लगे। ऋषि लोग बोले हे अनघ सूत जी! आपने इतिहास पुराण आख्यान और धर्म्मशास्त्र पढ़े हैं। वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ वादरायण वेदव्यास और अन्यान्य मुनि लोग जो २ शास्त्र जानते हैं उन सबों को आप भी जानते हैं

इस हेतु आप कृपा कर हम लोगों से पवित्र पुराणों की वार्त्ता सुनावें इत्यादि। इस से सिद्ध है कि समस्त पुराणों के वक्ता सूत जी थे। परन्तु आज कल की गति देख मुझे अति शोक होता है क्योंकि यद्यपि आज कल के ब्राह्मण इनही पुराणों को पढ़ते इन को ही वेदवत् मानते इन के उपदेश पर चलते रात दिन इन को पढ़ के अपने को परम पवित्र समझते हैं तथापि प्रतिलोम विवाह के विरोधी हैं यह लीला देख मुझे शोक होता है। जिस हेतु आज कल अज्ञानी लोग इस विवाह के हक़ में नहीं हैं इस कारण उन अज्ञानी मनुष्यों की प्रसन्नता के लिये ये पण्डितंमन्यमान भी वैसे कहते कहाते। एवमस्तु। आप लोगों ने देख लिया कि प्रतिलोम विवाह की भी प्राचीन काल में बड़ी प्रशंसा थी।

भिन्न वर्णों में सम्बन्ध–इतिहास की समालोचना से यह निश्चय किया गया है कि एक वर्ण के दूसरे वर्ण में अर्थात् एक व्यवसायी के दूसरे व्यवसायी में विवाह सम्बन्ध होने से जो सन्तान होते हैं वे शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों बलों में अच्छे निकलते हैं। भारतवर्षीय इतिहास सूचित करते हैं कि जितने बड़े २ ऋषि वा मुनि वा विद्वान् वा शूरवीर हुए हैं उन में से बहुत से वे हुए हैं जिन की उत्पत्ति दो भिन्न २ वर्णों के योग से हुई है। सब से प्रथम वसिष्ठ और विश्वामित्र का ही उदाहरण लीजिए क्योंकि ये दोनों अत्यन्त प्राचीन ऋषि वेदों के हैं। इन दोनों की उत्पत्ति में बड़ी शङ्का है। वसिष्ठ को कोई वेश्या-पुत्र कोई कुछ कोई कुछ कहते हैं। विश्वामित्र को भी ब्राह्मण-बीज अथवा ब्राह्मणानुगृहीत कहते हैं। यही दशा परशुराम के विषय में भी है। ये तीनों बड़े महात्मा और बड़े योगीश्वर हुए हैं। साङ्ख्यशास्त्र के कर्त्ता कपिल जी भी ब्राह्मण पुत्र होने पर भी क्षत्रिय मनु जी के दौहित्र हैं। सर्वत्र यह प्रसिद्ध है कि श्री वेदव्यास जी कैवर्तकन्या से उत्पन्न हुए हैं। वेदतत्त्ववित् ऐतरेय महर्षि ब्राह्मण बीज से दासीपुत्र हैं। ऐलूष कवष की यही दशा है। धृतराष्ट्र पाण्डु, विदुर ये तीनों नियोग से हैं। इसी प्रकार युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों की कथा मानी जाती है। ऐसे २ शतशः महात्मा इतिहास में मिलेंगे। अन्त में राजा चन्द्रगुप्त के इतिहास का स्मरण दिला समाप्त करते हैं। इस को सब कोई स्वीकार करते हैं कि राजा महानन्द की एक दासी थी उस का नाम 'मुरा' था

और वह जाति की नाइन थी इसी से महाराज चन्द्रगुप्त हुए हैं। यह ऐसे प्रतापी राजा हुए हैं कि महाभाष्यकार पतञ्जलि भी इन की चर्चा करते हैं। इस से सिद्ध है कि भिन्न २ व्यवसायी का अपने से भिन्न २ व्यवसायियों में विवाह सम्बन्ध होना अच्छा है ! सत्य बात तो यह है कि सन्तानों को पूर्ण ब्रह्मचर्य्य रखवा के शारीरिक नियम के अनुसार उन से सदा व्यायाम करवावे और परीक्षा करवा के पश्चात् ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी जिस को जो पसन्द करे उस २ जोड़े में विवाह होना चाहिये जैसा कि हमारे आचार्य्य श्रीमद्दयानन्द जी लिख गए हैं। ब्रह्मचर्य्य की जितनी ही रक्षा होगी उतने ही बलिष्ठ सुयोग्य सन्तान होते हैं इस में सर्व शास्त्रकार सहमत हैं।

"स्पर्श दोष=परस्पर भोजन व्यवहार,,

वेदों का यह सिद्धान्त है कि जो अव्रती, अब्रह्मचारी, लम्पट, धूर्त, कितव, व्यसनी, मद्यादिसेवी, असत्यवादी, असद्-व्यवहारी, पिशुन, चोर, डाकू, क्रव्याद, छली, कपटी हैं और इस प्रकार के जो २ मनुष्य हैं वे निःसन्देह अपवित्र अशुद्ध हैं इन के साथ भोजनादि सम्बन्ध नहीं रक्खे। परन्तु चारों वर्णों में किसी वर्ण को अथवा आज कल की लोक-दृष्टि में जो नीच व्यवसायी माने जाते हैं उन सबों में से किसी भी नीच व्यवसायी को वेद अपवित्र वा अशुद्ध नहीं मानता न इन के साथ भोजनादि सम्बन्ध निषेध ही करता है। वेद कहता है "मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः" यास्काचार्य्य "शिश्नदेव" पद का अर्थ "शिश्नदेवाः अब्रह्मचर्य्याः" अब्रह्मचारी करते हैं। ऋचा का अर्थ यह है कि (शिश्नदेवाः) अब्रह्मचारी (नः+ऋतम्) हमारे यज्ञ में (मा) नहीं आवें। इस से सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य्यव्रत रहित पुरुष अपवित्र है। पुनः—

"सप्त मर्य्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासा मेका मिदभ्यंहुरोगात।"

इस ऋचा के व्याख्यान में यास्काचार्य्य कहते हैं-"सप्तैव मर्य्यादाः कवयश्चक्रुः। तासामेकामप्यभि गच्छन्नंहस्वान् भवति। स्तेय मतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापाणं दुष्कृतस्य कर्म्मणः पुनः २ सेवां पातके नृतोद्यम्।"

भाव यह है कि (कवयः) ब्रह्मवादी जन (सप्त+मर्य्यादाः) सात ही मर्य्यादाएं (ततक्षुः) स्थिर करते हैं (तासाम्+एकाम्+इद्+अभि) उन में से एक भी मर्य्यादा को जो ग्रहण करता है वह अवश्य ही (अंहुरः+अगात्) महा पापी हो जाता है वे सात मर्य्यादाएं कौन हैं ? इस पर यास्काचार्य्य कहते हैं (स्तेयम्) चोरी (अतल्पारोहणम्) परस्त्री गमन (ब्रह्महत्याम्) ब्रह्मविद् पुरुष की हत्या (भ्रूणहत्याम्) बालक गर्भादि हत्या (सुरापाणम्) मद्यपान (दुष्कृतस्यः कर्म्मणः पुनः सेवाम्) दुष्कर्मों का पुनः २ सेवन करना (पातके+अनृतोद्यम्) पातक करने पर भी मिथ्याभाषण करना । ये ही सात महापातक हैं । इसी के अन्तर्गत अन्यान्य पाप हो जाते हैं ।

उपनिषदों में ऋषि यही कहते हैं । 'स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् । ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरंस्तैरिति' ॥ छा० उ० ५ । १० । ६॥ हिरण्य का चोर (हिरण्य यहां उपलक्षणमात्र) मद्यपायी । गुरुतल्पगामी । ब्रह्मघाती । ये चार और इन चारों के साथ व्यवहार करने वाला ये पांचों पातकी हैं । मनु जी भी यही कहते हैं । "ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैःसह" मनु० ११ । ५४ । इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है कि वेदादिशास्त्र चोर डाकू मद्यपायी आदिक जनों को अशुद्ध मानते हैं । अतः इन के साथ भोजन करना भी महापातक है । परन्तु आजकल इस के विपरीत ही लोग आचरण करते हैं । इन महापातकों को कोई नहीं पूछता । बड़े २ मद्यपायी वेश्यागामी मिथ्यावादी पुरुषों के साथ भले प्रकार से व्यवहार करते हैं उन को अपवित्र नहीं समझते । अपवित्र समझते हैं किसी २ वर्ण को अर्थात् किसी २ व्यवसायजीवी को । परन्तु वेद कहीं भी किसी व्यवसायी को अपवित्र अस्पृश्य अभोज्यान्न अपेयपानीय नहीं कहता । किन्तु वेद यह कहता है:—

> **समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः ।**
> **समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । अथर्व ३ । ३० । ६**

ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! तुम सबों का (प्रपा) पानी पीने का स्थान (समानी) एक ही हो (वः+अन्नभागः+सह) तुम्हारा अन्न भाग अर्थात् भोजनादि व्यवहार साथ ही हो । ऐ मनुष्यो ! (समाने+योक्त्रे) समान

ही रस्सी में (वः+सह युनज्मि) तुम सबों को युक्त करते हैं। इस से सिद्ध है कि खान पान बैठना उठना आदि व्यवहार चारों वर्णों का एक ही होना चाहिए। पुनः—

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम्। ऋ० ६।१६।१२

(सखायः) हे सखाओ ! मित्रो ! (यूयम्+वयञ्च) आप और हम और (सूरयः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष सब कोई मिलकर साथ २ (पुरोरुचम्) सामने में स्थापित जो रुचिप्रद भात रोटी आदि अन्न है (तम्) उसे (अश्याम) खांय। "अश भोजने" वह अन्न कैसा है (वाजगन्ध्यम्) बलप्रद पुनः (वाजपस्त्यम्) बलदायक अनेक प्रकार के व्यंजनादि युक्त। यह मन्त्र विस्पष्टतया सहभोजिता का प्रतिपादक है। पुनः

ओदन मन्वाहार्य्यपचने पचेयुस्तं ब्राह्मणा अश्नीयुः॥
शतपथ ब्रा०२। ४। ३। १४॥

यज्ञ में पाक और भोजन का भी विधान आता है। यजमान के गृह पर प्रत्येक ऋत्विक् भोजन करते हैं। बड़े २ यज्ञों में राजाओं के तरफ से पाक के लिये सूद=पाचक नियुक्त किए जाते हैं वे दास होते हैं। ये विविध पाक बना के सब को खिलाते हैं। इस कारण शतपथ ब्रा० कहता है कि अन्वाहार्यपचन=जहां पर खाने के पदार्थ बनाए जाते हैं उस गृह और कुण्ड का नाम अन्वाहार्यपचन है। वहां पाक करें और उस को ब्राह्मण खांय। पुनः मधुपर्क प्रायः सब यज्ञ में होता है। इस में भी विविध अन्न बनाए जाते हैं। श्रौतसूत्र कहता है कि इस में भोजन के पश्चात् जो अनुच्छिष्ट ओदन (भात) रोटी आदि पदार्थ बच जांय वे किसी ब्राह्मण को देदेने चाहिये। यथाः— शेषं ब्राह्मणाय दद्यात्। लाट्यायनश्रौतसूत्र १। २। १०॥ शेष खाद्य पदार्थ ब्राह्मण को देदेवे। इस से विस्पष्ट है कि पूर्व समय में कच्ची पक्की रसोई का विचार नहीं था। प्रत्युत देखा जाता है कि ब्राह्मणों को पवित्र पका हुआ अन्न जहां कहीं से मिलता था ग्रहण कर लेते थे। पुनः भिक्षा में ब्राह्मणों को ओदन दिया करते थे यथाः—"ब्राह्मणाय बुभुक्षिताय ओदनं देहि स्नाताय अनुलेपनं पिपासते पानीयम्। निरुक्त दैवत-

काण्ड १।२.४ ॥ भूखे ब्राह्मण को ओदन दो, नहाए को अनुलेपन और प्यासे को पानी। अभी तक पञ्जाब देश में ब्राह्मण सब यजमान के गृह की पकी हुई रोटी दाल शाक भात सब कुछ खाते हैं ॥

निषाद जाति का अन्न=हम आप लोगों से कह चुके हैं कि आजकल निषाद जाति बहुत निकृष्ट मानी जाती है। परन्तु पूर्व समय में इस के हाथ के भी रोटी पानी सब कोई खाते पीते थे। जब श्री रामचन्द्र जी वन को जाते हुए निषाद से मिले हैं तब वह निषाद सब के लिये विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ ले आया है यथाः—"ततो गुणवदन्नाद्य मुपादाय पृथक् विधम्। अर्घ्यं चोपानय च्छीघ्रं वाक्यं चेदमुवाच ह। स्वागतंते महाबाहो तवेयमखिला मही। वयं प्रेष्याः भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः। भक्ष्यं भोज्यंच पेयंच लेह्यं चैतदुपस्थितम्। शयनानिच मुख्यानि वाजिनां खादनं तथा॥ बालकाण्ड ५१। ३७-४०। यहां चारों प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य भोजन का वर्णन है। यहां पर यह स्मरण रखना चाहिये इस समय सुमन्त्र आदि अनेक पुरुष रामचन्द्र के साथ थे। व्रत के कारण रामचन्द्र जी ने इस रात्रि को भोजन नहीं किया है परन्तु अन्यान्य सबों ने खाया पीया है। पुनः जब श्री रामचन्द्र जी शबरी के आश्रम में गए हैं तब इस ने पाद्य और आचमनीय आदि सब प्रकार का भोजन दिया है यथाः—"पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद् यथा विधि। अरण्यकाण्ड अध्याय ७४। श्लोक ७। पीने के लिये जो पानी दिया जाता है उसे आचमनीय कहते हैं। शबर आजकल मशहूर कोल भील निकृष्ट जाति का नाम है। शबर जाति की स्त्री होने के कारण 'शबरी' इस का नाम था। अब आप लोग स्वयं विचार करें कि पूर्व समय में छुआ छूत कहां तक था। **व्याधा का अन्न और ब्राह्मणः**—एक तपस्वी वेदविद् शास्त्री ब्राह्मण मिथिला देश के एक व्याध (कसाई= Butcher पशु पक्षी मारकर बेचने वाला) के गृह पर गए वहां वह उस व्याध के अन्न पानी को बराबर खाया पीया करते थे यथाः—"प्रविश्य च गृहं रम्यम् आसनेनाभि पूजितः। पाद्यमाचमनीयञ्च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः॥ वनपर्व अध्याय २०६। श्लोक १८॥ यहां हमने दो निकृष्ट जातियों के उदाहरण दिये। कहां निकृष्ट व्याध और कहां वेद विद् ब्राह्मण॥

सूद, सूपकार पाचक आदिः—क्या आप इस बात को नहीं जानते हैं कि जब बड़े २ अश्वमेधादि यज्ञ देश में हुआ करते थे जब देश २ के चारों वर्ण एकत्रित होते थे तब रसोई करने वाले कौन नियुक्त होते थे ? क्या आज कल के समान ही ब्राह्मण ही उस समय में भी नियुक्त होते थे ? क्या आज के समान ही सब कोई भिन्न २ अपना पाक करते थे ? क्या आपने कहीं भी ऐसा वर्णन पढ़ा या सुना कि ब्राह्मण लोग उन महान् यज्ञों में आकर अलग २ पाक किया करते थे। नहीं, महाशयो ! ऐसा कहीं नहीं। तब प्राचीन काल में पाक करने वाला कौन था ? सुनिये "आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा। उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं यथापुरा ॥ १९ ॥ महाभारत आश्रमवासि पर्व प्रथमाध्याय का १६ वां यह श्लोक है इससे सिद्ध है कि राजा के पाक करने को आरालिक, सूपकार, राग खण्डविक आदि पुरुष नियुक्त होते थे ये सब पाककर्ताओं के भेद है पुनः "सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवन शालिनः" उत्तर काण्ड रामायण अध्याय ६१। श्लोक २२। अश्वमेध के समय में श्री रामचन्द्र कहते हैं कि भरतजी अपने साथ सूद और सूद स्त्रियों को पाक के लिये ले जांय पुनः "स चिन्तयन्नधंराज्ञः सूदरूपधरो गृहे। भागवत ६। ६। २१ ॥ इत्यादि प्रमाणों से विदित होता है कि पाक करने वाले 'सूद' "आरालिक" इत्यादि नाम से पुकारे जाते थे। ये दास होते थे। येही बराबर रसोई बनाया करते थे। आगत ब्राह्मणादि वर्ण कदापि भी अपने २ हाथ से पाक नहीं किया करते थे। देखिये दशरथ महाराज के यज्ञ का वर्णन है कि "ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते। तापसा भुञ्जतेचापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥ १२ ॥ अन्नंहि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः ॥ १७ ॥ स्वलंकृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान् पर्यवेषयन् ॥ १८ ॥ इत्यादि बालकाण्ड अ० १४ में वर्णन है इस यज्ञ में ब्राह्मण तापस श्रमण आदि नाथ अनाथ सब ही खाया करते थे। ब्राह्मणादि स्वादु अन्न की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। अलंकृत हो सूद लोग ब्राह्मणों को परोसा करते। पुनः "ब्राह्मणान् भोजयामास पौरजानपदानपि" रामायण १। १८। २३ ॥ दशरथ ने ब्राह्मणों और पुरवासियों को भोजन खिलाया। महाभारत में भी अनेक स्थलों में इस की चर्चा आती है। यथा "चोष्यैश्च विविधैराजन् पेयैश्चबहुविस्तरैः ॥४॥ तर्पयामास विप्रेन्द्रान्" ॥ ५ ॥ सभापर्व अध्याय ४। चोष्य, लेह्य, पेय, भोज्य,

खाद्य आदि अनेक प्रकार की पक्की हुई रसोई (जिस को आज कल कच्ची रसोई कहते हैं) से युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को तृप्त किया पुनः 'पर्यवेषन् द्विजातींस्तान् सहस्रशोऽथ सहस्रशः ॥ ४१ ॥ विविधान्यन्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ॥ ४२ ॥ अश्वमेध पर्व अध्याय ८५ । महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध का वर्णन है। वे दासगण विविध खाद्य अन्न पानी ब्राह्मणों को परोसा करते थे । यहां 'अनुयायी' अर्थात् दास शब्द का साक्षात् प्रयोग है। हम कहां तक उदाहरण बतलावें आप स्वयं महाभारत पढ़ के देखें अनेक स्थलों में देखा जाता है कि ब्राह्मणगण सब वर्णों की रसोई खालिया करते थे। परन्तु आजकल केवल खाने पीने में ही लोगों ने धर्म्म मान रक्खा है यहां तक कि कोई २ पुरुष ऐसे अज्ञानी हैं कि छिपा कर पाक करते हैं यदि उसे कोई भिन्न वर्ण देखले तो उसे अपवित्र मान छोड़ देते हैं। कोई चौके में एक लकीर देदेते हैं यदि उस लकीर के अभ्यन्तर कोई हाथ भी रखदे तो वह चौका अशुद्ध माना जायगा। कोई २ अपनी स्त्री के हाथ का भी नहीं खाते। कैसी २ अज्ञानता की बात देश में फैली हुई है। उलटी बुद्धि लोगोंकी होरही है जो वास्तविक शुद्धि चाहिये वह तो विनष्ट हो गई। पाखण्ड जितना करता जाय उतना ही अज्ञानी जन उसे अच्छा मानते हैं।

संन्यासियों का खानपानः-विवेकि पुरुषो ! आप यह तो विचारो यदि खाने पीने में कोई पाप लगता तो संन्यासियों को भी लगना चाहिये। आप को मालूम है कि पका हुआ शुद्ध अन्न जिस गृह से संन्यासियों को मिलजाता है वे उसे विना जाति पांति के विचार से खा लेते हैं। यही एक प्राचीन व्यवहार देश में रह गया है। जैसे आजकल संन्यासीगण छुआ छूत नहीं मानते हैं केवल भक्ष्याभक्ष्य अन्न का विचार रखते हैं। किसी वर्ण के गृह का शुद्ध अन्न क्यों न हो वह ग्रहण करलेते हैं प्राचीन काल में सब आश्रमों सब वर्णों में ऐसा ही विचार था। अभी तक वैष्णव सम्प्रदाय में देखा जाता है कि जो कोई वैष्णव होजाते हैं वे परस्पर एक दूसरे के हाथ का खा पीलेते हैं चाहे वह कितनी ही नीच जाति का क्यों न हो।

द्विजातिः—आजकल के धर्म्मशास्त्रों में भी शूद्रों के पक्व अन्न ग्रहण करने का केवल निषेध पाया जाता है परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों द्विजाति-

नियों के परस्पर अन्न ग्रहण करने में कोई दोष नहीं बतलाता । परन्तु यहां तो यह अज्ञानता फैली हुई है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण भी सब कोई मिल कर एक दूसरे के हाथ की रोटी नहीं खांयगे इसी प्रकार मैथिल आदि सब ब्राह्मणों में व्यवहार है । पुनरपि देखिये ! बहुत द्विज कहते हैं कि शूद्र की बनाई हुई रोटी भात खाने से हम शूद्र होजांयगे । मैं कहता हूं कि तब ब्राह्मण की रोटी खाने से शूद्र ब्राह्मण क्यों नहीं बन जाता । यदि शूद्र ब्राह्मण नहीं बनता तब ब्राह्मण शूद्र कैसे होगा । क्या ब्राह्मण की रोटी में शूद्र को ब्राह्मण बनाने की शक्ति नहीं? क्या शूद्र की ही रोटी प्रबल है ? । इस पर कोई कहते हैं कि पर्वत पर से गिरने में देर नहीं लगती परन्तु चढ़ने में बहुत देर लगती है । मैं कहता हूं कि इसको आप ने गिरना कैसे मान लिया । क्या शूद्र की रोटी में कोई पाप लगा हुआ है कि आप को वह पकड़ लेगी । यदि कहो कि शूद्र अशुद्ध अपवित्र रहते हैं अतः इन से बनी हुई रोटी भी वैसी ही होगी । मैं कहता हूं कि तब शूद्र के हाथ से पानी भी मत पीजिये । पानी में तो और भी अशुद्धता आने की अधिक शङ्का है । और शूद्रों से कटवाना पिसवाना आदि कर्म्म भी छुड़वा लीजिये । और मैं कहता हूं कि शूद्र को आप ने अपवित्र कैसे मान लिया । पवित्र अपवित्र बनाना भी तो आपही के हाथ में है । उससे नित स्नान ध्यान पूजा पाठ करवाइये शुद्ध वस्त्र दीजिये । यदि व्यसनी विषयी है तो उस से व्यसन छुड़वा दीजिये। वह शुद्ध होजायगा तब उस को पाचक बना लीजिये । क्या द्विजों में वैसे नहीं हैं ? । हां पवित्र पाक बनाना चाहिये यह मैं भी स्वीकार करता हूं । पवित्रता वा अपवित्रता भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ के नियम से होती है । मनुष्यों को तो पवित्र अपवित्र बनाना अपने हाथ में है । भाइयो ! यह विचारने की बात है । जब स्वयं वेद शूद्र के हाथ से बनी हुई रोटी खाने का निषेध नहीं करते हैं तब आप क्यों पाप के भागी बनते हैं । आप के देश में जितने महा पुरुष वसिष्ठ विश्वामित्र याज्ञवल्क्य जनक राम कृष्ण रामानुज रामानन्द कबीर नानक गुरुगोविन्द राजाराममोहन केशवसेन और अन्त में वेदपारदृश्वा तत्त्वज्ञानी महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती हुए हैं वे इस प्रकारकी छुआ छूत नहीं मानते । इस कारण वेद कीओर देखो मनुष्यों से मत डरो । ईश्वर की आज्ञा वेद वाणी को स्वीकार करो ।

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि ।

बहुत आदमी कहते हैं कि यदि यहां के लोगों में स्पर्शास्पर्श विचार और इतना जाति पांति का बखेड़ा नहीं होता तो मुसलमान के समय में सब कोई भ्रष्ट होगए रहते इत्यादि। परन्तु मैं कहता हूं कि अपने में इस प्रकार यदि जाति पांति का झगड़ा ही नहीं रहता तो कदापि भी इस देश में यवनादि राजा नहीं आते जिस समय में यह बखेड़ा नहीं था उस समय में यहां के लोग सम्पूर्ण पृथिवी के राजे बने रहे। जब से यह परस्पर की फूट घृणा अन्याय्य-वर्ताव जात्यभिमान अविद्या आदि दुर्गुण चले तब से ही यह देश विनाश को प्राप्त हुआ। कोई अज्ञानी कहते हैं कि यह तो कलियुग का प्रभाव ही है कि सब कोई एकमय हो जायंगे तब ही तो कलंकी अवतार धर भगवान् सर्वनाश करेंगे मैं कहताहूं कि यह कलियुग का प्रभाव नहीं किन्तु सत्ययुग का प्रभाव है क्योंकि सत्ययुग में ऐसी ही व्यवस्था थी पीछे अनेक उदाहरण दिए गए हैं। देखो सब शास्त्र कहता है कि अभिमान त्यागो। परन्तु आप सब दुष्कर्म करते हुए केवल खाने पीने में मिथ्या अभिमान करते हो। शूद्रों के हाथ का पानी पीते हो पूरी खाते हो तब भात रोटी में कौनसी बात रह गई। आप यद्यपि रामकृष्णादिकों को अवतार मानते हो तथापि इन का क्षत्रिय शरीर भी साथ ही मानते हो क्योंकि स्वयं राम कृष्णादिक महापुरुषों ने ब्राह्मण और ऋषि आदिकों को बड़ी नम्रता से प्रणाम किया है जैसे आज क्षत्रिय करते हैं। फिर भोग लगाकर उच्छिष्ट (जूठा) क्यों खाते हो। देखो! किसी जाति में जो महात्मा होते हैं उन के समीप सब को शिर झुकाना ही पड़ता है। कबीर, नानक, गणिका आदि इस के उदाहरण हैं। कोई कहते हैं कि इस प्रकार के परिवर्तन से बड़ा ही गड़बड़ होगा। ब्राह्मणवंश शूद्र और शूद्रवंश ब्राह्मण बन जायगा? मैं कहता हूं ऐसा कदापि नहीं होना। जो ब्राह्मण हैं वे ब्राह्मण ही जो शूद्र हैं वे शूद्र ही रहेंगे। क्योंकि गुण ही मनुष्य को ब्राह्मण शूद्र बनाता है। परन्तु मैं एक बात और भी कहता हूं कि शूद्र को निकृष्ट नीच क्यों मानते हो वेद के अनुसार शूद्र अच्छे महावीर पुरुष को कहते हैं। यही भाव रक्खो। हां नीच को दस्यु वा दास कहते हैं। ऐ विवेकि पुरुषो! मनुष्यों को मनुष्य बनाने के लिये प्रयत्न करो! यही मेरा अन्तिम अनुशासन है। अब इस प्रसंग को समाप्त करो बड़ा शास्त्र विचार हुआ धारणा भी नहीं रहेगी और आप लोग अब

निःसन्देह भी होगए। ईश्वर के नाम पर इसी की ओर देख सब कार्य्य सम्पादन करो।

"सप्तम प्रश्न का समाधान"

(क) निश्चय कर्म्मानुसार सृष्टि हम भी मानते हैं और यह भी मानते हैं कि प्रथम सृष्टि में सब ही समान ही नहीं हुए। परन्तु जैसे चार भ्राताओं में यत् किञ्चित् भेद बना रहता है तद्वत् भेद उन में भी था। इस प्रकार हरेक गृह में चारों वर्णों के लोग हो सकते हैं। एक एक वंश को जो आप ब्राह्मण वा शूद्र कहते हैं यह नहीं हो सकता क्योंकि नीच से नीच गृह में कोई २ बालक बड़ा तीक्ष्ण निकलता है। शिक्षा होने पर वह उत्तम से उत्तम ब्राह्मण हो सकता है। बात यह है कि स्वाभाविक गुण रहने पर मनुष्यों में वर्ण व्यवस्था शिक्षा के ऊपर निर्भर है इस कारण वंश का वंश सर्वदा एक ही दशा में नहीं रह सकता पीछे बहुत कुछ कह चुके हैं विचारिये। ख+ग+घ इन तीनों का समाधान पृष्ठ ६१ से ७३ तक देखें। (ङ) जिस को आज कल आप ब्राह्मण वा क्षत्रिय वंश कहते हैं क्या उन में एक सी ही प्रवृत्ति आप देखते हैं क्या इन में कोई चोर धूर्त्त मूर्ख नहीं होते। आप जो पशु का उदारहण देते सो मनुष्य में नहीं घट सकता। क्योंकि लाखों यत्न से हाथी बैल नहीं होगा परन्तु शिक्षा के अभाव से वा कुसंग से ब्राह्मण केवल साधारण शूद्र ही नहीं किन्तु अस्पृश्य अव्यवहार्य त्रास बन जाता है और यह भी आप ध्यान रक्खें पशु में खाने पीने आदि के स्वाभाविक उदाहरण देते हैं परन्तु मनुष्य में कृत्रिम। पशु आदिक में जो जिस का खान पान वा क्रिया है वैसी प्रायः बाल्यावस्था से ही रहती है। जन्म से ही मछली तैरने लगती है। शूकर की जन्म से ही विष्ठा में प्रवृत्ति होजाती है। परन्तु मनुष्य में सब कुछ शिक्षा के अधीन है। आप स्वयं विचारें। (च) इसका समाधान पृष्ठ १४६ से २४६ तक देखें। इस प्रकार आप के सब प्रश्नों के समाधान विस्तार से कहे गये हैं परिशिष्ट में भी कुछ कहे जांयगे। हठ दुराग्रह पक्षपात छोड़ वेद शास्त्रों को यथाशक्ति अपने से ही देख भाल बारम्बार एकान्त स्थल में विचार अच्छे २ आप्त धार्म्मिक निष्कपट पुरुषों के संग शंका समाधान कर जो स्थिर हो उसे करना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य जन्म को सफलीभूत करने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये। इति चतुर्थ प्रकरणं समाप्तम्।

परिशिष्ट प्रकरण ।

अब मैंने बहुत कुछ आप लोगों से कह सुनाया। आप लोगों को भी अब कोई शङ्का बाकी नहीं रही। अब केवल दो चार बातें कह इस को समाप्त कर देना चाहता हूं। पृष्ठ ६१ से ७३ तक मैंने प्रमाण और युक्तियों से सिद्ध कर बतलाया है कि मनुष्य एक जाति है पशु पक्षी के समान इस में भिन्न २ जातिएं नहीं। पुनः मनुष्यों में अनेक वर्ण कैसे बने इस विषय में भी पृष्ठ १३६ से १४५ तक वर्णन किया है। बहुत आदमी कहते हैं कि मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न हुए हैं इस महती अविद्या की निवृत्ति के लिए १४६ से २४६ तक अर्थात् १०० से कुछ अधिक पृष्ठों में वर्णन किया है। पुनः स्मार्त शूद्र वा दास आदि विषय भी चतुर्थ प्रकरण में विस्तार से कथित हैं॥ आप लोगों से मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण व्यवस्था स्थापित कीजिए। आप लोग देखते हैं कि इस आर्य्यावर्त देश में कितनी जातिएं बनी हुई हैं। पुनः एक २ जाति में भी सैकड़ों भेद विद्यमान हैं। इस के परिणाम पर आप यदि ध्यान से विचार करेंगे तो नेत्रों से अश्रुप्रवाह चलने लगेगा। प्रथम तो जो कोल, भील, सन्थाल, खांद, गोंद ओरों आदि अनेक जातिएं हैं जो संख्या में लाखों हैं। इसी जाति पांति के बखेड़े में पड़ के आप इन को आर्य्य बनाने के प्रयत्न ही छोड़ बैठे। आप के आलस्य और अज्ञानता के कारण अभी तक वे बेचारे ईश्वरविमुख बने रहे। मनुष्य जन्म धारण का इन्हें कुछ भी फल प्राप्त नहीं हुआ। उन के श्रवण तक आप पवित्र वेद वाणी नहीं पहुंचा सके। कहिए! आप श्रेष्ठ होके इन का आपने क्या उपकार किया। इन को शिक्षा देने के लिए आपने कब ही प्रयत्न नहीं किया। ये विना कपड़े के विना अच्छे अन्न के जङ्गलों में टकराते रहे। आपकी दया ने इन का क्या उपकार किया। जानें दीजिए इन जङ्गली जातियों को। जो आप की सेवा में सदा तत्पर रहे उन के लिए आपने क्या किया। मुशहर, दुसाध, चूड़े, चमार नाई, धोबी, तेली, बारी, धानुक कु-

म्हार, जुलाहा आदिकों को और दासवर्गों को भी आपने उसी अवस्था में रख छोड़ा । इस आलस्य अथवा अज्ञानता का फल यह हुआ कि ये लोग प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी पूजने लगे मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, मिथ्या वस्तुओं में इन का अधिक विश्वास बढ़ता गया । इन के देवता इन के भजन भाव इन के पर्व तीर्थ आदि भी भिन्न २ हो गये । धोबी कुछ और ही राग अहीर कुछ और ही राग अलापते, अति जड़ बुद्धि हो के व्याघ्र, सिंह सर्प वृक्ष इत्यादिकों को ही महान् देव मान बलि देने लगे । इन में से अब शुद्धता शौच सत्यता आदि गुण निकल गये । परन्तु ये लोग आप के सहवासी थे । इस कारण इन के आचरण का प्रभाव आप के उत्तम वर्णों के ऊपर भी पड़ गया । उन्हीं चूड़े चमार नाई धोबी के समान आप भी परमात्मा को छोड़ कभी सांपों की कभी बैलों की, कभी पीपल आदि वृक्षों की, कभी श्मशानों की कभी, भूत प्रेतों की उपासना करने लगे । उन के ऊपर बकरे भैंस मार २ के चढ़ाने लगे । ब्राह्मण जन भी अपने शरीर पर भूत खेलने लगे । कहिए कैसा अधःपात हुआ; परन्तु आप में ऐसी अविद्या की बीमारी फैली कि आपका ज्ञान रूप शरीर इतना शून्य हो गया है कि इस गिरने से आप को चोट का भी ज्ञान नहीं हुआ । और न अभी तक आप को गिरने का कुछ पता ही लगा । पुनः आपने घृणा से म्लेच्छ समझ दस्यु बतला अपवित्र कह अन्य देशों में वा द्वीपों में जाना आना छोड़ दिया । इस का फल यह हुआ कि वेही लोग आप के शिर पर सवार हो गए उन के दास बनने पर भी आपको त्राण नहीं । कहिए भगवान् ने आप को कैसा दण्ड दिया । क्यों ! आपने बड़ा अन्याय किया ? अहङ्कार अभिमान ने आपको खालिया । आप अपने भाई की छाया पड़ने पड़ भी अपने को अपवित्र मानने लगे । इस का परिणाम यह हुआ कि जिन को आप परम म्लेच्छ कहते थे उन की ही जूती शिरों आप को ढोना पड़ा । इतना ही नहीं बल्कि आप के देश की परम पवित्र लक्षों कन्याएं उन यवनों के हाथ बिकीं और उन का धर्म नष्ट हुआ । और आप लक्षों करोड़ों पशुवत शिकार किए गए । मैं कहां तक वर्णन करूं मैं इतिहास लिखने के लिए तय्यार नहीं मैं केवल आप को चेताता हूं कि आप की इस घृणा ने इस जाति विभाग ने आप को यह ठोकर दी है । अब आप को होश होना भी कठिन है ।

परन्तु आशा है। एक स्वामी दयानन्द ने वेदों से ढूंढ के एक महौषध दी है यदि वह आप के कण्ठ तक पहुंच गई और आपने भी उसे निगलने के लिए थोड़ी भी कोशिश की तो आप बच सकते हैं। अन्यथा अब कोई उपाय नहीं। भाइयो! "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत"। मैं पुनः कई एक प्रमाण देता हूं जिस से विदित होगा कि धीरे २ जाति पांति बनती गई है और गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही लोग जाति मानते आये जन्म से नहीं।

ब्रह्म वा इदमग्र आसीद्। एकमेव तदेकं सन्नव्यभवत्। तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत क्षत्रम्। यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति तस्मात् क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद्ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये। क्षत्र एव

पूर्व समय में, निश्चय, सब यह ब्राह्मण ही था। एक ही था (अर्थात् एक ही ब्राह्मण वर्ण था) एकाकी होने के कारण उस की उन्नति नहीं हुई। तब उस ने अपने से भी बढ़कर एक श्रेष्ठ रूप को बनाया जो क्षत्रिय है। देवों में ये सब क्षत्र (क्षत्रिय) हैं। इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु और ईशान इति। इस हेतु क्षत्रिय से परे कोई (वर्ण) नहीं। इसी कारण राजसूय (यज्ञ) में क्षत्रिय के नीचे ब्राह्मण बैठते हैं (१) क्षत्र में ही उस यश को स्था-

(१) जब राजसूय यज्ञ होता है तब राजा को कहा जाता है कि तू हो ब्राह्मण है। तैत्तिरीय संहिता काण्ड १ प्रपाठक ८ अनुवाक १६ में इस प्रकार सम्वाद है। (राजा) ब्रह्मा३न्। (अध्वर्युः) त्वं राजन् ब्रह्मासि सवितासि सत्यसवः। (राजा) ब्रह्मा३न् (ब्रह्मा) त्वं राजन् ब्रह्मासि इन्द्रोसि सत्यौ (राजा) ब्रह्मा३न्। (होता) त्वं राजन् ब्रह्मासि मित्रोसि सुशेवः। (राजा) ब्रह्मा३न (उद्गाता) त्व राजन् ब्रह्मासि वरुणोसि सत्यधर्म्मा॥ भाव इस का यह है कि राजसूय यज्ञ में जब ऋत्विक् चारों तरफ बैठ जाते हैं। तब राजा प्रत्येक ऋत्विक् से इस प्रकार निवेदन करता है। प्रथम अध्वर्यु से राजा कहता यथा हे ब्रह्मा३न् (तीन का चिन्ह प्लुत सूचक है) हे ब्राह्मण अध्वर्यो॥ इतने कहने पर अध्वर्यु प्रत्युत्तर देता है कि हे राजन्! तू ही ब्राह्मण है। तू सविता असि अपनी आज्ञा से सब का प्रेरणा करने वाला है। और सत्यसव = अमोघ शासन तू है। इसी प्रकार अन्यान्य ब्रह्मा होता और उद्गाता ऋत्विकों से राजा कहता है कि आप ब्राह्मण हैं इसके प्रत्युत्तर में ऋत्विक् लोग कहते हैं कि हे राजन् आप ही ब्राह्मण हैं।

तद्यशो दधाति । सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्‌ब्रह्म । तस्माद् यद्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्तत उपनिश्रयति स्वां योनिम् । य उ एनं हिनस्ति स्वां स योनिमृच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेयांसं हिंसित्वा ॥ २३ ॥ स नैव व्यभवत् । स विश मसृजत । यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते–वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुतइति ॥ २४ ॥ स नैव व्यभवत । स शौद्रं वर्णमसृजत पूषण मियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च ॥ २५ ॥ स नवै व्यभवत् । तच्छ्रेयो रूप मत्यसृजत धर्म्मं तदेतत क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म्मः । तस्माद्धर्म्मात्परं नास्ति यथो अबलीयान् बलीयांसमाशंसते धर्म्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्म्मः सत्यं वै तत् तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्म्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति । एतद्धेवैतेदुभयं भवति ॥ २५ ॥ तदेतद् ब्रह्म क्षत्रं विट् शूद्रः । बृह० उप० ४ ॥

पित करते हैं । सो जो यह ब्राह्मण है वह क्षत्रिय का योनि (कारण) है । इस हेतु यद्यपि राजा परम श्रेष्ठता को पाता है तथापि अन्त में अपनी योनि (ब्राह्मण) के ही सम्यक् प्रकार से आश्रित होता है । सो जो कोई (क्षत्रिय) ब्राह्मण की हिंसा करता है वह अपनी योनि की हिंसा करता है वह पापिष्ठ होता है जैसे श्रेष्ठ पुरुष की हिंसा कर के मनुष्य पापी होता है ॥ २३ ॥ पुनः उस की वृद्धि नहीं हुई । उस ने वैश्य को उत्पन्न किया । देवों में ये गणसे वैश्य कहे जाते हैं । वसु, रुद्र, आदित्य विश्वेदेव और मरुत् । इति ॥२४॥ पुनः उस की वृद्धि नहीं हुई । उसने शूद्र वर्ण को उत्पन्न किया जो सब का पोषण करने वाला है । यह पृथिवी ही पूषा है । क्योंकि यही सब को पुष्ट करती है ॥ २५ ॥ उस की वृद्धि नहीं हुई उस ने सब से बढ़ कर श्रेयोरूप धर्म्म का निर्माण किया सो यह धर्म्म क्षत्रिय का भी क्षत्रिय है ! इस हेतु धर्म्म से परे कुछ नहीं है क्यों कि इस धर्म्म से दुर्बल (पुरुष) बलवान् का मुकाबिला करता है । जैसे राजा की सहायता से वैसे । निश्चय, धर्म्म सत्य है । इस हेतु ज्ञानी जन 'सत्यवक्ता को' धर्म्मवक्ता कहते हैं और 'धर्म्म वक्ता' को 'सत्य वक्ता' कहते हैं, यह दोनों प्रकार से होता है इसप्रकार ब्रह्म, क्षत्र विट् और शूद्र हुए । यहां पर कैसा विस्पष्ट वर्णन है कि पूर्व में एकही ब्राह्मण वर्ण था क्योंकि सृष्टि की आदि से धीरे २ व्यवसाय (Profession) की उन्नति होती आई है । ज्यों ज्यों मनुष्य और मनुष्य

ब्रह्म क्षत्रिय वैश्य शूद्रा इति चत्वारोवर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम किं जीवः किं देहः किं जातिः किं कर्म्म किं धार्म्मिक इति। तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैकरूपत्वाद् एकस्यापि कर्म्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति। तर्हि देहो ब्राह्मण इतिचेत्तन्न आचाण्डालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वात् जरामरणधर्म्माधर्म्मादिसाम्यदर्शनाद् ब्राह्मणः श्वेतवर्णः

की आवश्यकताएं बढ़ती गईं त्यों त्यों ऋषियों ने वेदों को देख २ वर्ण बनाते गये।

वज्र सूचिकोपनिषद्—अब आगे वज्रसूची उपनिषद् का प्रमाण देते हैं यद्यपि इस को उपनिषद् नहीं कहनी चाहिये और यह बहुत आधुनिक है तथापि यह भी कुछ २ वैदिक सिद्धान्त के निकट पहुंचती है अतः इस की साक्षी देते हैं। मैंने अनेक स्थलों में कहा है कि उस गिरे समय में भी जन्म से वर्णव्यवस्था को अच्छे २ विद्वान् नहीं मानते थे। इस का यह एक उदाहरण है।

अर्थः—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इन में ब्राह्मण ही प्रधान है इस को वेदानुकूल स्मृतिएं भी कहती हैं। वहां यह वक्तव्य है कि "ब्राह्मण" किस को कहते हैं। क्या जीव, क्या देह, क्या जाति, क्या ज्ञान, क्या कर्म्म, क्या धार्म्मिक (ब्राह्मण) है। यदि प्रथम यह कहो कि 'जीव' ब्राह्मण है तो यह नहीं। क्योंकि अतीत (व्यतीत) और अनागत (भविष्यत आने वाले) अनेक शरीरों में जीव का स्वरूप एक ही रहता है। एक ही जीव कर्म्मवश अनेक देहों में जाता है परन्तु सर्व शरीर में जीव का एक ही स्वरूप रहता है इस हेतु जीव ब्राह्मण नहीं। तब यदि यह कहो कि देह ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि चाण्डाल पर्य्यन्त सब मनुष्यों का देह पांच भौतिक होने के कारण एकरूप है क्योंकि वृद्धावस्था, मरण और धर्म्माधर्म्म सब शरीर में बराबर है। यदि कहो कि ब्राह्मण श्वेत वर्ण, क्षत्रिय रक्त वर्ण, वैश्य पीत वर्ण और शूद्र कृष्ण है तो यह कहना उचित नहीं क्योंकि यह नियम सर्वत्र नहीं देखता (काश्मीर के सब शूद्र श्वेत ही हैं, और यदि देह को ही जीव मानोगे

क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्णः इतिनियमाभावात् । पित्रादि-शरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादोषसंभवाच्च । तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति तर्हि जाति ब्राह्मण इति चेत्तन्न। तत्रजात्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति ऋष्यशृंगोमृग्यः । कौशिकःकुशात् । जाम्बूकोजम्बूकात् । बाल्मीकिर्बल्मीकात् । व्यासः कैवर्तकन्यकायाम्। शशपृष्ठात् गौतमः। वसिष्ठ उर्वश्याम् अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतत्वात्। एतेषां जात्या विना प्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयः बहवः सन्ति तस्मान्न जातिर्ब्राह्मण इति । तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इतिचेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपि परमार्थ-दर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति । तर्हि कर्म्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचिताऽऽगामिकर्म्म-साधर्म्यदर्शनात् कर्म्मभिः प्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति । तस्मान्न कर्म्म ब्राह्मण इति । तर्हि धार्म्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न क्षत्रियादयो हिरण्यदातारो बहवः सन्ति ।तस्मान्न धार्म्मिको ब्राह्मण इति ।

तो मृत पिता माता आदिकों के शरीर जलाने पर पुत्र को ब्रह्म हत्या लगनी चाहिये । इस कारण देह ब्राह्मण नहीं । तब यदि यह कहो कि जाति ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि विजातीय जन्तुओं में अनेक जात्युत्पन्न बहुत ऋषि विद्यमान हैं जैसे हरिनी से ऋष्यश्रृंग, कुश से कौशिक, शृगाल से जम्बूक, वल्मीक (चीटियों की बनाई हुई मिट्टीका ढेर) से वाल्मीकि, मल्लाह की कन्या से व्यास, शशक (खरगोश) से गौतम । उर्वशी से वसिष्ठ । कलश (घड़े) से अगस्त्य उत्पन्न हुए । इत्यादि ऋषियों की कोई जाति नहीं परन्तु वे लोग वेदों के द्रष्टा हुए । इस हेतु जाति ब्राह्मण नहीं । तब यदि कहो कि ज्ञान ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि क्षत्रिय आदि परमार्थदर्शी विद्वान् अनेक विद्यमान हैं । इस कारण ज्ञान ब्राह्मण नहीं । यदि कहो कर्म्म ब्राह्मण तो यह भी नहीं । क्योंकि सब प्राणियों के प्रारब्ध संचित और आगामी ये तीनों कर्म्म समान ही हैं और कर्म्मों से ही प्रेरित हो सब जन्तु कर्म्म करते हैं इस हेतु कर्म्म ब्राह्मण नहीं । यदि कहो कि धार्म्मिक ब्राह्मण है तो यह भी नहीं क्योंकि क्षत्रियादि हिरण्य दाता अनेक हैं । इस हेतु धार्म्मिक ब्राह्मण नहीं ।

तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम । यः कश्चिदात्मान मद्वितीयं जातिगुणक्रियाहीनं षड़ूर्मिषड्भावेत्यादिसर्वदोषरहितं सत्यज्ञानाऽऽनन्दानन्तस्वरूपं स्वयंनिर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्तमानमन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूत मखण्डानन्दस्वभाव मप्रमेय मनुभवैकवेद्य मपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसम्पन्नो भाव, मात्सर्य्य, तृष्णा,ऽऽशा, मोहादिरहितो दंभ, हंकारादिभिरभिसंस्पृष्टचेता वर्तते। एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः । अन्यथा हि ब्राह्मणत्वासिद्धि र्नास्त्येव ॥ इति वज्रसूचिकोपनिषत्समाप्ता ॥

तब ब्राह्मण कौन हैं ? जो कोई अद्वितीय, जाति-गुण-क्रिया हीन, षडूर्मिषड्भाव इत्यादि जो निखिल दोष हैं उन से रहित, सत्यज्ञानाऽऽनन्द स्वरूप, स्वयं निर्विकल्प, अशेष कल्पाधार, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तर्यामी होकर वर्तमान, आकाशवत्, अन्तर बाहर अनुस्यूत (प्रविष्ट) अखण्डानन्द स्वभाव, अप्रमेय, अनुभवैकवेद्य, और साक्षात् सर्वत्र भासमान परमात्मा को करतलगत आमलक के समान साक्षात् कर के कृतार्थ है । काम-रागादि-दोष रहित, शमदमादि-सम्पन्न, भाव-मात्सर्य-तृष्णा आशा मोहादिकों से रहित, दम्भ अहंकारादि से असंस्पृष्टमन वाला जो है वही ब्राह्मण है। यही श्रुति, स्मृति, इतिहास का अभिप्राय है । अन्यथा ब्राह्मणत्व सिद्धि नहीं हो सकती ।

महाभारत—हमें कहना पड़ता है कि महाभारत रामायण आदिक प्राचीन ग्रन्थ भी वेदों के तत्त्वों को ठीक वर्णन नहीं करते किसी २ विषय में तो वेदों से बहुत दूर चले गए हैं जब मनुस्मृति ही वेद के अर्थ को अच्छे प्रकार नहीं बतलाती तब महाभारतादि ग्रन्थों से क्या आशा हो सकती है । प्रायः महाभारत मनुस्मृति के समान ही अधार्म्मिक शौचाचार-परिभ्रष्ट अव्रती पुरुष को शूद्र कहता है परन्तु यह वेद विरुद्ध बात है पुनः क्षत्रिय वैश्यों को भी गिरे हुए कहता है यह भी वेद विरुद्ध है इत्यादि अनेक दोष रहने पर भी किसी २ अंश में वेद के निकट पहुंचता है इस हेतु इन के भी कई एक प्रमाण दिए गए हैं और ये दिए जाते हैं इन पर आप ध्यान देवें ।

भृगुरुवाच ! असृजद् ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्। आत्मतेजोऽभिनिर्वृत्तान् भास्कराग्निसमप्रभान् ॥ १ ॥ ततः सत्यञ्च धर्म्मञ्च तपो ब्रह्म च शाश्वतम्। आचारञ्चैव शौचञ्च स्वर्गाय विदधे प्रभुः ॥ २ ॥ देव, दानव, गन्धर्वा, दैत्याऽसुर, महोरगाः। यक्ष, राक्षस, नागाश्च, पिशाचा मनुजास्तथा ॥३॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम। ये चान्ये भूत संघानां वर्णास्तांश्चापि निर्म्ममे। ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियानान्तु लोहितः। वैश्यानां पीतको बर्णः शूद्राणामासितस्तथा ॥५॥ भरद्वाज उवाच। चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते। सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसङ्कर: ॥ ६ ॥

महाभारत शान्तिपर्व में भृगु और भरद्वाज सम्वाद आया है। भृगुजी कहते हैं कि प्रथम सर्वगुणसम्पन्न, सात्त्विकमूर्त्ति ब्राह्मणों को ही भगवान् ने सृष्ट किया। यह उचित है कि सृष्टि की आदि से छल, कपट, काम, क्रोध, चोरी, डकैती लूट मार ईर्ष्या द्वेष आदि अवगुण न होने से जो उत्पन्न हुए वे बड़े शुद्ध रहे जैसे सनक सनन्दन आदि। क्योंकि उन शुद्ध मूर्तियों में भगवान् ने सत्य, धर्म्म, तप, वेद, आचार, शौच, आदि सब गुण दिये। पश्चात् इन मनुष्यों में गुण के अनुसार देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महोरग, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि होने लगे। पश्चात् धर्म्म-रक्षा के लिये आवश्यकता हुई तब वेदों को देख मनुष्यों को ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चार भागों में विभक्त किया। ब्राह्मण का शुक्ल वर्ण, क्षत्रिय का लाल वर्ण, वैश्य का पीत वर्ण और शूद्र का कृष्ण वर्ण स्थिर किया। (१) इस पर भरद्वाज जी पू-

(१) यहां श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण उन चार शब्दों का रंगों से तात्पर्य्य नहीं है क्योंकि यदि रंग से तात्पर्य्य हो तो काश्मीर और शीत प्रदेश के सब कोई ब्राह्मण ही कहलावें क्योंकि उन सबों का रंग श्वेत (सुफ़ेद) ही होता है। भाव इस का यह है कि 'श्वेत' शब्द सात्विक गुणवाचक है आज कल भी यश धर्म्म आदि का वर्णन 'श्वेत' आता है। सो जो कोई श्वेत अर्थात् शुद्ध निष्कलङ्क मलिनता रहित ज्ञान विज्ञान रूप श्वेत वस्त्र से आच्छादित हैं वे ब्राह्मण। रक्त (लाल) शब्द वीरता सूचक है। जब शूरवीर संग्राम में जाते हैं तब उन की आंखें लाल हो जाती हैं। शरीर रक्त से भर जाता है सो जो कोई निर्भीक वीरतारूप रक्तवर्णों से पूर्ण हैं वे क्षत्रिय। पीत शब्द

कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः । सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ७ ॥ स्वेद, मूत्र, पुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् । तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ८ ॥ जङ्गमानामसंख्येया स्थावराणाञ्च जातयः । तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः ॥ ९ ॥ भृगुरुवाच । न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् । ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १० ॥ काम भोग प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः । त्यक्तस्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्तेद्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ ११ ॥ गोभ्योवृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः । स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥ १२ ॥

पूछते हैं कि आपका वर्ण से क्या अभिप्राय है ?। यदि श्वेत पीत रंग को आप कहते हैं तो सर्व ब्राह्मणादिक वर्णों में गड़ बड़ होगा । ब्राह्मण होने पर भी कोई रंग में कृष्ण है कोई देखने में पीत है । फिर यह व्यवस्था कैसे ? पुनः काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, श्रम आदि सब में देखते हैं फिर वर्ण विभाग कैसे ? स्वेद, मूत्र, पुरीष, श्लेष्मा, पित्त, शोणित आदि सब के शरीर से समान ही निकलता है फिर वर्ण विभाग कैसे ? जंगम और स्थावर असंख्य हैं इनका वर्ण विभाग कैसा हो सकता है । यह भरद्वाज का प्रश्न बड़ा ही रोचक है । इसका समाधान भी यथोचित है । भृगु जी कहते हैं । इनका अभिप्राय यह है कि पहले ही मैं कह चुका हूँ कि पहले कोई वर्ण विभाग नहीं था सब ही सत्त्व गुण प्रधान ब्राह्मण ही थे । व्यावहारिक आवश्यकताएं बढ़ने पर वे भिन्न २ वर्ण होने लगे । उन्हीं ब्राह्मणों से जो कर्मप्रिय, भोगी, तीक्ष्ण, क्रोधी, साहसी, ब्राह्म धर्म्म से कुछ गिरे हुए और युद्ध प्रिय हुए वेही क्षत्रिय कहलाने लगे । जो ब्राह्मण गो-सेवा कृषिकर्म्म वाणिज्य में अपने धर्म्म छोड़ तत्पर हुए वे वैश्य

व्यापार वाणिज्य सूचक है क्योंकि सुवर्ण का रंग पीला होता है और सुवर्ण व्यापार का मुख्य अङ्ग है इस हेतु वैश्य के लिये पीत वर्ण कहा है सो जो कोई सुवर्ण आदि पदार्थों का वाणिज्य करता है वह वैश्य है । 'कृष्ण' (काला) शब्द यहां अधर्म्म सूचक है इसी हेतु अधर्म का रूप ही कृष्ण कहा गया हैं सो जो कोई अशुद्ध अपवित्र मलिन अज्ञान रूप मलिनता से भरे हुए हैं वे शूद्र । यही अभिप्राय भरद्वाज के प्रश्न के समाधान से विस्फुट होता है मूल में देखिये ।

हिंसाऽनृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः । कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टा स्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १३ ॥ इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः । धर्म्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥ १४ ॥ इत्येते चतुरोवर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती । विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणा ब्रह्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति । ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः । तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः ॥ १७ ॥ पिशाचा राक्षसा प्रेता विविधा म्लेच्छ जातयः । प्रनष्टज्ञान विज्ञानाः स्वच्छन्दाचार चेष्टिताः ॥ १८ ॥ शान्तिपर्व १८८ ॥

भरद्वाज उवाच । ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम । वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतांवर ॥ १ ॥

कहलाने लगे । जो ब्राह्मण हिंसक मिथ्यावादी लोभी सर्व कर्मोपजीवी और शौचादि विवर्जित हुए वे शूद्र कहाने लगे । इस प्रकार ब्राह्मण ही व्यस्त होकर चारों वर्ण हुए इन चारों को धर्म्म और यज्ञकर्म्म करने में सम ही अधिकार है । पुनः भृगु जी कहते हैं हे भरद्वाज ! इस प्रकार ये चारों वर्ण सृष्ट हुए जिन चारों ही के लिये ब्राह्मी सरस्वती अर्थात् वेद वाणी भगवान् ने दी है परन्तु ये लोभ मोह ईर्षा से स्वयं अज्ञानी बन रहे हैं । जो ब्राह्मण वेदों को व्रत और नियमों को धारण किए हुए हैं उनका तप नष्ट नहीं होता ॥ १६ ॥ हे भरद्वाज ! सब मनुष्यों के लिये वेद ही परम तप और पावन है जो उसको नहीं जानते हैं वे ही अद्विज अर्थात नीच व्रात्य हैं । इन्हीं अद्विजों के अनेक भेद इधर उधर जातिएं देख पड़ती हैं ॥ १७ ॥ इन में से ही पिशाच राक्षस, प्रेत, म्लेच्छ आदिक अनेक जातिएं हैं ॥ १८ ॥

इस लेख से भी आपको विदित हो गया होगा कि पूर्व में केवल एक ही वर्ण था धीरे २ कर्म के वश अनेक वर्ण बनते गए । यहां बहुत स्पष्ट वर्णन है कि साथ ही चारों वर्ण उत्पन्न नहीं किए गए किन्तु ज्यों ज्यों आवश्यकताएं बढ़ती गईं त्यों त्यों बुद्धिमानों ने अनेक वर्ण बनाना आरम्भ किया ।

पुनः भरद्वाज जी कहते हैं कि हे भृगो ! किस कर्म्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र होते हैं ॥१॥ भृगु जी कहते हैं जो जातकर्म्मादि संस्कारों से संस्कृत,

भृगुरुवाच । जातिकर्म्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः । वेदाध्ययन सम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः ॥२॥ शौचाचारावस्थितः सम्यग् विघसाशी गुरुप्रियः । नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥३॥ सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा । तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥४॥ क्षत्रजं सेवते कर्म्म वेदाध्ययनसंगतः । दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ५ ॥ विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः । वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥६॥ सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्म्मपरोऽशुचिः । त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥७॥ शूद्रे चेतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते । न वै शूद्रो भवे च्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो नच ॥ ८ ॥ शान्तिपर्व १८९ ॥
द्वन्द्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः॥ परेषा मननुध्यायंस्ते देवा ब्राह्मणं विदुः ३२ येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या । गतिज्ञः सर्वभूतानां तें देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३३॥ अभयं सर्व भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः । सर्व भूतात्मभूतो यस्तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥ शान्ति २६८ ॥

शुचि है वेदाध्ययन में रत, छवों कर्म्मों में तत्पर॥२॥ शौचाचार में स्थित विघसाशी, गुरुप्रिय, नित्यव्रती, सत्यप्रिय है वही ब्राह्मण कहलाता है॥३॥ सत्य दान, अद्रोह आनृशंस्य त्रपा, घृणा, तप आदि सद्गुण जिस में हैं वही ब्राह्मण है ॥४॥ जो पुरुष क्षात्र कर्म्म को सेवता है । वेदाध्ययन में भी तत्पर है । दान आदान (ग्रहण) में जिस की रुचि है वही क्षत्रिय है॥५॥ जो वाणिज्यार्थ नाना देश में जाता आता है जो पशुओं को पालते कृषि कर्म्म करते हुए वेदाध्ययन में भी आसक्त है वही वैश्य है ॥ ६ ॥ सर्वभक्षी सर्वकर्म्म-परायण अशुचि वेदरहित अनाचारी है वही शूद्र है ॥७॥ अब आगे विस्पष्ट रूप से उपसंहार करते हैं कि जो लक्षण ब्राह्मण के कहे गए हैं वे तो शूद्र में पाए जांय और जो लक्षण शूद्र के कहे गये हैं वे यदि ब्राह्मण में पाए जायं तो वह शूद्र शूद्र नहीं वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं अर्थात् वह शूद्र तो ब्राह्मण है और वह ब्राह्मण शूद्र है॥८॥इस से भी कर्म्मानुसार ही वर्ण की सिद्धि होती है ।

देव लोग उस को ब्राह्मण जानते हैं जो सुख दुःख शीत उष्ण आदि सब द्वन्द्व में समान भाव से स्थित रखते हैं दूसरों का अनिष्ट चिन्तन नहीं करते॥३२॥

क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम। यः क्रोधमोहौत्यजति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३२ ॥ यो वदेदिह सत्यानि गुरुं संतोषयेत च । हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्रा० ॥ ३३ ॥ जितेन्द्रियो धर्मरतः स्वाध्याय निरतः शुचिः। कामक्रोधौ वशे यस्य तंदेवा ब्रा० ॥ ३४ ॥ यस्य चात्मसमो लोको धर्मज्ञस्य मनस्विनः। सर्वधर्मेषु च रतस्तं देवा ब्रा० ॥ ३५ ॥ योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयेत वा। दद्याद्वापि यथाशक्ति तं देवा ब्रा० ॥३६॥ ब्रह्मचारीच वेदान् योऽप्य धीयीत द्विजपुंगवः। स्वाध्यायेचाप्रमत्तो वै तं देवा ब्रा० । इत्यादि। वनपर्वअ० २०६

जिसने यह सब जाना जो प्रकृति विकृति है और जो सब भूतों की गति जानता है उस को देव लोग ब्राह्मण जानते हैं ॥३३॥ जो सब को अभय देता है जिस से सब को अभय है । जो सर्व प्राणियों का आत्म समान है उस को देव लोग ब्राह्मण जानते हैं ॥३४॥इसी भाव को महाभारत अन्यत्र भी वर्णन करता हैयथा–

एक पतिव्रता स्त्री ब्राह्मण से कहती है कि मनुष्यों के इस शरीर में क्रोध महान् शत्रु है । हे द्विजोत्तम ! जो क्रोध मोह को त्यागता है उस को देव ब्राह्मण जानते हैं ॥ ३२ ॥ जो सत्य कहता है गुरु को संतुष्ट करता है । हिंसित होने पर भी हिंसा नहीं करता है उस को देव ब्रा० ॥३३॥ जितेन्द्रिय धर्म्मरत, स्वाध्यायनिरत, शुचि है और काम क्रोध जिस के वश में है उस को देव ब्रा० ॥३४॥ जो अपने सम सब को देखता है । धर्म्मज्ञ और मनस्वी है । सर्व धर्म्म में रत है उस को देव ब्रा० ॥३५॥ जो पढ़ता पढ़ाता स्वाध्याय में अप्रमत्त रहता उस को देव ब्रा० ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

वन पर्व के १८० अध्याय में यह प्रसंग आया है कि नागराज युधिष्ठिर से पूछता है कि "ब्राह्मणः को भवेद्राजन्" ॥२०॥ हे राजन् ! ब्राह्मण कौन है ? इस के उत्तर में युधिष्ठिर कहते हैं। "सत्यं दानं क्षमा शील मानृशंस्यं तपो घृणा। दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ २१ ॥ जिस पुरुष में सत्य, दान, क्षमा, शील, आनृशंस्य, तप, घृणा हो वही ब्राह्मण है । पुनः नागेन्द्र पूछता है कि "शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एवच । आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥ हे युधिष्ठिर ! सत्य, दान, अक्रोध, आनृशंस्य, अहिंसा और

घृणा आदि सद्गुण शूद्र में भी पाए जाते हैं फिर उन्हें क्या कहना चाहिए। इस पर युधिष्ठिर कहते हैं कि सत्यादि गुण शूद्र में पाए जाते हैं तो निःसन्देह वह शूद्र ब्राह्मण है। यथा—

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेद् शूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥ २५॥

इस का अर्थ पूर्व कर आये हैं। भाव यह है कि शूद्र में सत्यादि गुण हों परन्तु ब्राह्मण में न हो तो वह शूद्र शूद्र नहीं वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं अर्थात् वह शूद्र तो ब्राह्मण है और वह ब्राह्मण शूद्र है। पुनः कहते हैं "यत्रैतद् लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः। यत्रैतन्नभवेत् सर्प स शूद्रमिति निर्दिशेत्॥ २६॥ हे नागेन्द्र! जिसी में वे सत्यादि गुण हों वही ब्राह्मण और जिस में न हों वही शूद्र है। इस से भी सिद्ध है कि गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण है। आगे पुनः विस्पष्ट रूप से कहा है कि "तावच्छूद्र समो ह्येष याव द्वेदे न जायते॥ ३५॥ जब तक वह वेद नहीं जानता तब तक शूद्र ही है। ऐसे ही अनेक स्थलों में गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण व्यवस्था को भारत मानता है। इन प्रमाणों में कहीं भी जन्म से वर्ण मानते हुए महाभारत को नहीं देखते हैं।

गीता आदि—गीता, वाल्मीकि रामायण मनुस्मृति आदि जितने सच्छास्त्र हैं वे कर्म्म से वर्ण स्थिर करते हैं। "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"। श्री कृष्ण कहते हैं कि गुण कर्म्मों के विभाग से ही ईश्वर ने चारों वर्ण बनाए। "अमरेन्द्र मया बुध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो। एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः" रामायण उत्तरकाण्ड॥ इस से भी यही सिद्ध है कि प्रथम एक ही वर्ण था धीरे २ कर्मानुसार अनेक वर्ण होते गए। भागवत कहता है कि "एकविधो नृणाम्" मनुष्य में एक ही भेद है। सांख्यशास्त्र कहता है "मानुष्यश्चैकविधः" मनुष्य एक ही प्रकार का है। इत्यादि सहस्रशः प्रमाणों को निरादर कर वेदों को त्याग आप भले ही कह सकते हैं कि वर्ण जन्म से है।

पशु और वृक्षादिकों में वर्ण—इस विषय पर यदि ध्यान देवें तो भी मालूम हो जायगा कि कर्मानुसार ही वर्ण व्यवस्था है। गो, भैंस, हाथी, घोड़े,

गदहे, मृग, हरिण, सिंह आदिक पशुओं में भी कुछ कुछ गुण की समता देख इन में भी चारों वर्ण कहते हैं देखिए "रासभमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोसि" पारस्करगृह्यसूत्र। यहां पर रासभ अर्थात् गदहे को शूद्र कहते हैं। क्योंकि बोझ ढोना आदि कर्म्म इस का शूद्र समान है इसी प्रकार गो जाति को ब्राह्मण सिंह को क्षत्रिय कहते हैं। आप देखते हैं कि ये सब न तो पैर से और न मुखादिक से उत्पन्न किये गए हैं फिर ये पशु शूद्र वा क्षत्रिय आदि क्यों कहलाते हैं? निःसन्देह मनुष्य गुण की समानता के कारण ही इन को शूद्रादि कहते हैं। इसी प्रकार वृक्षों में पुराण वर्ण मानता है। पुनः अभी आपने बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रमाण में देखा है कि इन जड़ अग्नि, वायु, वज्र विद्युत मेघ आदि में क्षत्रिय शूद्र आदि कहा गया है। क्योंकि वज्र क्षत्रियवत् लोगों को कंपा देता है और ईश्वर की महतीशक्ति का स्मरण करवा देता है अतः वह क्षत्रिय है इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र में सूर्य्य चन्द्र आदि नवों ग्रहों में भी ब्राह्मणादिक मानता है उस के फल के अनुसार किसी को ब्राह्मण किसी को शूद्र कहा है। पुनः ज्योतिष की एक बात पर ध्यान देवें। ज्योतिष कहता है कि अमुक २ नक्षत्र में जन्म होने से जातक (सन्तान) ब्राह्मण वर्ण होता है। अमुक २ नक्षत्र में जन्म से शूद्र वर्ण होता है इत्यादि। यद्यपि वह बालक ब्राह्मण का ही पुत्र क्यों न हो परन्तु शूद्र नक्षत्र में जन्म लेने से उस का वर्ण शूद्र ही होगा इसी प्रकार शूद्र के गृह में वह बालक क्यों न उत्पन्न हुआ हो परन्तु ब्राह्मण नक्षत्र में जन्म होने से उस बालक का वर्ण ब्राह्मण माना जायगा। क्यों ऐसा माना है?। निःसन्देह गुणों से ही यहां पर वर्ण व्यवस्था बांधी है। हे विद्वानो! आप लोग स्वयं विवेकी पुरुष हैं इसे पुनः विचारें।

उपसंहार—मनुष्य बुद्धिमान् होता है। परमात्मा ने बड़ी कृपा कर इस में बड़े २ गुण स्थापित किए हैं। पृथिवी रूप कुसुम वाटिका का रक्षक इसी को बनाया है अपनी अगम्य विभूति का परिज्ञाता वा द्रष्टा वा परीक्षक भी इसी को बनाया है इत्यादि बातों में सन्देह नहीं परन्तु मनुष्य अपने ही हाथ से उन अमूल्य ईश्वरप्रदत्त गुण रत्नों को फेंक दरिद्र बन रहा है। विचार की पवित्रता

मानसिक गंभीरता, उदारता प्रभृति गुण मुक्तावली को अपने कण्ठ से निकाल निरादर कर रहा है। यह पक्षपात में वा कुसंग में गिर अपने कर्तव्य को भूल बड़े २ अन्याय्य कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो जाता है। जहां से यह नियुक्त हुआ है उस की ओर यह नहीं देखता। अपने पिता की सारी क्रिया पर पानी फेर देता है। कैसा उदार, कैसा महानुभाव, कैसा गंभीर, कैसा पवित्र, कैसा उपकारी, इस का पिता परमात्मा है। ऐ मनुष्यो! अपने पिता का मुख अवलोकन कर कार्य्य करो। देखो! वह किस से घृणा करता है उस की क्या आज्ञा है, वह किस से प्रसन्न रहता है, वह हम लोगों से क्या चाहता है, वह किस हेतु हम मनुष्यों को यहां भेजता है। ऐ मनुष्यो! यह सब बिचारो और उसी की इच्छा को पूर्ण करो, उसी की ओर देखो। वह तुम को बुलाकर क्या कहेगा तुम फिर उस समय क्या उत्तर देओगे। तुम्हें क्या उस समय लज्जित होना नहीं पड़ेगा। क्या तुम्हें यह आशा नहीं कि उस न्यायकर्त्ता परम पवित्र परम दयालु पिता के निकट एक न एक दिन अवश्य तुम्हें जाना होगा। कहो तो फिर तुम क्या जाके कहोगे। इस हेतु पहलेही से चेत जाओ। वहां तुम्हे लज्जित न होना पड़े। देखो तुम्हारा पिता जगदीश क्या कहता है।

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ ऋग्वेद॥

हे मनुष्यो! समस्त विरोध, वैरभाव और परस्पर घृणा को छोड़ एकत्र मिलो! मिल के प्रेमालाप करो! तुम ज्ञानी जनों का मन भी वैमनस्य को छोड़ समान प्रयोजन पर विचार करे। और जैसे तुम्हारे पूर्वज पिता प्रपितामह आदि महापुरुष मुझे पूज्य और भजनीय जान उपासना करते आए वैसे ही तुम भी सब छोड़ मेरी ही शरण में आओ! पुनः—

सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥ अथर्ववेद॥

हे मनुष्यो! तुम्हारे मन और हृदय को मैं ईर्षा द्वेषादि अवगुणों से रहित

करता हूं। इस हेतु इस पवित्र हृदयकमल के ऊपर ईर्षा द्वेष का बीज मत बोओ ! ऐ मेरे प्यारे पुत्रो ! जैसे गौ अपने बछड़े को लाड़ प्यार करती है वैसे तुम सब परस्पर प्रेम करो ! देखो तुम्हारा पिता कहता है कि सब से बराबर प्रेम करो। परन्तु तुम इस के नियम को तोड़ते हो।

वर्णव्यवस्था—विवेकि पुरुषो ! लोग कहते हैं कि आज कल वर्णव्यवस्था किस रीति पर होनी चाहिये। मैं कहता हूं कि वेद जैसा कहते हैं उसी रीति पर वर्णव्यवस्था स्थापित होनी चाहिये। १—प्रथम पृथिवी के सब मनुष्य आर्य्य नाम से पुकारे जायं। किसी को कोई जन्म से न तो ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र कहे और न कोई पुरुष स्वयं अपने को जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कहे कहावे। जैसे पढ़े लिखे पुरुषों में से विद्या के अनुसार किसी को ज्योतिषी, किसी को वैयाकरण, किसी को नैयायिक, किसी को वैदिक, किसी को B. A. किसी को M. A., इत्यादि कहते हैं और कर्म्म के अनुसार कोई अध्यापक, कोई गुरु, कोई आचार्य्य, कोई मास्टर, कोई वकील, कोई जज्ज, कोई लाट इत्यादि कहलाता है वैसे ही गुण और कर्म्म के अनुसार कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रिय कोई वैश्य और कोई शूद्र कहलाया करेगा और जैसे जो जिस कार्य में रहता है उस को स्वभाव से ही उसी नाम से पुकारते हैं जैसे पढ़नेवाले को विद्यार्थी, यज्ञ करवाने वाले को ऋत्विक्, वकालत करने वालों को वकील, निर्णय करने वाले को जज्ज आदि कहते हैं और यह स्वभाव से ही कहते हैं कार्य देख कर ही कहने लगते हैं इसी प्रकार स्वयं लोग कार्य देख के किसी को ब्राह्मण किसी को क्षत्रिय किसी को वैश्य और किसी को शूद्र कहा करेंगे। इस पर न तो जोर देने की और न व्यवस्था देने की कोई आवश्यकता है। आवश्यकता केवल योग्यता की प्राप्ति करने करवाने की है। जैसे प्रथम व्याकरण पढ़ने पढ़वाने की आवश्यकता होती है पीछे उस के कार्य देख के उस को स्वयं लोग वैयाकरण कहना आरम्भ करदेते हैं। इसी प्रकार कार्य्य देख योग्यतानुसार ब्राह्मण को ब्राह्मण शूद्र को शूद्र स्वयं पुकारा करेंगे। पठन पाठन जो करे वह ब्राह्मण, क्योंकि मुख का कार्य्य विशेषकर पठन पाठन है। जो रक्षा करे वह क्षत्रिय, क्योंकि बाहु का कार्य्य रक्षा करना है जो सर्वत्र से धन

संचय कर सर्वत्र आवश्यकतानुसार पहुँचावे वह वैश्य, क्योंकि उदर का यही कार्य्य है और जो सब प्रकार से सब का भार उठावे त्रिविध क्लेशों को सहते हुए भी परोपकार ही में लगा रहे बड़े २ आश्चर्यजनक कार्य को तपस्या से सिद्ध करे वह शूद्र है क्योंकि पैर का यही कार्य्य है। यह मैंने अतिसंक्षेप से कहा और प्रथम मैं कह चुका हूं कि यथार्थ में वही पुरुष पूर्ण है जो चारों है अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों है। प्रथम सब को चारों होने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये और जो अपने परिश्रम से चारों होवें वही पूर्ण सर्व श्रेष्ठ है वही यथार्थ में मनुष्य है। यदि ये ब्राह्मणत्वादि चारों गुण एक दूसरे से बढ़ कर न होवे तो एक २ गुण की मुख्यता के और अन्यान्य गुणों के गौणत्व के हेतु अवश्य प्रयत्न करें। लोग उसे मुख्य गुण के अनुसार ही पुकारेंगे इस में सन्देह नहीं।

२—इस देश के कोल, भील, सन्थाल आदि अरण्य निवासियों और नाई, धोबी, दर्जी, जुलाहे आदि शिल्पकारी वर्गों, अहीर, चमार, धानुक आदि ग्राम निवासियों की दशा सुधारने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया जाय।

३—पृथिवी पर के एशिया, योरोप, अफ्रिका, अमेरिका, इत्यादि सब देशवासी आर्य्य बनाए जांय और इन्हें समाज में यथायोग्य सम्मान दिया जाय।

४—स्पर्श दोष सर्वथा उठादिया जाय केवल शुद्धि का विचार रक्खा जाय।

५—वेद के अनुसार 'शूद्र' शब्दार्थ बढ़ाया जाय। नीच निकृष्ट अपवित्र अव्रती मूर्ख अज्ञानी इत्यादि प्रकार के मनुष्य को दस्यु वा दास कहाजाय। शूद्र नहीं। क्योंकि शूद्र समाज का एक बड़ा प्रशंसनीय अंग है।

६—वेदानुसार एशिया योरोप आदि के सब प्रान्त में "गुरुकुल" खोल बालकों का उपनयन करवेदविद्या प्रदान किया जाय इत्यादि कतिपय नियम यहां कहे गए हैं इसी के अनुसार वर्णव्यवस्था होनी चाहिये। इस पर एक छोटीसी पुस्तक लिखी गई है यदि विशेष देखना हो तो उस में सब नियमों को देखिये अन्त में वेदों की ऋचा कहके इसे समाप्त करें।

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ १ ॥ ऋग्वेद ॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्य्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ २ ॥ अथर्ववेद ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ३ ॥ यजुर्वेद ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्ति !! शान्ति !!!

इति वेदतत्त्व प्रकाशे तृतीयः समुल्लासः समाप्तः ।

इति मिथिलादेशान्तर्गत दरभङ्गानिकटस्थ "चहुटा" ग्राम निवासि-शिवशङ्करशर्म्म-निर्मितो जाति-निर्णयः समाप्तिमगात् । इत्यो३म् ॥

वेदतत्त्व प्रकाश ।
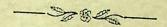
यह नाम वेदप्रचार सीरीज़ का रक्खा गया है जो कि श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब की ओर से जारी किया गया है सम्पादक इस के श्रीमान् पण्डित शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ हैं जो कि वर्त्तमान समय में वेदों के एक प्रसिद्ध विद्वान् हैं इस वैदिक ग्रन्थमाला के तीन अङ्क मुद्रित हो चुके हैं:—

१—ओङ्कार निर्णय ... ... ।–)

२—त्रिदेव निर्णय ... ... ।।।)

३—जाति निर्णय ... ... १)

इन तीनों ग्रन्थों की संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वानों ने बड़ी [प्रशं]सा की है। स्थिर ग्राहकों के लिये ५) वार्षिक डाकव्यय [स]हित मूल्य नियत किया गया है इस में उन को एक वर्ष में १२०० पृष्ठ के ग्रन्थ भिन्न २ विषयों पर दिये जावेंगे। वेदादि सत्यशास्त्रों के सर्व प्रेमियों का इस अपूर्व वैदिक ग्रन्थमाला के प्रचार में तन मन धन से सहायता देना परम कर्त्तव्य है।

वैदिकधर्म का सेवक—

वज़ीरचन्द

अधिष्ठाता आर्य्य-पुस्तक-प्रचार,

जालन्धर शहर (पञ्जाब)

ओ३म्

आर्य्यसमाज के नियम ॥

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

(३) वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है ॥

(४) सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ॥

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

(७) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ॥

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥